श्री श्री माँ आनन्दमयी

गुरुप्रिया देवी

श्री श्री माँ आनन्दमयी

प्रथम भाग

गुरुप्रिया देवी

प्रकाशक :
श्री श्री आनन्दमयी संघ
कनखल, हरिद्वार

नवरात्र संस्करण
सितम्बर, २०००

मूल्य : चालीस रुपये

मुद्रक :
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कॉलोनी, वाराणसी

समर्पण

जो स्वरूपत: मानवबुद्धि की अगम्य हैं और पूर्णानन्दरूप स्वधाम में विराजमान होकर भी संसार-मार्ग के श्रान्त-क्लान्त कातर पथिकों को ज्योतिर्मय चिरशान्तिमय धाम का सन्देश देने के लिए करुणा वश भूतल में मनुष्यदेह में आविर्भूत हुई हैं, जिन्होंने कर्म-भक्ति-ज्ञानमय खण्ड भावधारा से किस प्रकार महाभाव में प्रवेश करना पड़ता है और किस प्रकार अन्त में अविराम नृत्यशील भावलहरियों के बाद भावातीत चिरशान्तिमय चिन्मय स्वरूप में विश्राम प्राप्त किया जाता है इसका स्वयं आचरण कर जगत् को शिक्षा दी है उन्हीं शरणागतवत्सला परमाराध्या श्री श्री माता आनन्दमयी के भुवनमङ्गल श्रीचरण कमलों में उन्हीं की पुनीत चरितकथारूप यह छोटी सी पुष्पमाला भक्ति और प्रीति की अञ्जलि के रूप में गङ्गाजल से गङ्गापूजा के समान सादर समर्पित है ।

— दीन ग्रन्थरचयित्री

निवेदन

लगभग बारह तेरह वर्षों की बात है जिस समय मुझे माँ के दर्शन हुए, मैं माँ को देख कर मुग्ध हुई, उस समय एक बार इच्छा हुई थी कि इन सब घटनावलियों को यदि थोड़ा बहुत लिख रखूँ तो स्वयं पाठ करने से मुझे ही आनन्द मिलेगा। उक्त इच्छा के वशीभूत होकर मैंने कुछ लिखा, यद्यपि अधिकांश समय माँ के साथ ही कट जाता था, लिखने के लिए अधिक समय मिलता ही न था और यदि लिखने बैठती भी तो मुझे प्रतीत होता कि भाषा द्वारा घटनाओं और लीलावलियों पर प्रकाश डालना संभव नहीं है तथापि थोड़ा बहुत मैंने लिखा। कुछ दिन लिखने के बाद घटना वश मेरा लिखना बन्द हो गया। हम लोग जिस समय माँ के आदेश से स्थायी रूप से घर छोड़ कर चले आये उस समय सब कापियाँ घर पर ही छूट गईं। पीछे जब माँ हम लोगों को सिद्धेश्वरी में रख कर बाहर चली गईं तब माँ के लिए हृदय तड़पता। एक दिन मैंने सोचा माँ की पुरानी लीलाकथाएँ यदि पढ़ूँ तो संभव है कुछ मन में चैन पड़े, किन्तु उस समय घर पर खोज कराने पर वे कापियाँ फिर मिलीं नहीं। मन में अत्यन्त परिताप हुआ। कुछ वर्षों के

अनन्तर श्रद्धेय स्व० ज्योतिषचन्द्र रायजी ने सबसे माँ की लीला-कथाएँ (जिन्होंने जिस रूप से उन्हें देखा है या अनुभव किया है उनसे उसी रूप में) लिखने का अनुरोध किया। किन्तु मुझे फिर लिखने की इच्छा नहीं हुई। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अब कुछ न लिखूँगी। किन्तु न जाने क्यों, किसकी प्रेरणा से लिखने की इच्छा फिर जरा-जरा जाग उठी। ज्योतिष दादा ने भी कहा, "तुम्हारा लिखना उचित है, क्योंकि तुमने बहुत दिन माँ के साथ बिताये हैं, छोटी बड़ी अनेक घटनाओं की तुम्हें जानकारी है।" उनके प्रोत्साहन से हृदय के अन्तःस्तर में विद्यमान लिखने की इच्छा और भी प्रबल हो उठी। इस बीच में लिखने का सुयोग भी माँ ने कर दिया, मुझे कुछ दिन प्रायः अकेले विन्ध्याचल आश्रम में रख छोड़ा। उस निर्जन स्थान में अवकाश के समय मैंने फिर लिखना आरंभ किया। माँ की कृपा से पहले की सब घटनावलियाँ मेरे हृदय में प्रचुरमात्रा में जाग उठीं। जैसे जप का एक निश्चित समय था वैसे ही माँ की लीलाकथा लिखने का भी मैंने एक समय निश्चित कर दिया। मैं उसे अपनी साधना का ही एक अङ्ग समझती थी। यद्यपि माँ की लीलावलियाँ लिखना मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए बौने की चाँद छूने की साध के समान ही था, फिर भी मैं लिखती और लिखना मुझे भला प्रतीत होता। मैं जानती थी कि विद्वत्-समाज में इसका कोई भी मूल्य न होगा, क्योंकि पुस्तक लिखने के लिए अपेक्षित विद्या, बुद्धि मुझ में कुछ भी नहीं

है । किन्तु मैं सोचती कि जो माँ के सम्पर्क में आये हैं, वे इन सब घटनावलियोंको पढ़ कर आनन्दित होंगे, लेखिका के भाव और भाषा की त्रुटि उनके आनन्द में बाधक न हो सकेगी । क्योंकि मैंने अनुभव किया है कि जभी हम कतिपय लोग एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं और माँ की चर्चा छिड़ती है तब एक कथा, एक पुरानी कथा को लेकर ही पुनः पुनः आलोचना करते करते हम लोग कितनी रात बिता डालते हैं किसी को भी उसमें अरुचि या श्रान्ति क्लान्ति का लेश भी ज्ञात नहीं होता । माँ की प्रत्येक कथा मानो हमें नित्य नूतन प्रतीत होती है । यह भी सोलह आने सत्य है कि माँ का भाव समझना हमारी शक्ति के सर्वथा ही बाहर की वस्तु है । मैंने जो भाव समझा है, देखा है या सुना है केवल वही लिखा है । एक अक्षर भी अतिरञ्जित न हो इस ओर विशेष ध्यान रखा है । फिर भी मेरे महान् दयालु भाई और बहनों को, विशेषतः जिन्हें माँ का सम्पर्क प्राप्त है, मेरी अयोग्यता के यथेष्ट प्रमाण मिलेंगे । मैं उसके लिए क्षमा चाहती हूँ । जिन्होंने माँ के दर्शन नहीं किये हैं, इस पुस्तक द्वारा ही माँ का परिचय प्राप्त करेंगे, उनके निकट मेरी यह प्रार्थना है कि इस अत्यन्त अयोग्य कन्या के लेख से यदि कहीं पर माँ का स्वभाव अथवा चरित्र समझने में वे भूल करें तो वह त्रुटि मेरी ही है । जो माँ के सम्पर्क में आये हैं, उन्हें मेरे इस कथन की सत्यता प्रतीत होंगी । दुःख का विषय है कि माँ की लीला की अनेकों घटनाएँ गुप्त रह गई हैं, क्योंकि व्यक्तिगत रूप

से माँ ने जिस किसी से भी जो विशेष बातें कही हैं अथवा माँ की जो सब विशेष घटनाएँ किसी किसी के प्रकाश में आई हैं वे सब बातें अथवा घटनाएँ गुप्त ही रह गई हैं एवं सम्भव है सदा के लिए गुप्त रह जायँ कारण कि कोई भी उन सबको प्रकाश में लाने के लिए राजी नहीं हैं।

मैं एक बात और कह कर अपना वक्तव्य समाप्त करती हूँ। मैंने यह सब अस्त-व्यस्त रूप से लिख कर परम श्रद्धास्पद महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज, एम० ए०, (भूतपूर्व अध्यक्ष, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस) महोदय के हाथ सौंप दिया, उन्होंने पर्याप्त परिश्रम कर इसे पुस्तक का रूप दिया है एवं उन्होंने इस पुस्तक की एक भूमिका भी लिख दी है। इसके लिए मैं उनकी चिरकृतज्ञ हूँ। माँ के पुराने भक्त बालब्रह्मचारी श्रीयुक्त नेपालचन्द्र चक्रवर्तीजी[१] ने भी इस काम में कविराजजी की यथासाध्य सहायता की है। उन्होंने दिन रात इसके लिए परिश्रम किया है। माँ का काम करना ही उनका आनन्द है। मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

ज्योतिष दादा आज इस संसार में नहीं हैं। उनके प्रोत्साहन से ही मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुई थी। आज यदि वे रहते तो माँ की इस लीला-कथा को प्रकाशित देख कर कितने प्रसन्न होते।

---

१. स्व० नेपालचन्द्र चक्रवर्ती ने बाद में नारायणानन्द तीर्थ के नाम से संन्यास लिए थे।

विविध प्रकार के अनिवार्य कारणों से कहीं कहीं पर प्रेस वालों की असावधानी तथा अन्यान्य प्रकार की त्रुटि रह गई है। सहृदय पाठकों के निकट इसके लिए है क्षमा प्रार्थना है। माँ की इस लीलाकथा को पढ़कर यदि किसी के भी हृदय में तनिक भी आनन्द हुआ तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल समझूँगी।

काशी
वैशाख, १९९९

निवेदिका—
गुरुप्रियादेवी

सूचीपत्र

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

□

भूमिका

(१)

प्रस्तुत पुस्तक की रचयित्री एवं मेरे कतिपय श्रद्धास्पद मातृ-भक्त बन्धुओं ने मुझ से इस पुस्तक की एक भूमिका लिख देने का अनुरोध किया है । उनकी इच्छा है कि इस भूमिका में मैं माँ के सम्बन्ध में अपनी व्यक्तिगत जानकारी और धारणा संक्षेप में जनता के समक्ष प्रकाशित करूँ । प्रतीत होता है कि उनका विश्वास है, माँ के इस स्वरूपविषयक आलोचना के सिलसिले में जगत् के सन्मुख उनका वास्तविक परिचय अल्पाधिक मात्रा में व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होगा ।

सच बात तो यह है कि अपना वक्तव्य संक्षिप्त भूमिका के रूप में लिख कर यद्यपिं मैं उन लोगों के अनुरोध की रक्षा करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ, तथापि इसके द्वारा उनका मनोरथ पूर्ण न होगा । मेरे सदृश स्वभाव वाले अक्षम व्यक्ति के द्वारा वह होना सर्वथा असम्भव है, एवं मुझे प्रतीत होता है कि भिन्न प्रकार की प्रकृति रहने तथा अधिक सामर्थ्यशाली होने पर भी वह काम सुसाध्य नहीं है । माँ के सम्बन्ध में मेरी व्यक्तिगत धारणा और विश्वास मेरे हृदय की वस्तु है, उसे बिना विचारे और लोग ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं हैं । जिस विषय में दूसरे के साथ ऊहापोह नहीं हो सकता, होने पर भी जिस विषय में ऊहापोह करने

की प्रवृत्ति नहीं होती, जो हृदय की गुप्त गुहा में—अन्तरतम स्तर में—गुप्तरूप से पोषणीय है, उसे हृदय से बाहर निकाल कर खुली आलोचना का विषय बनाना हृदय कदापि नहीं चाहता। फिर, औरों के निकट माँ का वास्तविक परिचय देने की चेष्टा करना भी मेरे सदृश अधिकारी के लिए अक्षम्य धृष्टता नहीं तो और क्या है ?

ग्रन्थकर्त्री ने ग्रन्थ में यथासम्भव कुशलतापूर्वक माँ का बाह्य चरित्र अङ्कित किया है और माँ के श्रीमुख से विनिःसृत मधुर उपदेशों का भी उल्लेख किया है। "मातृदर्शन"-कार और "श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसङ्ग" नामक ग्रन्थ के निर्माता ने भी सुन्दर ढंग से ऐसी चेष्टा की है। इन सब ग्रन्थों का अनुशीलन कर स्थूलरूप से माँ की देहाश्रित लीलाओं का विवरण अवश्य ही प्राप्त होगा। जिन्हें प्रत्यक्षरूप से माँ के सत्संग और उपदेश-लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्हें वह और भी घनिष्ठरूप से प्राप्त होगा।

किन्तु माँ के ये बाह्य परिचय विविध प्रकार के हैं। जिनसे जैसी प्रतिभा और संस्कार है वे माँ को उसी भाव से देखते हैं और देखेंगे। क्योंकि वह बाह्य चरित है। माँ का वास्तविक परिचय पाना अत्यन्त कठिन है। यदि सौभाग्यवंश किसी को स्वयं उसका आभास मिल भी गया तो वह दूसरों के सन्मुख उसे प्रकट कर सकेगा यह आशा नितान्त दुराशा ही है; वास्तव में सन्तान होकर माँ का परिचय पाने के लिए प्रयत्न करना ही निरा पागलपन प्रतीत होता है। 'माँ कौन हैं', 'माँ का स्वरूप क्या है', इन सब गंभीर विषयों की मीमांसा अल्पज्ञ बच्चे से कदापि नहीं हो सकती। जिस

समय बच्चे का जन्म नहीं हुआ था, उस समय भी माँ थीं, जिस समय बच्चा नहीं रहेगा, उस समय भी माँ रहेंगी, माँ सनातनी हैं—बच्चे में ऐसा कौन बल है जिससे कि वह माँ का स्वरूप जानने में सफलमनोरथ हो सके ? जिनकी शक्ति से शक्तिशाली हो कर बच्चा जन्म ग्रहण करता है, जिनकी सत्ता से ही उसकी सत्ता है, जिनका अवलम्बन लिये बिना वह अर्धक्षण भी नहीं टिक सकता, उन्हें समझ पाने की क्षमता उसमें कहाँ है ? मनुष्य साधन के बल से अत्यन्त बलवान् होकर दुष्कर कर्म कर सकता है सही, किन्तु साधन के मूल में भी उन्हीं की कणमात्र शक्ति विद्यमान रहती है । महाशक्तिके अनुग्रह के लवलेश के बिना मनुष्य जड़पिण्ड के समान अकर्मण्य रहता है—मनुष्य तो दूर रहा, स्वयं शिव भी शक्ति रहित होने पर निःस्पन्द होकर शववत् रहते हैं । सब देवताओं और सब जीवों की प्राणस्वरूप उन आद्या शक्ति को कौन पहचान सकता है, कौन जान सकता है ? ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि सब साधनों की प्राणशक्ति उन्हीं का अनुग्रह है, इसलिए अपना बल किसका ऐसा है जिससे कोई उन्हें जान सके । यदि वे स्वयं अपने को प्रकाशित कर दें तो उनका कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है, किन्तु वह भी सबके लिए सुलभ नहीं है—जिसके निकट वे जितना आत्मपरिचय प्रकट करती हैं, वह उतना ही पाता है, और कुछ भी नहीं पाते ।

जैसे उज्ज्वल ज्योतिर्मय सदा प्रकाशमय भगवान् सूर्य के प्रकाशमान रहने पर भी अन्धे के लिए उनकी सत्ता नहीं

के बराबर रहती है, वैसे ही आद्याशक्ति के जगत् में प्रकाशमान रहने पर भी साधारण के निकट वह अप्रकाशमान सी रह जाती हैं। यदि वे स्वयं अपना परिचय न दें तो उन्हें कोई पहचान नहीं सकता।

कहा है, एक बार देवर्षि नारद भगवान् नारायण के दर्शनों की इच्छा से श्वेतद्वीप में गये। श्वेतद्वीप अत्यन्त दुर्गम स्थान है, साधारणतः देवता और ऋषियों की पहुँच के परे है। वहाँ जाकर दिव्य विभूतिधारी नारायण के दर्शन भी उन्हें प्राप्त हुए थे। वे अपने तपोबल से उस देवदुर्लभ रूप का दर्शन करने में समर्थ हुए थे इस हेतु उनके मन में एक प्रकार के हर्ष और अहंभाव का संचार हुआ था। साथ ही साथ आकाशवाणी हुई, 'नारद, तुम वृथा अहङ्कार कर रहे हो। मेरे इस भूतगुणयुक्त रूप के दर्शन कर तुम समझ रहे हो कि मैंने भगवान् के परम रूप का दर्शन पा लिया। किन्तु तुम्हारी धारणा भ्रमपूर्ण है। क्योंकि यह भी मेरा मायिक ही रूप है, मेरे स्वरूप का दर्शन अब भी तुम्हें नहीं हुआ।' उनकी विशेष अनुकम्पा के बिना उनका स्वरूप दर्शन किसी को भी नहीं हो सकता। योगी को योगबल से सकल ब्रह्माण्डों के अतीत, अनागत और वर्तमान समस्त पदार्थों का ज्ञान एक ही समय में प्रत्यक्षरूप से वर्तमान की तरह, हथेली में रखे आँवले के तुल्य, प्राप्त हो सकता है। किन्तु उससे भी महाशक्ति का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सम्प्रज्ञात सालम्बन समाधि में जागतिक पदार्थ-विषयक प्रज्ञा का उदय होता है, किन्तु जगत् की मूल प्रकृति या पुरुष उसके विषय नहीं होते। पुरुष और प्रकृति

से परे परम ऐश्वरिक शक्ति तो और भी दूर की बात है। ज्ञानी का ज्ञानबल और भक्त का भक्तिबल माँ का चरण स्पर्श करने में समर्थ नहीं होता। वास्तव में योगबल, ज्ञानबल और भक्तिबल समस्त बल उन महाबलस्वरूपिणी के अणुमात्र के प्रतिबिम्बाभास हैं। इन क्षुद्र आभास बलों का उस मूल की ओर प्रयोग होने पर ये सत्ताहीन हो जाते हैं और किसी भी कार्य के सम्पादन में समर्थ नहीं होते। प्रदीप की सूर्य को प्रकाशित कर दिखाने की चेष्टा जैसे उपहासास्पद है वैसे ही मनुष्य की अपने आभास बलों के द्वारा महाशक्ति माँ के स्वरूप को जानने की चेष्टा भी उपहासास्पद ही है।

साधारणतः माँ सन्तान को अपना परिचय नहीं देती, सन्तान के लिए वह परिचय कोई आवश्यक भी नहीं है; माँ उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, वह जो चाहता है उसे वह देकर ही भुलाये रखती हैं। वे भोगार्थी को भोग देती हैं, मोक्षार्थी को मुक्ति देती हैं, आर्त की आर्ति दूर करती हैं, भूखे को अन्न, प्यासे को जल और जिज्ञासु को ज्ञान प्रदान करती हैं। जो उन्हें जिस भाव से भजता है वे उसके निकट उसी भाव से उपस्थित होती हैं। अपने-अपने भाव के अनुसार माँ का यह परिचय साधकमात्र को ही अधिकार के अनुरूप प्राप्त रहता है, किन्तु माँ के स्वरूप का परिचय नहीं है। माँ का स्वरूप भावातीत है— महाभावस्वरूपिणी माँ अनन्त प्रकारों से अनन्त भावों की संगम और उद्गम होकर भी वास्तव में समस्त भावों के परे हैं। माँ के उस तुरीयातीत स्वरूप को कौन ग्रहण कर

सकता है ? स्वयं खण्डभाव के अधीन रह कर महाभाव को धारण करना असम्भव है, भावातीत स्वरूप को धारण करना तो सुदूर स्वप्नमात्र है । और जिस क्षुद्र मनुष्य के हृदय में खण्ड भाव का ही उदय नहीं हुआ है, वह उन्हें क्या पहचान सकेगा ? माँ को पहचानना हो तो माँ में आत्मसमर्पण कर उनके साथ एकात्मता प्राप्त करनी चाहिये—माँ से पृथक् रह कर माँ का परिचय प्राप्त नहीं हो सकता । अहंभाव की निवृत्तिरूप वह आत्मसमर्पणयोग माँ की पूर्ण कृपा से प्राप्त हो सकता है । उस अवस्था के प्राप्त होने पर माँ के साथ सन्तान का कोई भेद नहीं रहता, उस समय एकमात्र माँ ही चिदानन्दस्वरूप में विराजमान रहती हैं । उस समय वे स्वयं ही अपने को जानती हैं । वह आत्मपरिचय तो सदा ही उन्हें रहा है । किन्तु उससे जीव को क्या लाभ ? जीव के लिए माँ को जानने की चेष्टा तो सदा विडम्बना ही रह जाती है ।

जब कर्म, योग और भक्ति के प्रभाव से भी माँ को स्वरूपतः नहीं पहचाना जा सकता, तब चरित्र पढ़ कर और उपदेश सुन कर उन्हें यथार्थ रूप से पहचाना नहीं जा सकता यह कहना व्यर्थ है । चरित्र भीतर विद्यमान भाव का द्योतक मात्र है । जो स्वयं किसी भाव के अधीन न होकर भी सब भावों का अवलम्बन कर क्रीड़ा कर सकती हैं एवं लीला के बहाने करती भी हैं, उन्हें चरित्र द्वारा क्या जानेंगे ? लोकशिक्षा के लिए वे शास्त्र और समाज-मर्यादा का पालन कर सकती हैं एवं करती भी हैं और लोक शिक्षा के लिए ही अथवा अन्य किसी अचिन्त्य कारणवश वे

उसका उल्लंघन भी कर सकती हैं, किन्तु उससे उनका गौरव ही क्या है और हानि ही क्या है ? वे तो कार्यकारण नियम के अधीन नहीं हैं—कर्म अथवा पाप-पुण्य उनका स्पर्श नहीं कर सकते । उनका आचरण सदा ही साधारण लोगों का अनुकरणीय होगा, इसका कोई अर्थ नहीं है । शिवजी हलाहल पान कर मृत्युञ्जय हुए पर साधारण लोगों के लिए विषपान मृत्यु का ही कारण होता है । वे देश, काल और पात्र के अनुसार व्यवहार करती हैं, पर कभी-कभी उनका आचरण समझ में नहीं आता । सन्निहित व्यक्तिगत फल की आकाङ्क्षा, विचित्र प्राक्तन कर्मों के संस्कारों के प्रभाव और विचार-बुद्धि की प्रेरणा से साधारण मनुष्य कर्मपथ का पथिक होता है, क्योंकि उसके सम्पूर्ण जीवन की भित्ति अहंभाव पर ही निर्भर रहती है, किन्तु जो मानवदेह धारण करके भी देहात्मभावशून्य हैं, जन्म से ही जिनका ज्ञान वैभव अलुप्त रहा, अज्ञान और स्वार्थ कलुषित इच्छा जिनके हृदय का स्पर्श नहीं कर सकती, उनका आचरण व्यक्तिगत संस्कार और आदर्श से अनुप्राणित नहीं होता—एकमात्र स्वभाव की प्रेरणा से ही उनके सम्पूर्ण व्यवहार सम्पन्न होते रहते हैं । इसलिए साधारण मनुष्य के विचार के मानदण्ड से उनके चरित्र के माहात्म्य आदि का निरूपण नहीं किया जा सकता । नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र कोई भी शास्त्र उन्हें बतला नहीं सकते—उनका चरित्र वेदविधि के बहिर्भूत है । मनुष्य के चरित्र से उसके भाव का ही अनुमान किया जाता है, किन्तु जो भाव की सीमा का अतिक्रमण कर विराजमान हैं और स्वयं

निर्लिप्त, अभिमानशून्य होकर भी नाना भावों का अवलम्बन कर अभिनय करती हैं, उनके स्वरूप का परिचय चरित्र से तनिक भी पाने की आशा नहीं की जा सकती, यह पहले ही कहा जा चुका है ।

मौलिक उपदेश के अति मधुर और लोकहितावह होने पर भी उससे उपदेष्टा के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता । एक क्षुद्रबुद्धि बालक उसे दिये गये उपदेश से यदि अपने अध्यापक के पाण्डित्य का निर्णय करने की चेष्टा करता है तो वह सफल नहीं होता । उसके सिवा वैखरी वाणी का उपदेश स्वभावतः ही अपूर्ण होता है, उससे विशुद्ध ज्ञान का विकास नहीं हो सकता; विशेष करके उपदेश-ग्रहण श्रोता के अधिकार और योग्यता के ऊपर निर्भर रहता है । वैखरी के अतिरिक्त सूक्ष्मवाणी भी श्रोता की मानसिक योग्यता के तारतम्य से थोड़ी बहुत विकृत रूप से गृहीत होती है—अन्य के सन्मुख प्रकाश करते समय और भी अधिक विकार को प्राप्त हो जाती है । यह स्वाभाविक है । ऐसी परिस्थिति में उपदेश से भी माँ का यथार्थ परिचय प्राप्त नहीं होगा ।

इस ग्रन्थ से अथवा इस प्रकार के अन्य ग्रंथों से, यहाँ तक कि माँ के श्रीमुख से विनिर्गत उपदेशों से भी, माँ को पहचानने की चेष्टा करना व्यर्थ है । इसलिए यथार्थरूप से माँ का परिचय प्राप्त होना—माँ को पहचानना—कोई मखौल नहीं है । योग, याग, तपस्या, तन्त्र, मन्त्र कितने ही उपाय हैं, किन्तु किसी भी उपाय से वे सुलभ नहीं हैं । पूर्ण परिचय तो दूर की बात रही, उनका आंशिक परिचय ही

कितने लोगों को मिला है ? वे सकाम साधक को दुर्लभ हैं, निष्काम को भी दुर्लभ हैं । जो सकाम है उसे काम्य वस्तु की चाह है, वह भोग लोलुप है, वह तो माँ को चाहता नहीं, माँ की विभूति से मोहित होकर उस विभूति या ऐश्वर्य की ओर ही वह आकृष्ट हो जाता है, माँ भी उसे वही देती हैं; उसी भाव से अपने को उसके निकट प्रकाशित करती हैं । परन्तु जो साधक निष्काम है, जो विरक्त है, वह मुमुक्षु है—भोग की अभिलाषा उसमें न रहने पर भी मोक्ष की इच्छा उसमें रहती है, किन्तु भोग के तुल्य मोक्ष भी माँ की विभूति ही है । माँ इस प्रकार के साधक को संसाररूपी बन्धन से छुटकारा दे देती हैं । भोग और मोक्ष जिनके चरणकमल से विनिःसृत हो रहे हैं, वह महाशक्तिरूपा चिदानन्दमयी जननी शिव और जीव दोनों की माता हैं, वे पूर्ण, परात्परा, सनातनी हैं, वे रहस्यरूपा, रसमयी, प्रेमघनविग्रहा हैं, उन्हें कितने लोग चाहते हैं ? अथवा कितने लोग उन्हें पहचानते हैं ? भोगमार्ग का ऐश्वर्य और मुक्तिमार्ग का कैवल्य—दोनों ही माँ के चरणों में लोटे हुए हैं । दोनों की ही आकांक्षा माँ की प्राप्ति के मार्ग के कण्टक हैं । जिसे प्रेम का पता नहीं लगा उसी को भोगैश्वर्य (ऐहिक, पारलौकिक एवं नित्य) तथा कैवल्य (पुरुषकैवल्य और ब्रह्मकैवल्य) पुरुषार्थरूप से प्रतीत होते हैं, महामाया विश्वजननी उसके निकट गुप्त रहती हैं, उसको उन्हें देकर तृप्त रखती हैं । इस कारण उनका स्वरूप-परिचय भोगार्थी और मोक्षार्थी दोनों के निकट गुप्त रह जाता है, क्योंकि जिसे उसकी चाह ही नहीं है, उसके प्रति वे आत्मप्रकाश

करेंगी ही क्यों ?

(२)

तब क्या माँ सर्वथा ही अपना परिचय नहीं देती हैं ? अवश्य यंह नहीं कहा जा सकता । अति दुर्गम और अति दुर्ज्ञेय होने पर भी वे कभी-कभी आत्मप्रकाश करती हैं, क्योंकि वे वात्सल्यरस से सराबोर हैं । सन्तान की हृदयस्पर्शी माँ माँ पुकार पर उत्तर दिये बिना रह नहीं सकती हैं । योग, ज्ञान, भक्ति, कोई उपाय, कोई तपस्या न रहने पर भी बच्चे के तुल्य सरल हृदय से मातृविहीन बालक के समान व्याकुल अन्तःकरण से माँ माँ पुकार सकने पर माँ के स्तनों में सुधारस का संचार हुए बिना नहीं रहता । मातृ-स्नेह के भिखारी शिशु के हृदय को वे अमृत-रस से आप्लावित कर देती हैं । शिशु माँ को पाकर, माँ को माँ माँ पुकार कर और माँ की स्नेह-भरी पुचकार प्राप्त कर धन्य हो जाता है । माँ के स्वरूप का परिचय न पाने पर भी उसकी क्या क्षति है ? क्योंकि वह माँ का विशेष परिचय न पाने पर भी माँ को अपनी स्नेह-शालिनी आनन्दमयी जननी के रूप में पहचान सकता है । यही उसके लिए यथेष्ट है, वह उसकी अपेक्षा अधिक जानने की चेष्टा नहीं करता—क्योंकि शिशुभाव के साथ इस प्रकार की चेष्टा का कोई सामञ्जस्य नहीं है—और जानने का प्रयत्न करने पर भी वह माँ को खो बैठता है एवं स्वयं कृत्रिमता के गर्त में निमग्न होकर मातृ-दर्शन से वञ्चित रह जाता है । इसलिए यद्यपि शिशु की माँ को पहचानने की चेष्टा निष्फल है तथापि शिशुभाव ही माँ का

मातृरूप में आस्वादन कराने के लिए एकमात्र सहायक है, यह बात सत्य है, क्योंकि अपने में सन्तान भाव का आश्रय न कर सकने पर मातृभाव के माहात्म्य का अनुभव नहीं किया जा सकता। मातृभाव की अनन्त महिमा इस बालभाव से ही थोड़ी बहुत प्रकट होती है। इस कारण यद्यपि माँ का परिचय पाने की आशा अत्यन्त असंभव है तथापि सन्तानवात्सल्य के उद्रेक से माँ स्वयं जिसके निकट जितना आत्म-स्वरूप प्रकट करती हैं वह उतने को ही सत्य समझता है। उनके चरित्र और उपदेश से उनके वास्तविक परिचय का आविष्कार करने की चेष्टा न कर उनमें मातृस्नेह की लीला के विलास का दर्शन करना ही समुचित है। शुष्क युक्ति-तर्कों की परिधि के अन्दर खींच कर रसमय वस्तु के माधुर्य को नष्ट करना उचित नहीं है।

किन्तु इस प्रकार का बालभाव तो सर्वत्र सुलभ नहीं है। बालक का अज्ञान अथवा विवेक का अभाव तो सुलभ हो सकता है, किन्तु उसकी सरलता और पवित्रता अति दुर्लभ है। पर मातृदर्शन के लिए वही नितान्त आवश्यक है।

(३)

स्थूल और बाहरी परिचय लोगों के संस्कार भेद से नाना प्रकार का होता है, यह पहले ही कह आये हैं। किन्तु वह परिचय वास्तविक परिचय नहीं है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग माँ के स्थूल शरीर के इतिहास से अवगत हैं, वे जानते हैं कि भिन्न-भिन्न समयों

में भिन्न-भिन्न लोगों ने उन्हें विभिन्न दृष्टियों से देखा है। काल के परिवर्तन से अनेकों की दृष्टि में परिवर्तन नहीं हुआ, सो बात भी नहीं है। सृष्टि में सर्वत्र ही वैचित्र्य है, यहाँ भी वैचित्र्य है, उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

जिस समय वाजितपुर में सर्वप्रथम माँ के जीवन की विशेषता लोगों के दृष्टिगोचर और कर्णगोचर होने लगी, उस समय विचारशून्य साधारण लोगों ने उस अवस्था को अज्ञतावश भूत, प्रेत या क्षुद्र देवता का आवेश समझा था। भूत हटाने के लिए अनुरूप उपाय भी काम में लाये गये थे। किन्तु इस भूत का झाड़ना ओझा की शक्ति के बाहर की बात है यह भी थोड़े ही दिनों में सबकी समझ में आ गया था। कुछ लोग उस समय माँ को वायुरोग हिस्टिरिया अथवा उसके सजातीय रोग से आक्रान्त समझते थे। भाव के विकास से देह में जो सब असाधारण लक्षण प्रकाशित होते उन सबको वे रोग के चिह्न समझते थे। किन्तु उन्हें भी शीघ्र ही अपना भ्रम प्रतीत हो गया। भाव किसे कहते हैं यह साधारण मनुष्य नहीं जानते। भाव के स्फुरण से जो सब शारीरिक परिवर्तन होते हैं उन्हें भी वे नहीं जानते। इसलिए मोटा मोटी बाहरी लक्षणों का कुछ सादृश्य देख कर उनमें जो विचारविभ्रम उपस्थित हुआ वह निर्मूल नहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु और अन्यान्य महापुरुषों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार का लोकमत स्थान-स्थान पर कुछ दिनों के लिए प्रचारित हुआ था।

अस्तु, ये दो मत इस समय प्रचलित नहीं है। फिर

भी अन्य मत इस समय भी हैं—एवं प्रतीत होता है कि सर्वदा ही रहेंगे ।[१] इनमें से कोई-कोई मत तो अत्यन्त ही विचित्र है । विचित्र होने पर भी इनमें से कोई मत उड़ा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जो जिस मत की पुष्टि करते हैं उनकी युक्ति और विश्वास उसी के अनुकूल रहता है । दूसरे के मत से उसके विचारयोग्य न होने पर भी निर्मूल कह कर उसका निराकरण नहीं किया जा सकता ।

प्रथम मत में माँ एक श्रेष्ठ साधिका हैं । उन्हें पूर्व जन्म में उच्च साधना की फलस्वरूप ऊर्ध्वगति प्राप्त हुई थी । किन्तु पूर्ण ज्ञान के अभाव से फिर देहधारण करने को

१. जिन्होंने हिन्दू, बौद्ध और ईसाई धर्म के इतिहास का अनुशीलन किया है वे इन मतों के विषय में भलीभाँति जानते हैं । श्रीकृष्ण को कोई भगवान् का अवतार कहते और कोई स्वयं भगवान् के रूप में उनका वर्णन करते थे । कोई-कोई उन्हें नारायण ऋषि का अवतार मानते थे । और कोई उन्हें साधारण मनुष्य ही समझते थे । 'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्' (गीता) । इस भगवद्वाक्य से ज्ञात होता है कि अनेक लोग उनकी अवज्ञा भी करते थे । बुद्ध के सम्बन्ध में भी इस प्रकार के विविध मत बौद्ध साम्प्रदायिक साहित्य में दिखाई देते हैं । स्थविरवादी और महासंघिक संप्रदाय की दृष्टि में जो मूल में ही भेद था वह प्रसिद्ध है । उसके अतिरिक्त धर्मकाय या स्वभावकाय, सम्भोगकाय और निर्माणकाय की आलोचना से प्रतीत होता है कि राजा शुद्धोदन के पुत्र गौतम को अनेक लोग निर्माणकाय के रूप में ही मानते थे । इन त्रिकायों के परस्पर सम्बन्ध और गौतम नामक ऐतिहासिक पुरुष के तत्त्व को लेकर बहुत मतभेद रहा है । खीष्ट के सम्बन्ध में भी यही बात है । ईसाई समाज में शताब्दियों तक इस मतभेद का विकास चला है । Docetism, Adoptionism, Medatism, Monarchianism, Arianism आदि मतों के इतिहास की पर्यालोचना करने पर वह स्पष्ट ही ज्ञात हो सकता है ।

वे बाध्य हुई हैं। इनके मत से माँ इस देह में ज्ञान का पूर्ण विकास प्राप्त कर जीवन्मुक्ति या स्थितप्रज्ञ दशा को प्राप्त हुई हैं। इस जन्म में उन्हें बाह्य गुरु की आवश्यकता नहीं हुई—अन्तःस्थित अन्तर्यामी गुरु ही उन्हें आवश्यकतानुसार प्रेरणा दे रहे हैं। यही उनका अन्तिम जन्म है।

किन्तु इस मत को सभी स्वीकार नहीं करते, वे सोचते हैं कि माँ के जीवन में जो सब अलौकिक विभूतियाँ और व्यापार दिखाई देते हैं उनके कुछ अंशों का सिद्धि और जीवन्मुक्तिवाद द्वारा उपपादन किया जाता है सही, किन्तु उनकी जीवनधारा में ऐसे अनेक व्यापार होते दिखाई दिये हैं जिनको समझना कठिन है। वे सब व्यापार जन्मान्तर की साधना से उत्पन्न संस्कार के विकास के कारण हो सकते हैं। इस मत में माँ साधिका नहीं हैं, जीवन्मुक्त भी नहीं हैं। यदि वे जीवन्मुक्त कही जायँ तो जन्म से ही उन्हें जीवन्मुक्त कहना चाहिये। आधिकारिक पुरुष के समान अपना अधिकार समाप्त करने के लिये उन्होंने जन्म लिया है। यह अधिकार भी एक प्रकार का प्रारब्ध है।

कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि पूर्वोक्त मत भी ठीक नहीं है। क्योंकि माँ के जीवन में कोई अधिकार-संस्कार दिखाई नहीं देता। यहाँ तक कि जीव को ज्ञान और भक्ति प्रदान कर उद्धार करने का संस्कार भी उनमें नहीं है। उन्होंने आज तक अपने को गुरुरूप में ग्रहण नहीं करने दिया। उनके चरित्र और उपदेश जगत् के पारमार्थिक कल्याण के लिए होने पर भी इस प्रकार का कल्याण करने का संस्कार उनमें नहीं है। इस मत में माँ नित्य सिद्धा और

भगवान् की परिकर स्वरूपा हैं । किसी विशेष प्रयोजनवश भगवदिच्छा से कुछ दिनों के लिए जगत् में आई हैं । प्रयोजन सिद्ध होने पर अपने आप ही जहाँ से आई हैं वहीं लौट जायँगी ।

किन्तु यह मत भी सर्व-स्वीकार-योग्य नहीं है । उनकी धारणा है कि माँ साक्षात् महादेवी हैं । भक्तों के आह्वान से और जगत् के मङ्गल के लिए उन्होंने शरीर धारण किया है । इनका कथन है कि माँ की पितामही ने कसवा काली मन्दिर में काली माता के समीप पुत्र के 'पुत्र हो' ऐसी प्रार्थना न कर 'कन्या हो' ऐसी प्रार्थना की थी । उसी के फलस्वरूप माँ का जन्म हुआ । इन्हें विश्वास है कि भगवती काली ने ही अपने अंश से माँ होकर जन्म ग्रहण किया है ।[१]

अन्य कहते हैं कि माँ को काली या दुर्गा न मान कर आद्याशक्ति महामाया ही मानना उचित है । किसी ने (जैसे लावण्य ने) उन्हें दशभुजा दुर्गा के रूप में देखा है, फिर किसी ने सरस्वती के रूप में (जैसे निर्मल बाबू ने),

---

१. ढाका शाहबाग रहते समय जो काली आकाश में आविर्भूत हुईं और माँ के शरीर पर (गोद में) कूदने के लिए उद्यत रहीं, जिसके कारण ढाका में काली प्रतिष्ठा हुई वह इस मत में कुछ अंश में समझ में आ सकता है । अनेक लोगों को माँ के शरीर में काली मूर्ति का विकास दिखाई दिया है । बहुत समय तक लोग उन्हें "मानुष काली" भी कहते थे । कालीमूर्ति के साथ उनका तादात्म्य भी कभी कभी देखा गया है । काक्स बाजार निवासकाल में माँ को ज्ञात हुआ था कि ढाका में कालीमूर्ति के गहनों की चोरी हो गई । अपने शरीर में पीड़ा का अनुभव भी उन्हें हुआ था ।

छिन्नमस्ता के रूप में (जैसे प्रमथ बाबू ने) अथवा दश महाविद्या के रूप में (जैसे प्रमथ बाबू के चपरासी ने) उनके दर्शन किये हैं। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही रूप कितने लोगों ने देखे हैं।

महाभावमयी राधारूपी भी कोई लोग उन्हें मानते हैं। अथवा कोई लोग उन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण का आवेश रूप ही मानते हैं।

(४)

इस प्रकार कितने ही लोगों ने कितने ही भावों में माँ को देखा है। इनमें कौन देखना सत्य है ? कौन असत्य है ? यद्यपि भाव भेद से इनमें से किसी को भी सर्वथा असत्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो जिस भाव से उन्हें देखता है या जानता है उसके निकट वे उसी भाव से प्रतीत होती हैं, फिर भी हमारी समझ में संभवतः इनमें से कोई भी उनका वास्तविक परिचय नहीं है। एक बार भारतधर्म-महामण्डल के प्रचारक श्रीस्वामी दयानन्दजी ने माँ से पूछा था, "माँ, तुम कौन हो ? कोई कहता है तुम अवतार हो, कोई कहता है तुम आवेश हो, कोई कहता है साधक या सिद्ध जीव हो। मुझे यथार्थतः जानने की इच्छा है तुम कौन हो ? माँ ने कहा, "बाबाजी, तुम मुझे क्या समझते हो ? तुम जो समझते हो मैं वही हूँ।" माँ के इस उत्तर में ही माँ के वास्तविक परिचय का आभास गुप्तरूप से छिपा है, ऐसा मालूम पड़ता है। गीता में भगवान् ने कहा है, "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" माँ

का पूर्वोक्त वचन भी उसी के अनुरूप है । माँ में तो व्यक्तित्व की या अभिमान की परिधि नहीं है जिससे कि वे उसके द्वारा परिच्छिन्न हों । वे स्वच्छ, शुद्ध, स्वप्रकाश और विशाल सत्ता रूप अपनी महिमा में अपने आप विराजमान हो रही हैं—किन्तु सब लोग संस्कारवश उन्हें उस स्वरूप में नहीं देख पाते । क्योंकि चित्त संस्कार के जाल से छुटकारा पाये बिना सत्य दर्शन नहीं कर सकता । जिसका चित्त जिस संस्कार से रँगा है वह उन्हें उसी भाव से देखेगा, एवं संस्कार से मुक्त हुए बिना वैसा देखना ही उसके लिए स्वाभाविक है ।

इस कारण विशुद्ध सत्य न होने पर भी किसी भी मत की सर्वथा उपेक्षा करना उचित नहीं है । जो जिस मत के अनुयायी हैं उनके लिए वही मत समादरणीय है, क्यों कि उन्हें अपनी विचार बुद्धिसे उसी का महत्त्व दिखलाई देता है ।

किन्तु इन सब मतों को जानने से लाभ क्या ? श्रद्धावान् साधारण मनुष्य बालोचित सरल हृदय से माँ के निकट उपस्थित होते ही माँ के वात्सल्य, करुण और स्नेह की शीतल छाया पा सकेगा । तब क्रमशः मातृ-संग के प्रभाव से माँ की अन्तःप्रकृति उसके निकट जरा-जरा प्रकट होगी । माँ वास्तव में क्या हैं ? यह प्रश्न लेकर उसे फिर मस्तिष्क को चक्कर में ढालने की आवश्यकता प्रतीत न होगी ।

(५)

माँ चाहे जो भी हों—उनकी मनुष्य देह की लीलाओं

की आलोचना से हम ऐसे अनेक सत्यों का अनुभव कर सकते हैं, जो मनुष्यदृष्टि से हम लोगों के लिए अवश्य ज्ञातव्य और स्मरण रखने योग्य हैं। किस प्रकार भगवान् को प्राप्त करना चाहिये, उन्हें पाने के लिए किस प्रकार के संयम, निष्ठा, वैराग्य, अनासक्ति और त्याग आवश्यक होते हैं, कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानरूप साधना का स्वरूप और फल क्या है, तपस्या क्या है, पूर्ण आत्मसमर्पण या निर्भर भाव किसे कहते हैं, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के ऊपर भगवत्साक्षात्कार का क्या प्रभाव है—ये सब तथा इस प्रकार के अन्यान्य बहुत से प्रश्नों की मीमांसा माँ के बाह्य चरित्र से प्राप्त हो सकती है। ये सब कोई साधारण बातें नहीं हैं। यद्यपि शास्त्रों में अनेक विषयों की आलोचना है तथापि उनका प्रत्यक्ष उदाहरण पाये बिना सब समान रूपसे उनमें दृढ़ श्रद्धा रख सकते। किन्तु जब ये सब सत्य सजीव रूप में किसी के चरित्र में प्रकट होते दिखाई देते हैं तब शास्त्र वचनों पर अटल श्रद्धा उत्पन्न होती है एवं अपने जीवन के ऊपर उनका भाव व्याप्त हो उठता है। माँ का वास्तविक परिचय चाहे जो हो, उसे साधारण मनुष्य उनकी विशेष कृपा के बिना कदापि यथार्थतः लेशमात्र भी नहीं जान सकता और किसी से उसके संबंध में कोई संकेत पाने पर भी उसे हृदयंगम नहीं कर सकता। किन्तु माँ के स्थूल जीवन की धारा देखकर और उसकी आलोचना कर वह अनेक विषयों में लाभ उठा सकता है। माँ के चरित्र और उपदेशों से वह उनका तत्त्व भले ही न समझ सके पर चरित्रों से आत्मोन्नति के मार्ग का पता पा सकता है एवं

उपदेशों से साधना और आचरणों के विषय में अनेक शिक्षाएँ प्राप्त कर सकता है ।

माँ का चरित्र सर्वांश में अनुकरणीय नहीं है, यह सत्य है । क्योंकि वे आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित हैं, भावा-भाव के परे हैं, द्वन्द्वविनिर्मुक्त हैं और हैं शास्त्रीय विधि-निषेध की परिधि के बहिर्भूत । वे-वे ही हैं—वे किसी के अनुकरण के योग्य नहीं हैं । यद्यपि उस स्थिति में उनका कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है—क्योंकि उन्हें ऐसी कोई भी वस्तु अप्राप्त नहीं है, जिसे प्राप्त करने के लिए उन्हें कर्म करना पड़े तथापि स्वभाव की प्रेरणा से लोक शिक्षार्थ उनके देह से कभी-कभी ऐसे कई कर्मों का अनुष्ठान होता है जो सांसारिक लोगों के अनुकरणीय होते हैं । यद्यपि वे सब कर्म स्वाभाविक, अपनी पृथक् इच्छा से उत्पन्न नहीं होते एवं अज्ञान जगत् के सभी कर्म कर्ता की इच्छा से होते हैं, तथापि जगत् के जीवोंके लिए वे सब कर्म अनुकरणीय हैं । माँ ने स्वयं आचरण करके अज्ञ जीव को दिखा दिया है कि कौन कर्म किस प्रकार करना चाहिये; माँ का उद्देश्य यह है कि इस देह का आचरण देखकर कृत्रिम रूपसे होने पर भी जीव इस प्रकार के कर्म करने के लिए प्रवृत्त हो सके । ऐसी स्थिति में उनका वह आचरण अभिनय मात्र है—एवं यह विचित्र अभिनय है, क्योंकि उनके शरीर का आश्रय कर वह अभिनय अपने आप ही हो जाता है । अवश्य यह भी सत्य है कि माँ के शरीर से बहुधा ऐसे अनेक कर्मों की भी उत्पत्ति होती है, जिनका रहस्य समझना कठिन है, जो

स्पष्टत: किसी भी जीव के अनुकरण योग्य नहीं हैं। किन्तु इस तरह के कर्म भी जीव और जगत् के कल्याण के लिए ही होते हैं[१]।

इसलिए यदि माँ को मनुष्य भी कहें तो भी उनकी महिमा में कमी नहीं आ सकती और अवतार अथवा नित्य सिद्ध कह कर स्तुति करने पर भी उनकी उत्कृष्टता का ख्यापन नहीं होता। उनकी सत्ता और बोध साम्य-भाव पर प्रतिष्ठित हैं, उनके लिए छोटा और बड़ा, स्तुति और निन्दा, दोनों ही समान हैं, उनका उत्कर्ष अथवा अपकर्ष नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण जगत् ही उनका अपना घर है, समस्त प्राणि-वर्ग ही उनके आत्मीय जन हैं। वे स्वभाव में स्थित होकर भी सर्वत्र स्वभाव का ही खेल देखती हैं। अभिमान-वश क्षुद्र मनुष्य यद्यपि कर्ता बन कर अपने को स्वाधीन समझते हैं, पर वास्तव में जहाँ पर जो कुछ भी हो रहा है वह स्वभाव वश ही हो रहा है। अविद्या के पर्दे से वह समझ में नहीं आता इसलिए महाशक्ति की क्रीड़ा में इच्छा शक्ति का आरोप होता है तथा उसका अवश्यम्भावी

---

१. माँ प्राय: कहती हैं, "इस शरीर का सब कुछ तुम लोगों के प्रयोजनानुसार अपने आप हो जा रहा है।" इससे प्रतीत होता है कि माँ के शरीर में जब कभी चाहे कैसा ही अभिनय क्यों न हो, वह उनकी इच्छा से नहीं होता—स्वाभाविक है। वह किसी न किसी के प्रयोजनानुसार होता है। मनुष्य अदूरदर्शी है, इसलिए सर्वदा उस प्रयोजन को देख नहीं सकता यह सही है, किन्तु प्रयोजप्त अवश्य ही है। व्यासदेवजी ने योगभाष्य में एक जगह ईश्वर के देह ग्रहण के सम्बन्ध में लिखा है—'तस्य आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रह एव प्रयोजनम्।' यह उसी प्रकार है।

फल सुख-दु:खका भोग अनिवार्य हो जाता है ।

जिस समय माँ पहले गृहस्थाश्रम में गृह-कार्य निरत थीं उस समय भी वे जिस बोध में प्रतिष्ठित थीं, गृहस्थाश्रम से अलग होकर इस समय भी वे उसी में प्रतिष्ठित हैं । उनकी स्थिति अटल है । देह विभिन्न अवसरों पर नाना स्वाँगों में सजता है सही—जब जिस भावमें सजा है उस समय वही अभिनय यथार्थ रूपसे हो गया है—किन्तु वे जानती हैं कि वे जहाँ पर हैं वहीं पर हैं, उस स्थिति में रहकर ही साक्षिरूप से निर्विकार भाव से वे देह और देहाश्रित संसार का अभिनय देखती जा रही हैं ।

यह जो क्रिया के भीतर अकर्ता होकर केवल द्रष्टा रूपसे स्थिति है, साधारण मनुष्य के लिए उसे समझना कठिन है । बोध स्वरूप में स्थिति होने पर भी शक्ति का खेल स्वभावत: जिस समय जहाँ पर जिस प्रकार से होने वाला होता है होकर ही रहता है—उससे सत्य भाव की निर्लिप्तता और नि:सङ्गता लेश मात्र भी क्षुण्ण नहीं होती । यह साधारण बुद्धि का अगम्य रहस्य है ।

मनुष्यों के सब कर्मों के मूलमें इष्ट साधनता ज्ञान अथवा कर्त्तव्य ज्ञान रहता है । अर्थात् मनुष्य उसी कर्म को करने के लिए प्रवृत्त होता है जिससे सुखप्राप्ति अथवा दु:खनिवृत्ति होगी ऐसा उसका विश्वास हो, अथवा कहीं-कहीं पर औचित्य बोध से भी वह कर्म में प्रवृत्त होता है । दूसरा आदर्श प्रथम की अपेक्षा अवश्य श्रेष्ठ है, पर जगत् में उसके भी उदाहरण हैं । किन्तु जो आप्तकाम और आत्माराम हैं, जो कृतकृत्य हैं, जिन्हें किसी बात की कमी

नहीं है वे सुख-दुःख में समदर्शी होने के कारण सुखके प्रलोभन अथवा दुःखकी पीड़ा से विचलित नहीं होते, एवं उनका कोई कर्त्तव्य नहीं रहता। किन्तु फिर भी वे कार्य करते हैं। वह कर्म स्वभाव का कर्म है; इच्छा की प्रेरणा से अथवा अहंबुद्धि की प्रेरणा से वह कर्म उत्पन्न नहीं होता। जिस हृदय में कर्तृत्वाभिमान की कलुषता नहीं है वहाँ फलाकांक्षारूप इच्छा और कर्त्तव्य विचार का उदय होने की संभावना कहाँ ? वही कर्म अकर्ता का कर्म है स्वाभाविक कर्म है, निर्दोष कर्म है। वह कर्म होने पर भी अकर्म है। भवत्-शक्ति के उच्छ्वास (उफान) से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर जिस कर्म का स्वतःचालित प्रवाह बह चला है यही वही कर्म है। यह लीलारूपी है। कर्त्ता के व्यक्तिगत प्रयोजन से वह परिच्छिन्न नहीं होता। जगत् का कल्याण ही इसका एकमात्र फल है। अज्ञ जीव अपने सीमित ज्ञान से इस मंगलमय लक्ष्य को यद्यपि सदा देख नहीं पाता तथापि इसे स्वीकार किये बिना तो वह रह नहीं सकता।

माँ के अपने से अभिनीत जीवन नाटक के क्रम-विकास के मार्ग में हमें निम्नलिखित सत्यों का प्रत्यक्ष होता है :—

(क) अन्तःकरण की तीव्र व्याकुलता ही भगवत्प्राप्ति में प्रधान सहायक है। यदि भगवान् को प्राप्त करना हो तो दिन पर दिन, मास पर मास, वर्ष पर वर्ष सदा के लिए सब अवस्थाओं में—सोते, जागते, उठते, बैठते सब कामोंके आरम्भ और अन्तमें उनके लिए एक प्रकार की वेदना जगाई रखनी चाहिये। संसार के सुख-सम्पत्ति, आराम,

आडम्बर किसी से भी जिस तरह हृदय से वे भुलाये न जा सकें ।

(ख) इसके फलस्वरूप क्रमशः चित्त उनके ध्यान से तन्मय हो जाता है और जो कुछ उनके ध्यान में विघ्नरूप रोड़े प्रतीत होते हैं उनके प्रति निरादर उत्पन्न होता है । इस तरह भगवद्भाव के विरोधी आचरण और वृत्तियों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है तथा सांसारिक विषयों में क्रमशः अनासक्ति बद्धमूल होती है ।

(ग) तब एकान्त में कुछ समय तक उनका आश्रय कर रहना चाहिये । उपदेष्टा के अभाव की प्रीति होने का कोई कारण नहीं है । क्योंकि सरसरी तौर पर हृदय ही उपदेष्टा का कार्य कर सकता है । जिसे जो रूप, जो नाम, जो भाव भला लगे उसको प्रथमावस्था में उसीका स्मरण के लिए अवलम्बन करना चाहिये । दीक्षा यदि न भी हुई हो तो इसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती । क्रमशः स्मरण का समय, मात्रा, तीव्रता आदि बढ़ाने चाहिये अथवा स्वयं ही बढ़ जाते हैं । गुरु, मन्त्र, देवता आदि की आवश्यकता होने पर वे सब समय पर अपने आप ही उपस्थित हो जाते हैं । उनमें से जिस समय जिसकी आवश्यकता पड़ती है वही उस समय आविर्भूत हो जाता है । अविच्छिन्न स्मृति ही ध्यान और उपासना है—जिससे वह स्वायत्त हो उसके लिए मनोयोग देना चाहिये । उनकी अनुकम्पा की ओर दृष्टि लगा कर, फल की आशा का त्याग कर यथाशक्ति अपने आप प्रयत्न करते जाना चाहिये । आहार-शुद्धि और संयम, वाक्-संयम, मौन, निश्चिन्तता, कर्त्तव्यनिष्ठा, सदाचार, सत्य,

दया, प्रेम, क्षमा और विचार—सब सद्‌गुण चित्तक्षेत्रमें धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार उत्पन्न होते हैं। इस तरह क्रमशः विशुद्ध भाव का उदय होता है।

(घ) क्रम से अपना-पराया भाव घट जाता है। व्यवहार क्षेत्र में भी अपने-पराये का भाव उठ जाता है। सम्पूर्ण जगत् ही एक अविभक्त परिवार के रूपमें प्रतीत होने लगता है।

(ङ) धीरे-धीरे भाव-ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। नियन्त्रणशून्य शक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने लगती है। संस्कारों का जाल कट जाता है।

(च) इस तरह साधना की परिपुष्टता से खण्ड भाव में अनन्त और अखण्ड सत्ता के प्रकाश की उपलब्धि होती है तब सदा के लिए खण्डभाव और खण्ड कर्मों की समाप्ति हो जाती है। यह जो विच्छिन्न के भीतर अविच्छिन्न सत्ता के बोध की बात कही गई है वह साक्षात् अनुभव है—शास्त्रीय वाक्य और युक्ति से उद्भूत परोक्ष ज्ञानमात्र नहीं है। इसलिए जिनको यह ज्ञान होता है उनके चित्त में साम्प्रदायिकता का लेश भी नहीं रह सकता। जिस व्यक्ति को अनन्त विभिन्न भावों के अन्दर भी एक ही परम सत्ता की प्रतीति होती है वह किसी विशेष भाव में बद्ध न होकर भी उसके खेल का अनुभव कर सकता है।

(छ) इस तरह भाव का खेल देखते-देखते भावराज्य का त्याग कर आगे बढ़ सकने पर निर्मल ज्ञानके आलोक से अन्तराकाश उज्ज्वल हो उठता है। उस समय साधक को नित्य और पूर्ण सत्य का प्रकाश होता है तथा उसमें

उसका आत्मसमर्पण पूर्णता प्राप्त करता है। उसी समय अहंबुद्धि की चरम आहुति सम्पन्न हो जाती है। उस समय अपनी इच्छा या अनिच्छा का फिर कुछ अवशेष नहीं रहता। सर्वत्र सब कर्मों में एक स्वभाव का खेल ही दृष्टिगोचर होता है।

माँ कहती हैं, असीम को यदि पाना हो तो पहले सीमा के भीतर अपने को आबद्ध कर चलना चाहिये—पीछे अनन्त के आभास से सीमा का बन्धन खुल जाता है।" माँ के अपने जीवनाभिनय में हम इस सत्य को स्पष्ट देख सकते हैं।

(६)

ग्रन्थकर्त्री श्रीमती गुरुप्रिया देवी के सम्बन्ध में यहाँ पर दो-एक शब्द कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। गुरुप्रिया माँ के एकनिष्ठ भक्त और सेवक अवकाशप्राप्त सिविल सर्जन श्रीयुत् शशाङ्कमोहन मुखोपाध्यायजी की (इस समय जो स्वा० अखण्डानन्द गिरिके नाम से परिचित हैं) कन्या हैं। उन्हें १९७२ वि० के पौष महीने से माँ के सत्संगलाभ का सौभाग्य मिला है—बीच-बीच में कुछ समय के लिए माँ के आदेश से व्यवधान पड़ने पर भी उस समय से माँ के साथ उनका साहचर्य एक प्रकार से लगातार बना हुआ है। उन्होंने निरन्तर माँ की सेवा और आनुषङ्गिक अन्यान्य अनेक कर्मों में व्यापृत रहकर भी धारावाहिक रूप से माँ का चरित्र और उपदेश आदि लिखने का प्रयत्न किया है और कर रही हैं, इससे माँ के सभी भक्त उनके ऋणी हैं।

गुरुप्रिया, ब्रह्मचारिणी, वैराग्यसम्पन्न, निष्ठावती और सर्वोपरि माँ के प्रति असाधारण भक्तिमती हैं—इसके अतिरिक्त उनमें सूक्ष्म दर्शन की और निपुणतापूर्वक वर्णन करने की अनुपम क्षमता है; विशेषतः नाना कारणों से उन्हें घनिष्ठतापूर्वक माँ का संग और सेवा का अधिकार प्राप्त हुआ है। इसलिए विवरण लिखने की योग्यता उनमें विशेष रूप से होगी इसमें सन्देह नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे उक्त योग्यता का सदुपयोग कर धन्य हुई हैं।

श्रीगोपीनाथ कविराज

□□

संक्षिप्त पूर्वजीवन चरित

जन्म और बाललीला

श्री श्री माँ आनन्दमयी ने[1] वैशाख १९ सौर सं० १९५३ वि० (३० अप्रैल १८९६ ई०) बृहस्पतिवार रात्रिशेष में ३ बजे त्रिपुरा जिले के खेओड़ा गाँव में जन्म लिया था[2]। उनके पिताजी श्री विपिनविहारी भट्टाचार्य और माताजी मोक्षदा सुन्दरी अथवा विधुमुखी देवी उस समय अपने गाँव विद्याकूट का परित्याग कर खेओड़ा गाँव में रहते थे। उक्त गाँव मातामहजी (श्रीविपिनविहारीजी) का ननिहाल है।

माँ अपने पिता की दूसरी सन्तान हैं। माँ के जन्म के पूर्व उनकी एक बहिन हुई थी, किन्तु वह बालिका अधिक दिन जीवित नहीं रही। माँ के जन्म के पहले ही उसने अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली थी। माँ के बाद लगातार तीन भाई हुए। वे भी अधिक दिन नहीं टिके। थोड़े ही दिन धरा-धाम में रहकर उन्होंने भी अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। उनमें से पहला सात वर्ष जीवित रहा। उस बच्चे को जब अन्त समय बाहर रखा गया, तब

---

१. माँ का जननी का रखा हुआ प्रसिद्ध नाम निर्मला सुन्दरी है। इसके सिवा तीर्थवासिनी, दाक्षायणी, गजगंगा, निर्मला और कमला—ये भी पाँच नाम उनके हैं। आनन्दमयी नाम ढाका के ज्योतिषचन्द्र रायजी ने रखा। तब से इसी नाम से माँ सर्वत्र परिचित हैं।

२. माँ के जन्मकाल में कृष्णपक्ष की चतुर्थी तिथि थी।

उसने माँ से तीन बार "माँ, मैं तो मरता हूँ" कह कर प्राण छोड़े। दूसरे के कपाल पर राजतिलक का चिह्न था। उसे देखकर सभी लोग कहते, "गरीब के घर यह बच्चा जीयेगा नहीं।" मृत्यु के पहले मातामहजी ने उस चिह्न को देखकर कहा था—"जाने के पहले मालूम पड़ता है चिह्न दिखा गया है।" चार वर्ष की अवस्था में उस बच्चे की मृत्यु हुई। तीसरा केवल डेढ़ महीना धरा-धाम में रहा। इन तीन भाइयों के बाद माँ की दो बहिनें हुईं और सबके अनन्तर एक भाई उत्पन्न हुआ। दोनों बहिनों का नाम क्रम से सुरबाला और हेमलता पड़ा एवं भाई का नाम माखन। माँ के पहले एक बालिका जाती रही, इसलिए मातामहीजी (मोक्षदा सुन्दरीजी) माँ के आविर्भाव के दूसरे दिन प्रातःकाल ही माँ को तुलसी के तले लिटा लाईं। इसी तरह अठारह महीने तक नित्य ही तुलसी के तले लिटा लाती थीं। उसके बाद जरा बड़ी होने पर माँ स्वयं ही जाकर लोट-पोट ले आतीं। माँ के आविर्भाव के समय मातामहीजी को कुछ ऐसी विशेष प्रसव-वेदना का अनुभव नहीं हुआ, साधारण वेदना होते ही दस मिनट में प्रसव हो गया। और एक बात हुई वह यह कि माँ आविर्भूत होकर साधारण बच्चे-बच्चियों के समान रोईं नहीं—एकदम चुप रहीं। माँ इस बात को सुनकर कहती हैं, रोती क्यों ? मैं उस समय झरोखे के छेद से आम का पेड़ जो देख रही थी।" माँ के गर्भ में आविर्भूत होने की वार्ता प्रकट होने के पहले से ही मातामहीजी विविध देव-देवियों की मूर्तियाँ स्वप्न में देखती थीं एवं उन सब मूर्तियों का मानों वरण कर उन्हें घर में स्थापित कर रही

हों ऐसा देखती थीं । माँ का आविर्भाव होने के बाद भी बहुत दिनों तक वे ऐसा देखती रहीं ।

मातामहजी की वंशमर्यादा अत्यन्त प्रतिष्ठित है । ये काश्यप गोत्रिया हैं—विद्याकूट के काश्यप विख्यात हैं । विद्याकूट में इनके सम्बन्धियों के बहुत घर हैं । इनके मातामह-कुल में एक देवी तथा मातामहीजी के पितृकुल में एक देवी सती हुई थीं । मातामहजी की प्रपितामही (पर-दादी) भी सती हुई थीं । मातामहजी के पूर्वजों में से किसी-किसी को सिद्धि भी प्राप्त हुई थी । प्रथम कन्या के जन्म के अनन्तर एक नौकरी मिल जाने के कारण मातामहजी परदेश चले गये । घर से जाकर तीन वर्ष तक उन्होंने न तो घर को अपनी खबर भेजी और न घर की ही खबर ली । मातामहीजी को अपनी मातामहीजी के समीप खेओड़ा रख गये थे । पीछे वह लड़की जाती रही—किन्तु मातामहजी का कोई समाचार नहीं मिला । गरीब गृहस्थ थे—खबर लेना भी मुश्किल था । कुछ दिनों के बाद पड़ोसियों ने मातामही की ओर दृष्टिपात कर एक आदमी भेजकर खबर मँगाई । तीन वर्ष बाद मातामहजी घर आये । तब ज्ञात हुआ कि लड़की की मृत्यु का समाचार भी उन्हें मिल गया था—किन्तु उससे उन्हें कुछ दुःख नहीं हुआ । इसके कुछ दिन बाद ही माँ गर्भ में आविर्भूत हुईं । कभी-कभी माँ इसीलिए कहती हैं—"इस शरीर के आविर्भूत होने के पूर्व ही पिताजी ने गृहत्याग किया था । कई दिनों तक गेरुआ वस्त्र भी धारण किया था । हरि-संकीर्तन में समय व्यतीत करते थे । उनके इस वैराग्यभाव के समय ही इस शरीर का आविर्भाव

हुआ ।"

सुनने में आता है कि मातामहजी की माताजी कसवा के विख्यात काली-मन्दिर में विपिन का एक पुत्र हो, ऐसी प्रार्थना करने गईं और कर बैठीं 'विपिन के कन्या हो ।' वृद्धा की इस प्रार्थना के कुछ ही दिन बाद माँ का आविर्भाव हुआ ।

माँ की असाधारणता बचपन में ही प्रकट हो चुकी थी । बाल्यावस्था से ही माँ खूब हँसमुख थीं । उनकी स्वाभाविक शक्ति उस समय भी आज की ऐसी ही थी । सभी का माँ के प्रति अत्यन्त स्नेह था । गरीब के घर में जन्म लेने पर भी पिता-माता के प्रेम से माँ को विशेष कष्ट प्रतीत नहीं हुआ । माँ के तीन छोटे भाइयों की मृत्यु के शोक में मातामहीजी को विशेष करके रोते किसी ने नहीं देखा । कभी यदि वे रोने लगतीं तो माँ इस प्रकार चिल्लाकर रोना आरंभ कर देतीं कि मातामहीजी बाध्य होकर स्वयं शान्त हो माँ को शान्त करतीं । इस प्रकार माँ मातामहीजी को रोने नहीं देती थीं । ऐसा प्रतीत होता है कि माँ को सदा पूर्ण ज्ञान था । एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ ने मातामहीजी से कहा था, "माँ, मेरे जन्म के तेरहवें दिन श्रीनन्दन चक्रवर्ती (मातामहीजी के ममियाँ श्वशुर) मुझे देखने आये थे न ?" मातामहीजी को उस बात का बिलकुल स्मरण न था, माँ की बात सुनने के अनन्तर मातामहीजी को उसकी याद आ गई । बचपन से ही उन्हें समाधि-सी लगती थी । बहुत दूर पर कीर्तन हो रहा हो, माँ घर के भीतर सोई हों—कहती हैं, शरीर में एक अस्वाभाविक

अवस्था हो जाती थी। किन्तु कमरे में अँधेरा रहता था, इसलिए पिता, माता कोई देख न पाते थे। और मेरे भी मन में ऐसा एक भाव रहता कि कोई देखे नहीं। इसीलिए प्रतीत होता है कि उक्त अवस्था गुप्त ही रहती।"[१]

माँ जिस समय दो वर्ष दस महीने की थीं, उस समय मातामहीजी को गोद में लेकर पड़ोसी (चन्द्रनाथ भट्टाचार्य) के घर कीर्तन में गईं। माँ को हिलडुल कर गिरती देखकर उन्होंने कहा, "सोती क्यों है ? कीर्तन सुन।" आगे चलकर माँ ने मातामहीजी को स्वयं ही उस दिन की बात का स्मरण कराया था, किस घर में कीर्तन सुनने गये थे यह भी बतला दिया था। माँ के कहने पर मातामहीजी को भी स्मरण हो आया। माँ कहती हैं, "इस समय कीर्तन में जैसी अवस्था होती है उस समय भी वैसी ही होती थी। मालूम पड़ता है कि उपयुक्त समय न होने के कारण उस समय वह प्रकाश में नहीं आती थी।"

---

१. इस बात पर बचपन के वृत्तान्त के सम्बन्ध में किसी को जिज्ञासा हुई कि उस समय तो साधन आदि क्रिया शरीर में आरम्भ नहीं हुई थी, फिर ये सब क्रियाएँ उस समय कैसे होती थीं ? इसके उत्तर में माँ ने कहा, "यह शरीर जैसे बहू, बेटी बन कर रहा वैसे ही ये सब अवस्थाएँ भी जब जिस भाव में शरीर रहता उस समय वह वह अवस्था इस खेल के समान ही फिर प्रकट दिखाई देती। क्योंकि तुम लोगों के तुल्य चलना फिरना, एवं यह समाधि और कभी-कभी भावस्थ रहना अथवा जैसे तुम लोग सन्ध्या करते हो इस तरह प्रकाश होना, इस शरीर में ये सब एक समान हैं।" फिर, यह भी मैंने सुना है कि कभी किसी स्थान, काल और अवस्था की अपेक्षा नहीं रहती थीं। अपने भाव में मन की मौज के अनुसार अपने में ही रह कर खेलती थीं।

माँ अपने बचपन में मातामही की बड़ी सास (यानी पिताजी की ताई) के साथ चानला में पागल शिवके दर्शन करने गईं। वे माँ को जिस जगह बैठा गईं वहाँ से माँ ने देखा कि शिवजी निकटवर्ती तालाब में एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रहे हैं। निरन्तर इसी प्रकार जल में खेल रहे हैं। माँ ने और भी कुछ देखा था। ऐसी भी किंवदन्ती है कि उक्त शिवजी सदा मन्दिर में दिखाई नहीं देते हैं। जंगम शिव हैं।

बाल्यावस्था में जब मातामहीजी माँ को भात खिलाने बैठातीं, उस समय माँ अन्यमनस्क हो उठतीं। मातामहीजी माँ को धक्का देकर बिगड़तीं—"भोजन करने बैठकर भोजन करने की ओर ध्यान नहीं देती, ऊपर की ओर देखती है।" माँ कुछ कह नहीं सकती थीं। आगे चलकर माँ ने बतलाया कि मैं देखती कि कितने ही देवदेवियों की मूर्तियाँ आ रही हैं और जा रही हैं।

माँ का स्वभाव निसर्गतः सरल था, इसलिए बाल्यावस्था में सभी लोग माँ को बड़ी सीधी भोली कहते थे। मातामहीजी तो अक्सर ही कहतीं कि यह तो बड़ी ही सीधी है, इसे कुछ भी सुध-बुध नहीं है। माँ एक दिन तालाब से एक घड़ा जल भर कर बगल में दबा कर टेढ़ी बनकर आईं, खड़ी होकर मातामहीजी से बोलीं, "तुम सब लोग मुझे सीधी कहते हो, लो मैं टेढ़ी हो गई हूँ।"

माँ का लिखना-पढ़ना सामान्य ही हुआ था। कुछ दिन स्कूल में पढ़ा था। मामाजी के मकान में बालिका-

विद्यालय के एक अध्यापक रहते थे। माँ वहीं जाकर

पहले-पहले स्कूल में प्रविष्ट हुईं। उन्होंने अ, आ पढ़ा दिये। दूसरे ही दिन अ, आ सीख कर माँ ने उनके सामने पढ़ दिये फिर क, ख पढ़ा ले आईं। उसके दूसरे ही दिन माँ ने सब क, ख सीख डाले। यह देखकर अध्यापकजी को बड़ा आश्चर्य हुआ एवं उन्होंने सोचा कि मालूम होता है इसने निश्चय ही पहले पढ़ा होगा। किन्तु माँ का वह पहले-पहल ही पुस्तक-परिचय था, इसी तरह सब कैसे हो जाता भगवान् ही जानें। माँ थोड़े ही दिन वहाँ रहीं। उसके बाद खेओड़ा चली गईं। वहाँ उस समय जो स्कूल के मास्टर थे वे रिश्ते में माँ के दादा लगते थे। माँ स्कूल में बहुत कम जातीं, क्योंकि स्कूल दूर था और छोटे भाइयों की बीमारी भी कुछ दिन बाधक हुई थी। यह सही है कि वे पढ़ती न थीं, किन्तु मास्टर के समीप पढ़ते समय सब ठीक रीति से हो जाता था। एक बार पुस्तक खोलकर तनिक देखते ही माँ ने एक पद्य कण्ठस्थ कर लिया। उस दिन स्कूल में इन्स्पेक्टर आये थे। उन्होंने भी पुस्तक को खोलकर देखते ही ठीक वही पद्य माँ से बोलने को कहा। माँ ने उसे अच्छी तरह से सुना दिया। पढ़ना और नामवरी अपने आप हो जाती। शिक्षक महाशय ने स्कूल की नामवरी के लिए माँ तथा अन्य तीन लड़कियों को क, ख क्लास से लोअर प्राइमरी क्लास में चढ़ा दिया। माँ अक्सर स्कूल नहीं जाती थीं। बहुत दिनों के बाद स्कूल जाकर उन्होंने देखा कि लड़कियाँ बहुत आगे बढ़ गई हैं। शिक्षक ने माँ को क्लास के समान रखने के लिए उनके साथ-साथ वे जो पढ़ रही थीं वही माँ को भी पढ़ा दिया। उनका पढ़ना

बहुत अच्छी तरह हो गया ।

मातामहजी ने एक दिन बतला दिया कि जहाँ कौमा या पूर्ण विराम हो, पढ़ते समय वहाँ पहुँच कर रुक जाना चाहिये । मातामहजी का आदेश था, इसलिए माँ एक साँस में पढ़ती रहतीं । यदि बीच में साँस जरा रुक जाती तो माँ फिर पहले से आरंभ करतीं । एक साँस में पढ़कर अत्यन्त कष्ट से शरीर को टेढ़ा-मेढ़ा कर पूर्ण विराम के समीप पहुँच कर साँस छोड़तीं । जिस समय दुःख का भाव दिखाना होता उस समय शरीर से वह भाव प्रकट हो जाता । जिस समय लज्जा का भाव दिखाना होता उस समय शरीर से लज्जा का भाव प्रकट हो जाता ।

बाल्यावस्था में हिन्दू-मुसलमान सभी माँ के प्रति खूब स्नेह करते थे । मुसलमान सदा माँ को गोद में लेते । माँ को जमीन पर रख देने पर वे गोद में उठा लेते । मातामहीजी (नानीजी) कहतीं कि अन्नप्राशन होने तक मुसलमान के छू लेने में कोई दोष नहीं है । अन्नप्राशन करने के अनन्तर उनके छू लेने पर स्नान करना चाहिये ।

खेओड़ा में रहते समय माँ की बाल्यावस्था की एक घटना का यहाँ पर मैंने उल्लेख किया है । माँ उस समय नन्हीं बच्ची थीं । एक दिन माँ ने देखा कि एक पेड़ पर केवल एक आम पेड़ की चोटी पर पका है । उस समय वैशाख का महीना था, पेड़ पर आम विशेष पके न थे । कोई एक पूजा थी, सभी पैसे से आम खरीद कर पूजा करने वाले थे । माँ ने नानीजी से कहा, "माँ, तुम पूजा में आम चढ़ाओगी न ?" नानीजी ने कहा, "पैसे कहाँ

पाऊँगी ? पेड़ पर भी तो आम पके नहीं हैं । पूजा पर कैसे आम चढ़ाऊँगी ।'' यह बात सुनते ही माँ ने दौड़ कर उस आम के पेड़ के नीचे जाकर देखा कि ठीक वही आम जमीन पर गिरा है । उन्होंने लाकर उसे माँ को दिया । इस सिलसिले में माँ ने कहा, ''मेरे ऊपर बड़ा कड़ा शासन रहता था कि मैं दूसरे की वस्तु में हाथ न लगाऊँ । मुझे सहसा उस पके हुए आम को लाती देख कर माँ मुझे डाँटने लगीं—'तू किसी दूसरे के मकान से आम ले आई है, हमारे पेड़ पर तो आम पके नहीं हैं ।'' मैंने माँ से कहा, 'नहीं माँ, मैं किसी के मकान से नहीं लाई हूँ । वहाँ पर मुझे मिला है । तुम जाकर देख आओ ।'

विवाह और उत्तरकाल

संवत् १९६५ सौर २५ माघ को बारह वर्ष १० मास की अवस्था में ढाका—विक्रमपुरके अन्तर्गत आठपाढ़ा गाँव के डिंसाई श्रोत्रिय श्रीजगबन्धु चक्रवर्ती और त्रिपुरासुन्दरी के पुत्र के साथ श्री श्री आनन्दमयी का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ । वर का नाम रमणीमोहन चक्रवर्ती था, किन्तु पीछे ढाका जाने के बाद भक्त लोग उन्हें 'भोलानाथ' नाम से पुकारते हैं एवं इसी नाम से सर्वत्र उनकी प्रसिद्धि है । इसलिए यहाँ पर मैंने 'भोलानाथ' नाम का ही व्यवहार किया है ।

उस समय भोलानाथजी की माँ जीवित न थीं, किन्तु पिताजी जीवित थे । विवाह के दो वर्ष बाद पिताजी की मृत्यु हुई । उनके दो बड़े भाई थे । उनके नाम थे—

रेवतीमोहन और सुरेन्द्रमोहन । उनके छोटे भाई भी दो ही थे—एक का नाम कामिनीकुमार और दूसरे का यामिनीकुमार । बहनें पाँच थीं । विवाह के बाद भोलानाथजी ने दो-एक पुस्तकें ला कर माँ को दी थीं, किन्तु संयुक्ताक्षर, लाइन और छन्द के अनुसार पढ़ना माँ को महा कठिन प्रतीत हुआ, इसलिए फिर पुस्तक पढ़ना नहीं हुआ ।

विवाह के समय भोलानाथजी पुलिस विभाग में काम करते थे । विवाह के कुछ समय बाद ही अर्थात् संवत् १९६६ के भाद्रपद में उनकी नौकरी छूट गई । तभी से कई वर्षों तक वे निरालम्ब अवस्था में रहे । माँ विवाह के चार वर्ष तक बड़े जेठजी रेवती बाबू के निकट रहीं । वे श्रीपुर, नरुन्दी आदि स्थानों में (ढाका-जगन्नाथगञ्ज लाइन में) रेलवे विभाग में स्टेशन मास्टर का काम करते थे । इसी बीच में (संवत् १९६८ में) माँ के पिताजी अपने ननिहाल खेओड़ा गाँव का त्याग कर अपने पैतृक गाँव विद्याकूट आकर रहने लगे । माँ के छोटे भाई माखन का जन्म लगभग उसी समय हुआ ।

जेठजी के निकट रहते समय माँ घर-गृहस्थी का सम्पूर्ण काम अपने हाथ से करती थीं और यथाशक्ति जेठजी की सेवा-शुश्रूषा करती थीं । जेठजी भी उनपर अत्यन्त स्नेह करते थे । वे उस समय अत्यन्त लज्जाशील थीं, कुलवधू के पालनयोग्य सब नियमों और आचरणों का पालन करती थीं । उस समय भी कभी-कभी माँ को भावावेश हो जाता था, लेकिन प्रकट न होने के कारण लोग उसे समझ न पाते थे । कभी-कभी रसोई बनाते समय

ऐसी अवस्था का उदय हो जाता—लोगं समझते कि बहू बहुत सोने वाली है । सम्भवतः दाल-भात गिर पड़ता, जेठानी जी आकर बकझक करतीं । उस समय माँ अत्यन्त लज्जान्वित होकर उठ बैठतीं और फिर सब ठीक करके रसोई बनातीं । माँ की प्रकृति अत्यन्त शान्त थी, इसलिए सभी उन पर स्नेह करते थे[१] ।

जेठजी की मृत्यु के अनन्तर माँ आठपाड़ा के मकान में आकर बड़ी जेठानीजी के निकट छः महीने रहीं । उसके बाद छः महीने अपने पीहर विद्याकूट रहीं । माँ के आठपाड़ा रहते समय ही भोलानाथजी की अष्टग्राम में ढाका के नवाब के स्टेट के अन्तर्गत सर्वे डिपार्टमेंट में नौकरी लग गई । तदनन्तर माँ अष्टग्राम आईं । वहाँ माँ एक वर्ष चार महीना रहीं ।

अष्टग्राम में जयशङ्कर सेन महाशय की स्त्री माँ को 'खुशी की माँ' कह कर पुकारती थीं । उनके पुत्र शारदाशङ्कर माँ को भागवत सुनाने के लिए वहाँ गये थे । सेनजी के साले हरकुमार राय के सम्बन्ध में दो-एक बातें इस सिलसिले में उल्लेखयोग्य प्रतीत होती हैं । माँ के अष्टग्राम जाने से पहले अष्टग्राम में ही हरकुमार का मातृवियोग हो गया था । उनकी माँ जिस मकान में रहती थीं दैवात् माँ भी उसी मकान में रहने लगीं । इस सूत्र से हरकुमार माँ को माँ कह

१. माँ की बड़ी जेठानी और ननद के मुँह से भी मैंने ये सब बातें सुनी हैं । पीछे माँ के साथ-साथ मैं आठपाड़ा, बाजितपुर आदि स्थानों में जा कर वहाँ के लोगों के मुँह से भी सब बातें सुन आई हूँ । माँ की पूर्वलीला के सब स्थान देख आई हूँ ।

कर पुकारने लगे । यही माँ का सर्वप्रथम 'माँ' सम्बोधन था । उस समय माँ की अवस्था १७-१८ वर्ष की होगी । बीच-बीच में हरकुमार में मस्तिष्क-विकृति के लक्षण दृष्टिगोचर होते । मस्तिष्क अच्छा रहने पर वे खूब काम-धाम करते थे । वे बिलकुल अशिक्षित न थे, नौकरी भी अच्छी ही करते थे । फिर भी धर्मभाव में बहुधा पागल हो जाते थे, इसलिए उनकी नौकरी अधिक दिन टिकी नहीं । वे अष्टग्राम में अपनी बहन के मकान में रहते थे । माँ को जिस तरह किसी प्रकार की असुविधा न हो, इस ओर उनका विशेष लक्ष्य रहता था । माँ उनसे बोलती न थीं, उनके सामने घूँघुट काढ़ती थीं, किन्तु वे नियमतः प्रतिदिन बाजार से माँ का सौदा-पत्ता ला देते थे । बहुधा गीली और कच्ची लकड़ियों से भोजन बनाने में माँ को कष्ट हो रहा है यह देखते ही वे जहाँ-कहीं से भी सूखी लकड़ियाँ लाकर माँ को देते और कहते—"ले बेटी, इन लकड़ियों से रसोई बना ।" माँ से बोलने के लिए वे बहुत अनुरोध करते, किन्तु माँ उनसे बोलती न थीं । बहुत दिनों के बाद भोलानाथजी के आदेश से माँ उनसे बोलने लगी थीं । माँ के प्रति इतना आदर करना पड़ोसियों को अच्छा नहीं लगता था । किन्तु उस ओर उनका दृष्टिपात न था । प्रतिदिन सवेरे-शाम माँ को प्रणाम करना उनका दैनिक कार्य था । माँ खाने बैठतीं तो वे प्रसाद के लिए हाथ पसार कर बैठ जाते । माँ उनको प्रसाद तो नहीं ही देतीं, उनके सामने न खाऊँगी यह ठान कर हाथ उठाकर बैठ जातीं । कई दिन इस तरह निराश होकर उन्होंने भोलानाथजी के

पास जाकर कहा—"देखो, बेटी से इतनी मिन्नत के साथ कहता हूँ, बेटी प्रसाद नहीं देती।" माँ ने भी भोलानाथजी से सब बातें कहीं। सब सुनकर और हरकुमार का भाव देखकर भोलानाथजी ने माँ से कहा, "उसका जब इतना आग्रह है, तुम खाते समय थोड़ा सा कुछ दे दो।" भोलानाथजी के आदेश से तब माँ सब ही करतीं। एक दिन प्रसाद देने के बाद देखने में आया कि प्रतिदिन ही माँ के खाते समय हरकुमार आकर उपस्थित हो जाते, एक दिन का भी इसमें हेर-फेर न होता। बीच-बीच में माँ से कहते—"बेटी, तुम को किसी ने पहचाना नहीं।" जब वे अनेक अनुरोधों से भी माँ को अपने साथ बातें करा सकने में समर्थ नहीं हुए, तब एक दिन वे भीषण भाव धारण कर कहने लगे—"बेटी, तू इतनी बड़ी पाषणी है। मैं एक वर्ष से तुझसे बोलने के लिए कह रहा हूँ, तू मेरे साथ बोलती नहीं है। मैं यदि पत्थर के निकट जाकर इस तरह माँ कह कर पुकारता तो पत्थर में भी प्राण-सञ्चार कर सकता। बच्चे के निकट माँ की लज्जा—यह कैसी बात है ?" एक दूसरे दिन उन्होंने कहा था, "बेटी, तू देखेगी,—मैंने तुझे माँ कह कर पुकारा है, एक दिन सारा जगत् तुझे माँ कह कर पुकारेगा।" हरकुमार की यह भविष्यवाणी सत्य हुई है। किन्तु हरकुमार आज कहाँ है ? माँ के उनके साथ बोलने के कुछ ही दिन बाद हरकुमार एक नौकरी पाकर अन्यत्र चले गये[१]।

---

१. इसके पश्चात् फिर बहुत दिनों तक हरकुमार के साथ भेंट नहीं हुई। एकदिन बरसात के समय बाजितपुर के मकान में बैठकर माँ सहसा

इसी हरकुमार ने माँ का लिपा-पुता स्वच्छ सुथरा तुलसी तला देखकर सर्वप्रथम वहाँ कीर्तन का प्रबन्ध किया था। कभी-कभी वहाँ कीर्तन होता था। अष्टग्राम में निवास करते समय गगन राय के कीर्तन के समय माँ के भाव के आविर्भाव से प्रकट होने वाले विकारादि बाहर अभिव्यक्त हुए थे। जिस समय पहले-पहल भाव का प्रकाश होने लगा, उस समय माँ की अवस्था १७-१८ वर्ष की थी।

एकबार निकटवर्ती किसी एक ब्रह्माणी मन्दिर में जाते समय इसी अष्टग्राम में माँ को एक सज्जन ने एक साड़ी पहना दी थी। उसमें माँ का रूप सहसा देखकर अष्टग्राम के क्षेत्र बाबू ने माँ को देवी कह कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया था। अष्टग्राम में रहते समय दो दिन कीर्तन में माँ का भाव हुआ था एवं सभी लोग उसे समझने और देखने के लिए आये थे। वहाँ पहले-पहल कुछ दिनों तक माँ खूब अच्छी रहीं। उसके बाद कुछ दिनों के लिए अस्वस्थ हो गईं। बाद में अच्छी हो गईं। स्वस्थ होने के कुछ दिन बाद विद्याकूट गईं और वहाँ लगभग दो वर्ष आठ महीने रहीं। अष्टग्राम

भोलानाथजी से कह उठीं, "देखो, हरकुमार का गाना सुनाई दे रहा है।" भोलानाथजी ने यह बात विश्वासयोग्य नहीं है, यों माँ को समझा दिया। किन्तु कुछ क्षणों के अनन्तर ही अष्टग्राम के क्षेत्र बाबू नामक एक भद्र पुरुष के साथ हरकुमार नौका कर माँ के निकट आ उपस्थित हुए। उस समय उनका मस्तिष्क स्वस्थ न था। क्षेत्र बाबू ने कहा, "हरकुमार माँ को एक बार देखने के लिए व्याकुल होकर मेरे साथ आया है।" वही अन्तिम भेंट रही। उसके बाद हरकुमार की फिर कोई खबर नहीं मिली। हरकुमार ने माँ को कई चिट्ठियाँ लिखी थीं। चिट्ठी के आरंभ में ही वे माँ को 'देवी' यों संबोधित कर लिखते।

और विद्याकूट दोनों स्थानों में माँ लगभग चार वर्ष रहीं। भोलानाथजी उस समय भी अष्टग्राम में ही रहे।

बाजितपुर में–(१९७४-१९८०)

भोलानाथजी की सं० १९७४ के माघ महीने के आसपास अष्टग्राम से बाजितपुर को बदली हो गई। माँ विद्याकूट से आठपाड़ा गईं। आठपाड़ा से बाजितपुर गईं। भोलानाथजी उस समय सर्वे विभाग में काम करते थे। उस समय ढाका नवाब के बाग के ट्रस्टी रायबहादुर योगेशचन्द्र घोषजी के छोटे जामाता श्रीयुत् भूदेवचन्द्र बसु बाजितपुर के नवाब के स्टेट के असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर आये और सं० १९७८ तक रहे। उन्होंने भोलानाथजी को उक्त स्टेट के ला क्लर्क (मुंशी) के पद पर नियुक्त कर दिया। इन भूदेव बाबू की स्त्री के साथ माँ का अत्यधिक स्नेह हो गया था—माँ भूदेव बाबू के बच्चों को अत्यन्त प्यार करती थीं।

पहले के समान उस समय भी कीर्तन में भाव होता था। एक बार भूदेव बाबू की लड़की की अस्वस्थता के समय मकान में कीर्तन किया गया था। माँ अस्वस्थ लड़की के समीप बैठी थीं। बाहर कीर्तन हो रहा था। माँ ने भूदेव बाबू की स्त्री को इशारे से बुला कर कहा, मेरा शरीर न जाने कैसा कर रहा है। भूदेव बाबू की स्त्री ने उनके सिर पर जल छिड़का और पङ्खा झला तथा भूदेव बाबू को खबर दी। माँ ने अपने डेरे पर जाना चाहा, उनका हाथ पकड़ कर डेरे पर पहुँचा दिया। भूदेव बाबू ने इस बात को दूसरे

किसी से न कहने को कहा। कीर्तन सुनने पर माँ का शरीर अस्वस्थ हुआ यह सुन कर भूदेव बाबू कुछ असन्तुष्ट हुए थे। उस समय उन्होंने उसे हिस्टिरिया समझा था।

भूदेव बाबू के बाजितपुर छोड़कर जाने के कुछ दिन बाद से ही माँ के जीवन का वैशिष्ट्य लोगों के सामने कुछ-कुछ प्रकट होने लगा। पहले जिस भाव का वर्णन किया गया है वह क्रमशः खूब गंभीर और व्यापक हो पड़ा। इसके पहले सर्वसाधारण जनता उसे उतना न जानती थी। माँ की उस समय की जीवनधारा बहुत ही विचित्र थी। प्रतिदिन नियमित रूप से उनकी साधन-क्रिया हो जाती थी। वे दिन में घर-गृहस्थी के सब काम-धाम करतीं— पति-सेवा करना, रसोई बनाना, बर्तन मलना, घर में झाड़ू देना आदि से लेकर मध्यवित्त गृहस्थ के सभी काम सुचारु रूप से सम्पन्न करतीं। रात्रि में जब भोलानाथजी विश्राम करते तब वे शयनगृह के ही एक कोने में जमीन पर बैठी रहतीं। उस समय उनके शरीर में विविध प्रकार की क्रियाएँ होतीं, जो साधारण लोगों की दृष्टि में आश्चर्यजनक थीं। विविध प्रकार के आसन, मुद्राएँ, पूजा आदि अपने आप ही हो जाते। उस समय शरीर से एक तीव्र ज्योति प्रकट होती थी, इस कारण वे अक्सर अपने ऊपर कपड़ा डाले रहती थीं। भोलानाथजी चौकी पर लेटे रहते। कभी देखते-देखते सो जाते। अथवा कभी बैठे-बैठे देखते रहते। माँ की ये सब क्रियाएँ बैठे-बैठे ही होती थीं[१]। ज्योतिर्मयी माँ पवित्रता

१. जिस स्थान पर बैठकर माँ के ये सब आसन आदि होते थे, वहाँ की मिट्टी लाकर रमना आश्रम में पञ्चवटी की वेदी के भीतर रख दी गई है।

की प्रतिमूर्ति हैं। जिस कमरे में ये सब क्रियाएँ होती थीं, उस कमरे के बाहर चारों ओर लगभग दो हाथ जगह वे प्रतिदिन साफ कर रखतीं—एक तिनके से भी कमरे का स्पर्श नहीं रहता था। हाथ में धूपदानी लेकर चारों ओर घूम आती थीं। उस समय माँ गुप्त थीं, विशेषतः कोई जानने न पाता था। फिर भी कोई भी बात सर्वथा गुप्त नहीं रह सकती। माँ की इन सब अद्भुत-अद्भुत शरीर-क्रिया आदि को बाजितपुर में किसी-किसी ने झरोखे के छेदों से देखा था। लेकिन कोई भी उसकी वास्तविकता न जान सका। बहुतों का विश्वास था कि यह भूतलीला है, कुछ लोग समझते थे कि यह एक प्रकार का रोग है, इत्यादि। सभी अपने-अपने विश्वास के अनुसार भोलानाथजी से निपुण ओझा और चिकित्सक को दिखलाने की सम्मति देते थे।

भोलानाथजी ने बाध्य होकर दो-एक ओझाओं को दिखलाया था, किन्तु माँ का भाव देखकर वे माँ माँ कह कर नमस्कार कर बिदा हुए थे। एक बार एक ओझा रात्रि में माँ को देखने आये और माँ के कमरे के एक कोने में आसन जमा कर बैठे। माँ उसी कमरे के दूसरे कोने में बैठी थीं। ओझा बहुत देर तक विविध प्रकार की क्रियाएँ करके जरा बाहर गये। पीछे भीतर आकर तम्बाकू भर कर ज्यों ही हुक्का भोलानाथजी के हाथ में देने जा रहे थे इतने में वह गिरने को तैयार हो गये। भोलानाथजी ने उन्हें पकड़ लिया। तथापि वह आदमी जमीन पर गिर कर गों-गों शब्द करने लगा। फिर उसने माँ-माँ ध्वनि से अपना कातर भाव

प्रकट किया। भोलानाथजी ने माँ से कहा, 'जिस तरह यह आदमी स्थिर हो वैसा करो।" माँ का एक अस्वाभाविक भाव प्रकट हुआ—उधर वह आदमी शनैः-शनैः स्थिर हो गया। वह क्रमशः स्वस्थ होकर माँ को प्रणाम कर चला गया। जाते समय कह गया, "यह सब हमारा काम नहीं है। ये साक्षात् देवी भगवती हैं।"

कालीकच्छ के डॉक्टर महेन्द्र नन्दी जी एक उच्च कोटि के पुरुष हैं। उन्होंने एक बार माँ को देखकर भोलानाथजी से कहा था, "ये सब उच्च अवस्थाएँ हैं, बीमारी नहीं है। आप जिस किसी को इन्हें न दिखाया करें।" इसलिए भोलानाथजी फिर किसी को विशेष दिखाते न थे।

संवत् १९७९ के वैशाख महीने से ही माँ के भाव में विशेष परिवर्तन आरंभ हुआ। तीन महीने के बाद अर्थात् संवत् १९७९ के सावन महीने की झूलन पूर्णिमा के दिन माँ के दीक्षा आदि अपने आप सम्पन्न हो गये। दीक्षा के बाद पाँच महीने तक आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि योगक्रियाएँ माँ के शरीर में विशेषरूप से होती रहीं। अवश्य इसके पहले से ही आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि होने लगे थे, किन्तु स्तोत्रादि दीक्षा होने के बाद ही आरंभ हुए। मन्त्र और स्तोत्रादि मुँह से निकलने के पूर्व ॐ-ॐ मुँह से निकला था। एक दिन रात्रि में प्रतिदिन की भाँति ही माँ आसनावस्था में मुँह के बल पट होकर प्रणाम के भाव में विद्यमान थीं। भोलानाथजी जब जाग कर बैठे तब उन्होंने देखा कि माँ की अँगुलियाँ जप करने के नि[illegible]ानुसार घूम

रही हैं—जप चल रहा था । माँ ने अपनी दादीजी को इसी तरह जप करते देखा था—अब उन्हें मालूम हुआ कि उनकी अँगुलियाँ भी उसी तरह जप की संख्या गिन रही हैं ।

बाजितपुर में इस प्रकार भाव का विकास होने से पहले माँ से सभी स्नेह रखते थे, सभी माँ के समीप आते थे । किन्तु इस अवस्था का आरंभ होने के उपरान्त सब ने माँ को भूत लगा है ऐसा समझ कर उनके निकट आना बन्द कर दिया । माँ भी एकान्त पा कर अपने मन के अनुसार बैठी रहतीं ।

माँ एक दिन रात्रि में बिछौने पर थीं । भोलानाथजी पास ही में लेटे थे । माँ को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका शरीर फूल कर मोटा हो गया है और मालूम पड़ा कि शरीर में असाधारण शक्ति आ गई है । उक्त अवस्था में उनका एक हाथ भोलानाथजी के शरीर पर पड़ा । भोलानाथजी चौंक कर जाग उठे तथा अन्धकार में आदमी का हाथ समझ कर चोर समझ बैठे । केवल भोलानाथजी ही यह सब जानते थे, माँ ने उनसे इसे किसी दूसरे से न कहने को कह दिया और निश्चिन्त रहने को कहा ।

निशिकान्त भट्टाचार्य नाम के माँ के एक ममेरे भाई कुछ दिन माँ के समीप रहे थे । इन सब आसनादि और अलौकिक क्रिया आदि के प्रति उदासीन रहने के कारण वे भोलानाथजी से भला-बुरा कहते थे । एक दिन वे भोलानाथजी को डाँट रहे थे, माँ उस समय आसन लगा कर अपने कमरे में बैठी थीं । उस समय माँ का भाव अस्वाभाविक था—सिर पर कपड़ा न था, शरीर प्रायः खुला था । माँ ने कहा,

"मैं खूब समझ रही थी कि सिर तथा शरीर पर कपड़ा नहीं है, किन्तु कपड़ा ठीक कर देने के अनुरूप लज्जा का भाव न था।" माँ निशिकान्त बाबू की दृष्टि की ओर तीव्र भाव से देखकर न जाने क्या कह उठीं। वे मारे भय के दो-तीन हाथ पीछे हट गये। उस समय माँ फिर हँसकर बोलीं, "भय किस बात का ?" तब उन्होंने पूछा, "आप कौन हैं ?" इसपर माँ ने अपना परिचय दिया। उन्होंने फिर जिज्ञासा की, "आप ये सब क्रियाएँ करती हैं, क्या आपकी दीक्षा हुई है ?" माँ—हाँ, हुई है।

निशिकान्त बाबू—रमणी बाबू की हुई है ? माँ—नहीं, पाँच महीने बाद आगामी १५वें अगहन अमुक वार, अमुक तिथि और अमुक नक्षत्र में होगी।

निशि बाबू—नक्षत्र मेरी समझ में नहीं आया।

माँ—इस पोखरे में जानकी बाबू मछलियाँ पकड़ रहे हैं, उन्हें बुला लाओ, वे समझेंगे।

जानकी बाबू नवाब के स्टेट में काम करते थे। माँ के मकान के पास ही उनका डेरा था। उनकी स्त्री उषा के साथ माँ का बड़ा स्नेह था। माँ उन्हें उषा दीदी कहती थीं। जानकी बाबू मछलियाँ पकड़ रहे हैं; यह जानने का (बाह्य दृष्टि से) माँ के पास कोई उपाय न था, विशेषतः जब कि उनका वह कचहरी जाने का समय था। उन्हें बुलाया गया। वे आये। इतने दिनों तक माँ उनके सामने आई न

---

१. दीक्षा के बाद से नियमतः आसन और पूजादि हो जाते थे, पूजादि की समाप्ति होने तक वे जल ग्रहण नहीं करती थीं।

थीं, किन्तु उस दिन संकोच नहीं रहा । सिर पर कपड़ा नहीं, अस्त-व्यस्त वेश था, कमरे के भीतर बैठी थीं । उस अवस्था में माँ को छूने का साहस किसी को नहीं होता था । नक्षत्र की बात जानकी बाबू समझ गये । जानकी बाबू के प्रश्न के उत्तर में माँ ने अपना परिचय दिया था, जिसपर अन्यत्र प्रकाश डाला गया है । इन सब बातों से उस दिन उनका ऑफिस जाना नहीं हुआ । प्रायः सन्ध्या तक यही व्यापार चलता रहा ।

इधर भोलानाथजी ने सारा विवरण सुना । उन्होंने निश्चय किया कि जिस तरह उस तारीख और तिथि को मेरी मन्त्र-दीक्षा न हो वैसा प्रयत्न करूँगा । वे प्रतिदिन कचहरी जाते समय जलपान कर जाते थे, किन्तु उस दिन फन्दे में बँध जाने के भय से बिना जलपान किये ही चले गये । निर्दिष्ट समय पर माँ ने उन्हें बुला भेजा । उन्होंने खबर भेजी कि मैं नहीं आऊँगा । माँ ने कहला भेजा कि यदि वे नहीं आवेंगे तो बाध्य होकर मुझे ही कचहरी में जाना पड़ेगा । यह सुन कर भोलानाथजी स्वयं चले आये । क्योंकि वे माँ के स्वभाव को भली-भाँति जानते थे । वे खूब समझते थे कि माँ के लिए कुछ भी असंभव नहीं है । घर आकर उन्होंने देखा कि माँ टहल रही हैं और उनके मुँह से मन्त्रादि निकल रहे हैं । माँ ने उनके पहनने का वस्त्र ला कर दिया और उनसे स्नान कर आने को कहा । भोलानाथजी के स्नान कर आने पर माँ ने उन्हें स्थिरता के साथ एक आसन पर बैठने को कहा । भोलानाथजी के उस प्रकार बैठने के अनन्तर माँ के श्रीमुख से एक बीज मन्त्र

निकला । माँ ने भोलानाथजी से उसीका जप करने को कहा और वृथा मांस खाने का निषेध कर शुद्धतापूर्वक रहने को कहा । भोलानाथजी वैसा ही करने लगे ।

सं० १९७९ के पौष महीने से (संभवतः पौष सौर १३ से) माँ का मौन आरंभ हुआ एवं लगभग ३ वर्ष तक चला । उस समय कभी-कभी रेखा डाली जाती थीं । इस प्रकार रेखा खींची जाने पर माँ के मुँह से स्तोत्र आदि और मन्त्र आदि विविध शब्द निकलते थे । उसके पश्चात् माँ बातें कर सकती थीं । किन्तु रेखा खींचने का कोई नियत समय न था । उस समय दूसरे के घर जाना बन्द था ।

बाजितपुर की कालीपूजा का समारोह उल्लेखयोग्य है । उक्त पूजा भोलानाथजी की पैतृक पूजा थी । वह प्रतिवर्ष नियत रूप से होती थी[1] । एक बार उक्त पूजा के भोग के लिए खूब शुद्धता के साथ चावल सुधारे गये, किन्तु कौए ने चोंच मार कर उन्हें अपवित्र कर दिया । तदनन्तर फिर चावल छीट-बीन कर प्रस्तुत किये गये । उन्हीं से भोग बनाया गया । माँ रसोईघर के दरवाजे पर बैठी थीं । और सभी लोग जहाँ पूजा हो रही थी उस कमरे में बैठे

---

१. कालीपूजा के दूसरे दिन भोलानाथजी प्रायः सभी परिचित भद्र पुरुषों को बुला कर खाने को बैठाते । लोगों को खिलाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था । इसलिए जिसको देखते, बुला ला कर प्रसाद लेने को बैठा देते । इस प्रकार अनेक लोग प्रसाद पाते । किन्तु पहले से उस प्रकार का कोई प्रबन्ध न रहता । प्रतिवर्ष इसी तरह चलता । जो रसोई बनती उसी से सबकी पूर्ति हो जाती । लोगों का कोई हिसाब न रहता । किन्तु कभी भी वस्तु कम न पड़ती ।

थे । पूजा होने के बाद भोग ले जाया जायगा, यह सोच कर माँ भोग के रसोईघर के दरवाजे पर बैठी थीं जिससे कि भोग नष्ट न हो । माँ ने स्पष्टरूप से देखा कि एक गौरवर्ण ब्राह्मण माँ के दाहिने अङ्ग से प्रकट होकर कमरे में गये एवं पत्थर की थाली में सजा कर रखे हुए भोग में से थोड़ा-सा उठा कर उन्होंने अपने मुँह में रखा । उसके अनन्तर अदृश्य हो गये । माँ बैठे-बैठे स्पष्ट रूप से देख रही थीं । उसके पश्चात् जब भोग ले जाने के लिए भोलानाथजी आये तो तीन आदमी साथ-साथ चले जिससे कि भोग नष्ट न हो । भोलानाथजी भोग ले कर ज्यों ही चले अकस्मात् कहीं से कुत्ते ने आकर भोग छू दिया । उसी समय पोखरे के किनारे भोग फेंक कर भोलानाथजी स्नान कर आये । रात खुलते समय चावल खरीद कर लाना संभव न था, समय ही न था, इसलिए भोलानाथजी ने माँ से कहा—"माँ की इच्छा ही ऐसी है, इसलिए कौए के चोंच मारे हुए जो चावल घर में हैं उन्हीं को भोग के लिए जल्दी निकाल दो ।" अगत्या वही किया गया । दाल, तरकारी सब तैयार ही था । उन चावलों से जल्दी-जल्दी भात बना कर भोग लगाया गया । माँ ने जो-जो देखा था, भोलानाथजी को सब बतला दिया । भोलानाथजी ने पुरोहितजी से कहा । पुरोहितजी खाने के लिए बैठे । यह सब सुनकर बोले,—"वही प्रसाद असल प्रसाद है, क्योंकि वह भैरवगृहीत होने के कारण महा प्रसाद है, मुझे थोड़ा लाकर दो ।" किन्तु वह सब जल में छोड़ दिया गया था । उस समय भूदेव बाबू बाजितपुर में थे । उनका निवासस्थान विशाल था, इसलिए उन्हीं के

निवासस्थान पर पूजा हुई । दोनों डेरे एक ही जगह थे ।

बाजितपुर में भूदेव बाबू जिस काम में थे, उनसे पहले उस काम में रासबिहारी घोष थे । उनकी लड़की (श्रीयुत् जानकीनाथ बसु की स्त्री) का नाम उषा था । उन्हें माँ उषा दीदी कहती थीं । रासबिहारी बाबू की स्त्री का भी माँ के प्रति अत्यन्त स्नेह था । माँ उन्हें मौसी कहकर पुकारती थीं । सभी लोग माँ के प्रति खूब स्नेह रखते थे । माँ के अपूर्व रूप की प्रभा देखकर बहुतों को आश्चर्य होता था । भूदेव बाबू की स्त्री ने कहा था—"माँ का ऐसा रूप था कि यदि घाट में जातीं तो घाट को उज्ज्वल कर देतीं ।" इसीलिए कुछ लोग माँ को राङ्गा दीदी कहते थे । माँ के आनन्दपूर्ण स्वभाव के कारण बहुत लोग माँ को "खुशी की माँ" कहते थे ।

अष्टग्राम में एक भद्र पुरुष—जिन्हें माँ भाई के तुल्य मानतीं और वे भी माँ को राङ्गा दीदी कहते—माँ को कोई एक धर्म पुस्तक पढ़कर सुना रहे थे । थोड़ी देर बाद ही माँ की अवस्था देख कर उन्हें प्रतीत हुआ कि माँ के कानों में कुछ भी नहीं पड़ रहा है । माँ स्थिर भाव से बैठी थीं । वे उस समय धीरे-धीरे पुस्तक लेकर उठ गये । उन्होंने फिर कभी भी माँ को पुस्तक पढ़कर सुनाने की चेष्टा नहीं की ।

एक बार शिवरात्रि के दिन नानाजी ने उपवास कर रखा था । माँ और भोलानाथजी भी शिवरात्रि को उपवास करते थे । उनके दो, नानाजी का एक, और भी किसी के लिए एक यों चार शिव बनाये गये थे । नानाजी अकेले

पूजा कर रहे थे । जब एक शिव लेकर उ[illegible]न्होंने पूजा आरम्भ

की, तब सहसा माँ के मुँह से क्या सब मन्त्रों के समान बाहर निकलने लगा। पीछे नानाजी ने कहा—जो माँ के नाम के शिव थे, उनकी मैंने पूजा करना आरम्भ किया, इसी से ऐसा हुआ था।

ढाका शाहबाग में

संवत् १९८० के अन्त में भोलानाथजी की नौकरी छूट गई। उस समय वे अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो पड़े। ढाका जाने पर संभव है काम की सुविधा हो जाय ऐसा विचार कर वे उक्त वर्ष के चैत्र २८ सौर को ढाका गये। माँ भी साथ थीं। किन्तु ढाका में इधर-उधर खोज करके भी जब काम का कोई सिलसिला न बाँध सके तब उन्होंने माँ को घर भेज देने का संकल्प किया। माँ ने उनसे तीन दिन प्रतीक्षा कर देखने को कहा। इन्हीं तीन दिनों के भीतर ही सं० १९८१ के वैशाख की तीसरी तारीख को शाहबाग में नवाबों के बाग के व्यवस्थापक-पद पर उनकी नियुक्ति हो गई।

शाहबाग विशाल बाग है। उसी के एक भाग में भोलानाथजी के रहने की व्यवस्था हुई थी। उनके निवास के लिए एक कमरा था। उसके अतिरिक्त एक बड़ा दालान भी था। उसके दोनों ओर दो छोटी कोठरियाँ थीं। और एक छोटा दालान था। उसे 'भोजन-गृह' कहते थे।

जब शाहबाग में आना हुआ, माँ की मौनावस्था उस समय भी चलती रही। शाहबाग में भी लगभग डेढ़ वर्ष तक उक्त अवस्था रही थी। उसके सिवा आहार आदि के

सम्बन्ध में बीच-बीच में नाना प्रकार के नियमादि चलते थे। लगभग ८-९ महीने तक प्रतिदिन केवल तीन कौर खातीं। यहाँ तक कि यदि फलाहार करना होता तो भी तीन बार से अधिक मुँह में न लेतीं। उसके बाद फिर जल तक ग्रहण न करतीं। उसके अनन्तर फल आदि खाकर रहने का नियम चला। किन्तु उसके लिए किसी प्रकार की व्यवस्था करने का निषेध कर दिया। अपने आप जो कुछ जुट जाता उसी पर निर्भर रहतीं। उस समय माँ के शरीर में विशेष रूप से यौगिक क्रियाएँ हो रही थीं एवं सात महीने तक माँ का ऋतु धर्म बन्द रहा, उसके अनन्तर कुछ दिन फिर स्वाभाविक रूप से होकर २७-२८ वर्ष की अवस्था में ही ऋतु बन्द हो गया।

माँ घर-गृहस्थी के सभी काम-धाम करती थीं। उस समय वहाँ माखन (माँ का छोटा भाई) और आशु (भोलानाथजी का भतीजा) रहते थे, वे स्कूल में पढ़ते थे। उनके लिए प्रातःकाल भोजन बनाना पड़ता, उनके खा चुकने पर बर्तन माँजतीं और स्नान कर तालाब से जल लाकर फिर भोग के लिए रसोई बनातीं। तदुपरान्त भोग लगाने के बाद भोलानाथजी भोजन करते। मसाले पीसने, तरकारी छीलने से लेकर सम्पूर्ण गृह-कार्य अकेले ही करतीं। उस समय दिन-रात एक तन्मयता का भाव लगा ही रहता था। बहुधा माँ जमीन पर पड़ी रहतीं—कुछ काम करने के लिए जाकर सहसा अशक्त होकर पड़ी रहतीं। पीछे उक्त अवस्था के बीतने पर उठ कर अधूरा काम पूरा करतीं। उस समय माँ सदा घूँघट काढ़ कर चलती थीं। लेकिन रेखा खींच कर बोलना आरंभ

होने पर सिर का वस्त्र बहुधा सिर पर नहीं रहता था।

दीपावली की कालीपूजा का विवरण ग्रन्थ में है। वह सं० १९८२ के कार्तिक महीने में हुई थी। सं० १९८३ की दीपावली में भी कालीपूजा हुई—इस काली का इतिहास भी ग्रन्थ में है। इस काली का विसर्जन नहीं हुआ। वह इस समय भी हैं। सिद्धेश्वरी की घटना सं० १९८१ के भाद्रपद मास में घटी थी। उस समय माँ की बाहर इतनी प्रसिद्धि न होने पर भी वे सर्वथा गुप्त न थीं। कुछ-कुछ भक्त प्रायः नित्य ही आते थे। प्राणगोपाल बाबू, प्रमथ बाबू, बाउल बाबू, ननी बाबू, निशि बाबू आदि बहुत से लोग बीच-बीच में आकर माँ का सत्संग करते थे।

□□
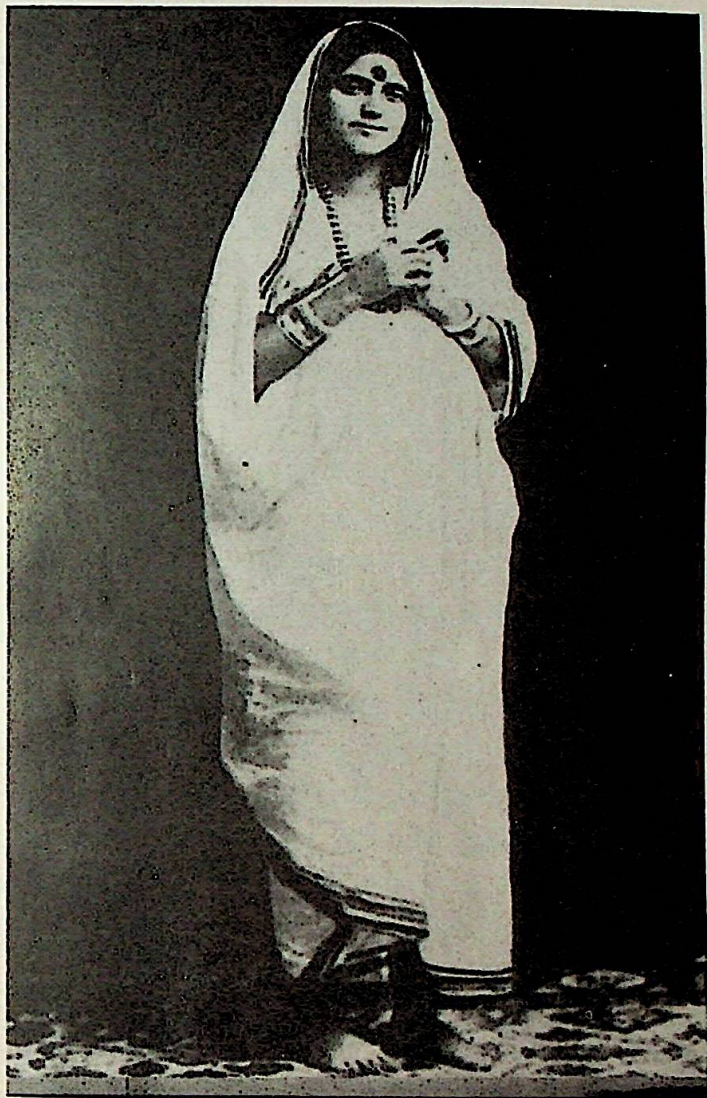
श्री श्री माँ आनन्दमयी

पहला अध्याय

संवत् १९८२ के पौष के महीने (दिसम्बर १९२५, जनवरी १९२६) में माँ के साथ पहले-पहल मेरी भेंट हुई। पिताजी श्री शशाङ्कमोहन मुखोपाध्याय (अवसरप्राप्त सिविलसर्जन) पहले डिप्टी पोस्टमास्टर जनरल श्रीप्रमथनाथ बसु से माँ की खबर पाकर दो दिन माँ के समीप जाकर उनके दर्शन कर आने के अनन्तर मुझे माँ के निकट ले गये। माँ उस समय ढाका शाहबाग में रहती थीं। बाबा भोलानाथजी[1] उस समय उस बाग के व्यवस्थापक थे। विशाल सजा-सजाया बाग माँ के रहने के लिए उपयुक्त ही स्थान रहा। मैं कभी भी विशेष बाहर जाती न थी। अपरिचित स्त्री क्या पुरुष क्या किसी के साथ बातें भी नहीं कर सकती थी—कैसा एक विचित्र मेरा स्वभाव था। इसलिए माता-पिता कितना बिगड़ते, किन्तु किसी प्रकार भी अपरिचित किसी की भी ओर न तो देख सकती थी और न किसी के साथ बातें कर सकती थी। किसी साधु-सन्त के समीप जाना भी मेरे स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। किन्तु जिस दिन पिताजी ने माँ के दर्शन करके घर

प्रथम परिचय

---

१. माँ के पति श्रीयुत् रमणीमोहन चक्रवर्ती।

आकर माँ की खबर दी, उसके दूसरे ही दिन मेरा मन अत्यन्त अस्थिर हो उठा । इच्छा हुई कि माँ को देखने जाऊँ । किन्तु मैंने पिताजी से कुछ कहा नहीं, इसलिए वे सन्ध्या समय अकेले ही चले गये । जिस समय पिताजी की गाड़ी रवाना हुई, मुझे खूब याद है, सड़क की ओर के बरामदे में खड़ी होकर मैं खूब रोई थी । कैसा आश्चर्य था, जिन्हें कभी देखा न था, जिनके विषय में यदि कुछ कहना पड़े तो कुछ भी नहीं जानती थी, उन्हें देखने न जा सकी इसलिए रोना क्या । आज भी उस बात का स्मरण होने पर अवाक् रह जाती हूँ । लेकिन अब समझ रही हूँ कि उस समय क्यों रोई थी; कैसा आकर्षण था । पिताजी के लौट आने पर सब काम पूरा कर माँ के साथ क्या-क्या बातें हुईं, यह सुनने गई । पिताजी ने कुछ-कुछ कहा, किन्तु उससे तृप्ति नहीं हुई । पिताजी ने कहा, माँ ने तुम्हें लेकर आने को कहा है । मैंने ने सोचा पिताजी के मुँह से मेरा वृत्तान्त सुनकर माँ ने ले आने को कहा होगा ।

दूसरे दिन दोपहर को खा-पी कर मैं माँ के दर्शनों के लिए शाहबाग गई । जाकर माँ को देखते ही अत्यन्त परिचित की भाँति निकट जाकर खड़ी हो गई । उस दिन फिर अपरिचित होने के कारण नेत्रों में लज्जा नहीं रही । उनकी ओर खूब निहार कर देखकर मैंने प्रणाम किया । मूर्ति मैंने जो देखी उसे फिर क्या बतलाऊँ—सिर मानो अपने आप ही उनके चरणों पर गिर पड़ा । माँ के सिर पर बहुत बड़ा घूँघट था, बड़े लाल चौड़े किनारे की साड़ी पहने थीं, कपाल पर सिन्दूर की बड़ी सी बिंदी थी । किन्तु

मुखमण्डल पर अलौकिक ज्योति दमक रही थी, लालिमा लिये दोनों नेत्र छलछला रहे थे, भाव में मानो विभोर हों। वचन अत्यन्त ही बैठा हुआ अस्पष्ट था—मैंने सुना कि तीन वर्ष मौन रहने के बाद माँ को बोलते हुए थोड़ा ही समय बीता है। आगे चल कर मैंने देखा है ठीक वही कारण भी न था। थोड़े समय तक चुप रहते ही माँ का सारा शरीर, यहाँ तक कि जिह्वा पर्यन्त स्तब्ध हो जाती। बाग में माँ भोलानाथजी, माँ की एक विधवा ननद (मटरी बुआ), माँ के जेठजी का एक लड़का (आशु) और एक भानजा (अमूल्य) रहते थे। आशु स्कूल से आया—माँ भात परोसने के लिए गईं। किन्तु हाथ काबू के बाहर हो गया। अत्यन्त क्लेश के साथ भात परोस आकर मेरे समीप बैठीं। मेरे बैठने के लिए कुछ बिछा दिया। पान लगाकर ला दिया। मैंने कहा, "मैं तो पान कभी खाती नहीं।" माँ ने कहा, "मैं पान खाती हूँ, इसलिए तुम्हें भी दिया है।" मैं भी न जाने कैसी हो गई, बोली "अच्छी बात है, आपने दिया है, खाऊँगी।" मैं देख रही थी कि माँ भाव में इतनी भरपूर थीं कि आँखें भी भली-भाँति नहीं खोल सक रही थीं। मैंने तो इस प्रकार का भाव और कभी भी नेत्रों से देखा न था। मुग्ध होकर देख रही थी और मन में ऐसा हो रहा था कि जो चाह रही थी आज मानो उसे प्राप्त कर कृतार्थ हो गई हूँ। थोड़ी देर दो-चार क्या बातें हुईं, ठीक स्मरण नहीं है। कभी 'आप' संबोधन करने गई तो 'तुम' हो गया और शरीर के निकट सट कर बैठी रही कुछ भी ध्यान नहीं रहा। माँ उस समय मेरे साथ जिस कमरे में

बैठी थीं उस कमरे में माँ के भण्डार की वस्तुएँ रहती थीं; समीप का कमरा जरा बड़ा था, उसमें माँ सोती थीं; उसके पीछे एक छोटा सा कमरा था, उसमें मटरी बुआ बच्चों के साथ रहती थीं। इन तीन कमरों के साथ इस छोटे से दालान में माँ रहती थीं। कुछ दूर पर मुझे दो छप्पर दिखाई दिये, उनमें निरामिष और सामिष रसोई बनती थी। प्रतिदिन भोग लगाकर भोजन होता है यह मैंने सुना। माँ ने दो-चार बातें कह कर ही बीच का दरवाजा बन्द कर दिया। उस बीच के कमरे में पिताजी और भोलानाथजी बैठे थे। दरवाजा बन्द करके माँ अत्यन्त परिचित की तरह बातें करने लगीं। मुझसे सहसा बोलीं, "तुम इतने दिनों तक कहाँ थी ?" यह कह कर हँसती हुई मेरी ओर देखती रहीं। बातें करते-करते भाव फिर कैसा गंभीर हो आया, बोलीं, "तुम बैठो मैं अभी आती हूँ।" मैंने तुरन्त कहा, "यह क्या, मैं आई तुमसे भेंट करने, तुम इस वक्त नहीं जा सकोगी।" मैंने सोचा था संभव है माँ उठ कर कहीं जायेंगी, किन्तु वह बात तो नहीं हुई, माँ वहीं मेरी गोद के निकट जमीन पर ही लेट गईं। मैंने रामकृष्णदेव का कथामृत पढ़ा था, इसलिए मुझे ज्ञात हुआ कि हो न हो यह समाधि है। मैं आँखें बन्द कर माँ के शरीर का स्पर्श कर बैठी रही। बहुत देर बाद माँ उठ बैठीं। शरीर मानो अशक्त था। मैंने सोचा जरा सी स्थिरता लाने के लिए मनुष्य को कितनी साधना करनी पड़ती है, किन्तु इनको देख रही हूँ कि निरन्तर वही भाव लगा ही है। उठ कर फिर अत्यन्त अस्पष्ट स्वर में बातें करते-करते क्रमशः वचन

कुछ स्पष्ट हुआ । बहुत देर तक बातें हुईं ।

मैं माँ की गोद में सिर रख कर लेट गई । माँ भी बैठे-बैठे कितनी ही बातें कर रही थीं । उधर माँ के दर्शनों के लिए प्रमथ बाबू के पुत्र प्रतुल बाबू ने उसी अवस्था में दरवाजा खोल दिया । ये माँ के बड़े भक्त हैं, माँ के निकट चिरकाल से आना-जाना कर रहे हैं । इनके पिताजी भी माँ के बड़े भक्त हैं । पिताजी ने मुझे पुकार कर कहा—"उठ आ, माँ के दर्शनों के लिए अन्यान्य अनेक भक्त आये हैं ।" दरवाजा खोल दिया गया । मैं माँ को नमस्कार कर चली आई । आते समय माँ ने मुझे फिर ले आने के लिए पिताजी से कह दिया ।

नशा-सा लग गया । दूसरे दिन फिर गई, माँ के दर्शन किये, बातें सुनीं, चली आई । किन्तु फिर घर पर मन ही नहीं लगता था । प्रतिदिन ही जभी मौका मिलता, एक बार माँ के निकट जाती, उसी समय की प्रतीक्षा में सारे दिन और सारी रात बैठी रहती । दिन पर दिन माँ के दर्शनों के लिए मन सहसा इतना चञ्चल हो उठता कि दिन में दो बार भी जा पहुँचती, क्रमशः परिचय बढ़ रहा था, कभी-कभी जा कर माँ के काम में हाथ बँटा आती थी, परोसने में सहायता कर आती थी । मैंने सुना कि प्राणगोपाल बाबू (डिपुटी पोस्ट मास्टर जेनरल, श्रीयुत् प्राणगोपाल मुखोपाध्याय), बाउल बाबू (ला कॉलेज के प्रोफेसर श्रीयुत् बाउलचन्द्र बसाक), ननी बाबू (ढाका कालेज के प्रोफेसर), निशि बाबू (विक्रमपुर सामसिद्धि के जमींदार श्रीयुत् निशिकान्त मित्र) आदि का माँ के समीप आना-जाना है । प्राणगोपाल

बाबू के बदली होकर अन्यत्र चले जाने पर उनके स्थान पर प्रमथ बाबू आये थे । वे भी माँ के समीप प्रतिदिन ही सपरिवार जाते थे । इन सभी लोगों की घर-गृहस्थी थी और सभी ब्राह्मण भी न थे, इसलिए अधिक समय तक रहने अथवा रसोई बनाने में माँ की सहायता करने में वे समर्थ न थे । मुझे पाकर खूब प्रसन्नता प्रकट कर माँ कहतीं, "भगवान् ने तुम्हें उपस्थित कर दिया है । अब इस शरीर से सब काम भलीभाँति नहीं होते, इसीलिए सहायता पहुँचाने के लिए भगवान् तुम्हें ले आये हैं ।" मैंने सुना कि इतने दिनों तक माँ अकेली थीं, किन्तु अधिकांश समय तक पड़ी रहती थीं, इस कारण भोजन बनाने आदि में असुविधा होती थी, इसीलिए भोलानाथजी की विधवा बहन मटरी बुआ आई हैं । माँ मछली-पाक विधवाओं को छूने देना बिलकुल ही पसन्द नहीं करतीं, इसलिए मछली का भोग माँ जब भी होता, येन-केन प्रकारेण स्वयं बनातीं । निरामिष सब भोजन मटरी बुआ ही बनाती थीं । मैंने सुना कि माँ की एक और ननद हैं—श्रीयुत् कालीप्रसन्न कुशारी जी की स्त्री । वे बड़े दिनों की छुट्टियों में (दिसम्बर १९२५) माँ के समीप आई थीं । माँ ने उनके साथ एक जगह बैठकर भोजन किया था ।

राय बहादुर श्री योगेशचन्द्र घोषजी के घर से लड़कियाँ सदा ही आतीं । योगेश बाबू के तीसरे पुत्र प्रफुल्ल बाबू की स्त्री का माँ के प्रति अत्यन्त स्नेह था, वे कहतीं, यह जो शाहबाग की बहू हैं उन्हीं को देखने के लिए मैं प्रतिदिन बगीचे में जाती थी । अपराह्न में ३ बजे से [illegible] बजे के बीच

का वह समय कब आवेगा उसके लिए अस्थिर हो जाती थी। सास कहतीं कि घर में रह कर क्या धर्म नहीं होता है ? रोज ही वहाँ क्या धरा है ? मैं धर्म समझ कर जाती इसका मुझे स्मरण नहीं है। किन्तु एक दिन भी यदि उस बहू को न देखती तो मन अधीर हो उठता। बाग में जाने के लिए व्याकुल हो जाती। केवल यही स्मरण होता कि "वही जो शाहबाग की बहू है।" मेरा स्नेह भी क्रमशः उस बहू की ओर ही जाने लगा। माँ के इस प्रकार के तीव्र आकर्षण के और भी अनेक प्रमाण मिले हैं। उस समय भी माँ के निकट बहुत से लोग आते-जाते न थे। सुनने में आया कि ज्योतिषचन्द्र राय आई० एस० ओ० (I. S.O.), Personal Assistant to the Director of Agriculture, Bengal कई मास पूर्व आकर माँ के दर्शन कर गये थे, वे भी उस समय अधिक नहीं आते थे, लेकिन न आने पर भी अधीनस्थ कर्मचारियों को सदा शाहबाग भेज कर माँ का समाचार लेते रहते थे। पीछे सुनने में आया कि उन्होंने आकर जब देखा कि माँ के सिर पर लम्बा घूँघुट है तब उनके मनमें विचार आया कि हम माँ समझ कर आये किन्तु माँ का इतना बड़ा घूँघट ! अभी हमारे आने का समय नहीं है। यह विचार कर वे फिर स्वयं न आते, आदमी भेज कर खबर मँगा लेते थे। ज्योतिष दादा सदा खूब विचार कर चलते थे। इसलिए उस समय भी विचार करके ही दूर रहे।

पीछे धीरे-धीरे अधिक समय माँ के समीप बिताने लगे। माँ अवकाश के अवसरों पर पहले की सब बातें कहतीं, मैं

मुग्ध हो कर सुनती । मैं सोचती ऐसी बातें मैंने पहले कभी भी नहीं सुनी हैं । हम धीरे-धीरे शाहबाग में एक प्रकार से घर के से लोग हो उठे । धीरे-धीरे नये-नये लोग भी आने लगे । किन्तु माँ सिर पर घूँघट काढ़ कर ही भोलानाथजी की आज्ञा से सबके निकट आकर बैठतीं और उन्हीं की अनुमति पाकर सबके साथ आवश्यकतानुसार दो-चार बातें करतीं । भद्र पुरुषों के चले जाने पर हम लोगों के साथ कभी खूब आनन्द के साथ बातें करतीं । कभी-कभी जीभ बिलकुल जड़ हो जाती, कुछ बोल न सकतीं । अपनी अवस्था की बातें भी माँ मुझसे बहुत कहती थीं, मेरे सदृश प्रायः सदा साथ रहने वाली और कथा सुनने वाली संगिनी अभी तक माँ को कोई मिली न थी । इसलिए बड़े आनन्द से हृदय खोल कर कितनी ही बातें कहतीं । मैं तो मुग्ध थी । प्रतिदिन किसी तरह घर जा कर कुछ क्षण बिता कर फिर चली आती थी ।

माँ पत्तल का प्रसाद किसी को भी न देतीं । पैरों की धूलि भी न देतीं—सभी लोग दूर से जमीन पर सिर टेक कर प्रणाम करते, माँ भी हाथ जोड़ देतीं । यदि कोई पैर पकड़ कर प्रणाम करता तो तुरन्त माँ भी उसके पैरों पर हाथ लगा कर प्रणाम कर डालतीं । इस डर से फिर कोई पैर न छूता । रसोई तैयार होने पर माँ और भोलानाथजी कमरे में जा कर भोग लगाते, तदुपरान्त सब लोग प्रसाद पाते । माँ भोलानाथजी के पत्तल में ही प्रसाद पातीं । जिन दिनों हम पहले-पहल गये थे उस समय माँ सोमवार और

बृहस्पतिवार को तीन कौर खातीं । अन्य पाँच दिनों में नौ

पके चावल गिन कर खातीं । फिर कुछ न खाती थीं । किन्तु काम-धाम खूब करतीं । यथासंभव भोलानाथजी की सेवा करने में त्रुटि न करतीं । ऐसी पतिभक्ति अन्यत्र कहीं मैंने देखी नहीं है । बच्चे के समान आदेश का पालन करती जातीं—कुछ भी विचार न करतीं ।

हम लोगों के मकान में माँ का भोग—पौष १९८२

एक दिन सोमवार या बृहस्पतिवार को पिताजी अपने टिकाटूली के मकान में माँ को भोग देने के लिए बुला ले गये । माँ पहले-पहल उस मकान में आईं । साथ में भोलानाथजी तथा और भी कई लोग थे । माँ ने मकान के सब कमरे घूम-घूम कर देखे, सड़क की ओर के बरामदे में जाकर बोलीं, "मैं पहले-पहल जब ढाका आई, इस सड़क से घूमने के लिए जाते समय इस नल में (मकान के सामने ही सड़क में नल लगा था) कितनी बार पैर धो गई हूँ । उस समय मकान बन रहा था । इस मकान को देख कर मन ही मन मैंने कहा, यह किसी साहब का मकान होगा । देख पहले ही मकान को लक्ष्य कर गई थी । और बाबा तो साहब के ही काम में थे । इसलिए मैंने भूल नहीं की ।" यह कह कर हँसने लगीं । माँ पहले ही इस मकान को देख गई थीं यह सुन कर हमें तो महान् आनन्द हुआ । भोग लगने के थोड़ी देर पहले ही निशि बाबू ने घबड़ाते हुए आकर माँ को प्रणाम कर प्रार्थना की कि मेरे नाती के कर्णमूल हुए हैं, इस समय उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है, माँ यदि कृपा कर एक बार मेरे मकान में चलें तो मैं

कृतकृत्य होऊँगा। उनका मकान निकट ही था, पिताजी गाड़ी लाने जा रहे थे, किन्तु माँ ने जाने नहीं दिया। भक्त की कातर प्रार्थना पर दयामयी उसी समय पैदल ही उनके मकान में जा पहुँचीं तथा थोड़ी देर बाद लौट आईं। वहाँ जाकर क्या किया यह मैं नहीं जानती हूँ। किसी दूसरे की बात दूसरे किसी के निकट माँ प्रायः प्रकट नहीं करती हैं। लेकिन देखने में आया कि कर्णमूल अपने आप ही फूट गये। लड़का भी चंगा हो उठा। जाते समय माँ ने मुझसे कहा था, "क्या लड़का अच्छा होगा तो ?" मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया था, "तुम जब जा रही हो, निश्चय ही अच्छा होगा।" तीन बार माँ ने पूछा था; तीन ही बार मैंने इसी तरह स्पष्ट उत्तर दिया था। माँ ने भी हँसते हुए सभी के प्रति कहा, "वह तो कह रही है अच्छा हो जायगा, तब अच्छा ही होगा।" यह कह कर चली गईं[1]।

निशि बाबू के मकान से वापस आकर माँ बैठीं। वह माँ के तीन कौर खाने का दिन था। भोलानाथजी से माँ ने कहा, "तुम खाओ, मैं पीछे खाऊँगी।" भोलानाथजी के

१. उसके बाद भी इस तरह के व्यापार मैंने देखे हैं—कोई घटना होती तो, जो कोई समीप में होता, माँ उसी से क्या होगा यो जिज्ञासा करतीं, भला या बुरा उसी के मुँह से कहला देतीं, अपने मुँह से कुछ भी न कहतीं। यदि कोई उत्तर देते समय स्पष्टतः न कह सकता तो कहतीं, "न मालूम कैसा कह रहा है, अच्छा तो नहीं प्रतीत होता है।" आश्चर्य की बात यह है कि ज्ञात होने पर भी माँ किसी विषय में भले-बुरे की जिज्ञासा करने पर सदा स्पष्ट भाषा में "अच्छा ही होगा" ऐसा नहीं कह सकतीं। उत्तर मानो रुक जाता, फिर वास्तव में ही उस विषय में गड़बड़ भी हो जाता। माँ इस प्रकार दूसरों के मुँह से बातें कहला लेतीं।

भोजन करके उठने पर माँ ने मेरी ओर इंगित कर उनसे कहा, "मैं उसके साथ एक पात्र में खाऊँ ?" उन्होंने कहा, "अच्छा तो है, खाओ। किन्तु आज डॉक्टर बाबू पहले-पहल अपने मकान में लाये हैं, सब कुछ प्रबन्ध किया है, आज तुम्हें सब कुछ ख़ाना होगा।" स्वामी के आदेश से माँ यथासम्भव सभी नियम भंग करतीं। विशेषत: माँ का तो कोई भी नियम इच्छा करके होता नहीं—जब जो होने को होता हो जाता। कुछ दिन सम्भवत: एक नियम चला, फिर वह बदल गया। इसी तरह चलता था। वे भोलानाथजी की आज्ञा का पालन करने की सदा चेष्टा करतीं। भोलानाथजी भी माँ के प्रति विशेष दबाव न डालते। क्योंकि वे यह जानते थे कि माँ जो कुछ करती हैं, मङ्गल के लिए ही करती हैं। भोलानाथजी का आदेश पा कर माँ ने हँसते हुए मेरा हाथ पकड़ मुझे उठा कर कहा—"चल, हम एकसाथ खायेंगे। मैं इस अवस्था के बाद से फिर किसी के भी साथ नहीं खाती हूँ। मेरी ननद (कालीप्रसन्न बाबू की स्त्री) आई थीं, केवल उनके साथ खाया था। और आज तुम्हारे साथ खाऊँगी।" मैंने बहुत दिन पहले से ही मछली-मांस ख़ाना छोड़ दिया था। मांस तो चिरकाल से ही नहीं खाती थी, मछली का भी लगभग दो वर्ष से बिलकुल त्याग कर दिया था। इसके पहले भी मछली विशेष नहीं खाती थी। माँ का मछली का भोग है, माँ के साथ खाने पर मछली खानी ही पड़ेगी; किन्तु माँ को देखते ही ऐसा एक भाव जागा कि जिससे उनके आदेश का उल्लंघन करने की क्षमता नहीं रही, अनिच्छा से नहीं आनन्दपूर्वक मैंने उनका आदेश

मान लिया। सभी आत्मीय स्वजनों के विरोध करने पर भी मैंने मछली का त्याग किया था, किन्तु उस दिन माँ का आदेश न मानने की मुझमें क्षमता नहीं आई।

माँ के साथ भोलानाथजी के पत्तल पर जाकर खाने बैठी। माँ उस समय अपने हाथ से ही खाती थीं। माँ ने स्वयं थोड़ा खाकर मुझे मछली भात खिला दिया। मैंने कहा, "तुम जो दो वही खाऊँगी।" आत्मीय स्वजन कहने लगे, "आज से तुम यह आज्ञा दे जाओ कि उसे मछली खानी होगी।" किन्तु माँ ने जरा हँसते-हँसते कहा, "ना, यह नहीं कहती हूँ। मेरे साथ जब खायेगी तभी खायेगी, और समय (मछली) खाने की आवश्यकता नहीं है।" मैं उन दिनों आलू के साथ पकाया हुआ भात खाती थी, किन्तु माँ ने इतनी मछली-तरकारी खिला दी कि सभी ने सोचा कि इसे यह नुकसान पहुँचाएगी। माँ के साथ थोड़े दिनों का परिचय था इसलिए माँ की शक्ति का यथार्थ परिचय बहुतों को मिला न था। इसीलिए उन्होंने ऐसा सोचा था। मैंने हँसते कहा था, "तुम खाओगी नहीं, केवल मुझी को खिलाओगी।" माँ ने भी हँस कर उत्तर दिया, "आज तुम्हें खिला दिया है, पीछे तुम मुझे खिला दोगी।" इस कथन का अर्थ उस समय भली-भाँति समझ में नहीं आया। खाना-पीना समाप्त हो गया। सायंकाल माँ शाहबाग चली गईं।

इसके कुछ दिन बाद ही पौष संक्रान्ति के दिन सूर्यग्रहण पड़ा। बहुत लोग सम्मिलित होकर उस दिन शाहबाग में माँ के समीप दिन में कीर्तन करेंगे और प्रसाद पायेंगे यह

निश्चय कर उसकी व्यवस्था करने लगे। हम लोग उस दिन सबेरे ही आ पहुँचे। आकर देखते हैं कि माँ तरकारी छील रही हैं। मुझे भी माँ ने उस काम में लगा दिया। बहुत लोग प्रसाद पाने वाले थे। बाउल बाबू और उनकी स्त्री ने आकर माँ को सहायता पहुँचाई। माँ ने तरकारी सुधार कर चावल, दाल आदि ठीक कर दिये। देवेन्द्र कुशारी आदि कई भक्त रसोई बनाने वाले थे। मटरी बुआ तो थीं ही। पिताजी ग्रहण के समय पुरश्चरण करते थे। वे भी उस दिन घर न जा कर वहीं जप करने बैठे। माँ ने स्वयं ही पूजा के बर्तन माँज कर पिताजी के लिए पूजा की जगह बना दी। ग्रहण का आरंभ होते ही कीर्तन शुरू हुआ। धीरे-धीरे प्रमथ बाबू की स्त्री, निशि बाबू की स्त्री आदि स्त्रियाँ आकर माँ को प्रणाम कर कीर्तन के निकट एक गोल कमरे में जा बैठीं। नाचघर में कीर्तन हो रहा था। माँ की अवस्था देख कर मालिकों के श्रद्धान्वित होने के कारण वहाँ सभी जगह माँ का उत्सव चल रहा था। माँ समागत स्त्रियों को अपने हाथ से सिन्दूर दे रही थीं, बैठने के लिए चटाई आदि बिछा दे रही थीं, किसी काम में त्रुटि न थी। इधर रसोई की सब व्यवस्था कर दी गई। तदुपरान्त माँ स्त्रियों के साथ कीर्तन के सामने गोल कमरे में जा बैठीं। माँ किसी भी आसन पर विशेष बैठती न थीं, जमीन पर ही बैठतीं और जमीन पर ही लेटी रहतीं। बहुधा इस अवस्था में सारा दिन कट जाता, माँ जमीन पर ही पड़ी रहतीं। कभी-कभी मैंने देखा है कि चींटियों से माँ का

सूर्यग्रहणोत्सव—
३०, पौष १९८२

मुख-हाथ भरा है, माँ एक कोने पर पत्थर के समान जमीन पर पड़ी हैं। उस दिन भी जमीन पर एक कोने में जा बैठीं। सिर और शरीर भली-भाँति कपड़े से ढक दिया था। सदा ही मैं देखती, माँ सिर अथवा शरीर का कपड़ा कभी खोल कर न बैठतीं, शरीर भली-भाँति ढका रहता। कीर्तन हो रहा था, लगभग दोपहर का समय था, हम लोग भी सब माँ के समीप बैठी थीं। सहसा माँ का सारा शरीर

कीर्तन में माँ का भावावेश

हिलने लगा, सिर का वस्त्र गिर गया। नेत्र बन्द हो गये, किन्तु शरीर मानो कीर्तन के ताल-ताल में नामकीर्तन के साथ-साथ हिल रहा था। इस प्रकार हिलते-हिलते ही माँ उठ खड़ी हुईं। किन्तु मालूम पड़ता था कि शरीर छोड़ दिया है, किसी अदृश्य शक्ति की सहायता से शरीर में भाँति-भाँति की क्रियाएँ होने लगीं। अवस्था देख कर स्पष्टतः प्रतीत होता था कि इसमें अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं है। शरीर इस प्रकार छोड़ दिया कि शरीर का कपड़ा भी गिरा जा रहा था। उस समय माँ बदन पर शमिज नहीं पहनती थीं, कपड़ा ही इस प्रकार भली-भाँति पहनती थीं कि कभी भुजाएँ तक दिखाई नहीं देती थीं। सब स्त्रियों ने माँ के शरीर पर एक चादर कस कर बाँध दी। माँ हवा के साथ-साथ—मानो प्रत्येक बार गिर कर भी वायु में भार देकर ही उठ रही थीं। सारे कमरे में घूमने लगीं। मानो एक विचित्र नशे में मस्त हों। ठीक वैसा भी न था—हमने जो अवस्था देखी उसका वर्णन भाषा द्वारा नहीं किया जा सकता। अपने जीवन में और कभी भी ऐसी अवस्था देखने में नहीं

आई । चैतन्यदेव और रामकृष्णदेव की जीवनी में इस महाभाव के विषय में मैंने केवल पढ़ा भर था । आज इस अवस्था को प्रत्यक्ष आँखों से देखकर तो मैं मानो स्तब्ध हो गई । कैसी आश्चर्य की अवस्था थी । जो कुछ ही क्षण पहले कितने काम कर रही थीं वे इस समय न जाने कहाँ चली गईं । उक्त अवस्था साधारण लोगों की तो बुद्धि में भी नहीं आ सकती थी । माँ का शरीर इस प्रकार घूमते-घूमते बरामदे से धीरे-धीरे कीर्तन करने वालों की टोली में जा कर घूमने लगा । नेत्र ऊपर लगे हुए तथा पलकहीन थे, मुँह पर अस्वाभाविक ज्योति मानो झक-झक कर रही थी, सम्पूर्ण शरीर पर रक्त कान्ति थी । देखते-देखते उत्थितावस्था से ही एकाएक जमीन पर गिर पड़ीं । किन्तु तनिक भी शरीर पर चोट आई हो ऐसा प्रतीत नहीं हुआ । मैंने कहा तो है कि हवा के साथ ही मानो शरीर छोड़ दिया था, वायु के साथ ही साथ मानो शरीर जमीन पर ढुलक पड़ा, गिरते ही जैसे बवंडर कागज या पत्ते को उड़ा ले जाता है वैसे ही शरीर द्रुतगति से घूमने लगा । हम लोगों ने पकड़ रखने की चेष्टा की, किन्तु उस वेग को सम्हालना असम्भव हो गया । थोड़ी देर बाद स्थिर हो कर बैठीं । नेत्र बन्द थे, आसन बाँध कर बैठी थीं, स्थिर, धीर, अचल, अटल । अवस्था देख कर मैं पिताजी को दिखाने के लिए उन्हें बुलाने माँ के सोने के कमरे में गई । पिताजी जप कर रहे थे । मैंने कहा, "देख लीजिये कैसी अद्भुत अवस्था है । ऐसी अद्भुत अवस्था मैंने कभी नहीं देखी है ।" किन्तु पिताजी जप छोड़ कर उठे नहीं । उस समय भी ग्रहण हटा न था । उसके अनन्तर माँ कीर्तन के उस अस्त-व्यस्त वेश से ही पिताजी

जिस कमरे में जप कर रहे थे चलते-चलते उसी कमरे में एकाएक दरवाजा खोल कर अकेले ही प्रविष्ट हो गईं, क्या किया यह मुझे ज्ञात नहीं, एक क्षण के बाद ही बाहर आकर दरवाजा बन्द कर उसी तरह कीर्तन में चली आईं। किन्तु पिताजी ने माँ को देखा नहीं। माँ बैठ कर पहले धीरे-धीरे फिर जोर-जोर से स्पष्ट रूप से कीर्तन करने लगीं,—"हरे मुरारे मधु कैटभारे, गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।" केवल इतना ही घूम-घूम कर गाने लगीं। क्या वह स्वर था, आज भी उसका स्मरण होने पर शरीर में रोमाञ्च होते हैं। ऐसी मधुर ध्वनि और कभी सुनी नहीं। सब कुछ ही नूतन था। सभी ने इस व्यापार को प्रायः नया देखा। क्योंकि माँ का उक्त भाव इतने दिनों तक खूब गुप्त ही था, सबके सन्मुख कीर्तन के बीच में वे इस तरह और कभी भी प्रकट नहीं हुई थीं। तदुपरान्त माँ कुछ देर चुपचाप बैठी रह कर शरीर छोड़ कर जमीन पर गिर पड़ी। शरीर में मानो किसी प्रकार का स्पन्दन न था। श्वास अत्यन्त धीरे-धीरे जरा-जरा चल रहा था। ग्रहण छूट चुका था, पिताजी ने उठ आकर देखा कि माँ का वेश अस्त-व्यस्त है, सिर के केश भी इधर-उधर बिखरे हैं, इस प्रकार सिर झुका बैठी हैं। जमीन पर पड़ कर पिताजी ने उन्हें प्रणाम किया।

साँझ हो गई थी। भोलानाथजी ने अनेक आवाज देकर माँ को उठाया। उस समय भी शरीर विवश था, शरीर का वस्त्र ठीक नहीं कर पा रही थीं। हमने कपड़ा ठीक कर दिया। बोल नहीं सक रही थीं। जीभ एकदम जकड़ गई थी। भोलानाथजी के कहने पर उनके साथ-साथ

उठ गईं सही, किन्तु शरीर बिलकुल भी ठीक न था। भोलानाथजी माँ को रसोई घर में ले जाकर घुमा ला कर सोने के कमरे में ले गये। माँ उस कमरे में जाकर जमीन पर बैठ गईं। धीरे-धीरे सभी के साथ जरा-जरा बोलते-बोलते धीरे-धीरे वचन कुछ स्पष्ट हुआ। धीरे-धीरे शरीर की अवसन्नता भी कुछ कम हुई। मैं शरीर पर हाथ फेरने लगी। माँ बोलीं, "शरीर के भीतर ठीक नहीं है; न जाने कैसा हो गया है।" नेत्र उस समय भी जल से भरे थे। इसी तरह साँझ हो आई। भोलानाथजी ने कीर्तन के निकट बतासे ले जाने को कहा। माँ फिर सिर और बदन का वस्त्र ठीक कर के एक पीतल की परात में बतासा स्वयं ले और एक पीतल की परात में जो फल काटे थे मेरे हाथ में देकर कीर्तन में चलीं। कीर्तन की एक ओर बतासा रखे गये, फल भी रखे गये। गिलास से जल दिया गया। खूब जोर से कीर्तन आरंभ हुआ। सन्ध्या हो गई थी, माँ घूँघट काढ़ कर स्त्रियों के साथ कीर्तन में एक ओर जमीन पर बैठ गईं। कुछ देर बाद ही फिर वही भाव प्रकट हुआ, जिससे शरीर में नई-नई क्रियाएँ होने लगीं। इस बार नेत्रों की वह शान्त दृष्टि कुछ काल के लिए बदल कर भयानक भ्रुकुटि के रूप में परिणत हो गई। पैर और दोनों हाथ इस प्रकार चल रहे थे कि देखते ही मालूम होता था पैर और दोनों हाथ कभी एक पैर इस प्रकार चल रहे थे मानो युद्ध और ताण्डव नृत्य हो रहा हो। शरीर का रंग भी लाल न था, मानो काली छाया पड़ी हो। कुछ देर बाद वह भाव बदल गया। कभी प्रतीत होता था कि मानो सारे शरीर से आरती

कर रही हों। आरती के साथ-साथ मानो शरीर आहुति दे रहा हो। कितने ही प्रकार होने लगे। अन्त में बैठ गई थीं, किन्तु प्रतीत हो रहा था कि मानो भीतर से धक्का देकर मुख से बाहर निकलेगा किन्तु निकल नहीं रहा था, शब्द बाहर नहीं निकल रहा था। कई बार प्रयत्न करने के पश्चात् अपूर्व मन्त्र और स्तोत्र बाहर निकलने लगे। वह ध्वनि कितनी सुन्दर थी और उच्चारण भी कितना सुन्दर और स्पष्ट था, किन्तु वह भाषा किसी के समझ में नहीं आ रही थी। कई एक बीज मन्त्र के तुल्य सुनाई दे रहे थे, पर समझ में कुछ नहीं आ रहा था। मुँह से धारावाहिक रूप में स्तोत्र निकल रहे थे। फिर धीरे-धीरे स्तोत्र बन्द हो गये। धीरे-धीरे माँ चुप होकर स्थिर भाव से बैठीं और कुछ क्षणों के उपरान्त लेट गईं। इधर बहुत रात बीत जाने के कारण दिनभर के उपवास के सब भक्त प्रसाद पावेंगे यह सोचकर भोलानाथजी माँ को उठाने के लिए अनेक प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु माँ उठ नहीं सक रही थीं। लड़खड़ाते वचन से कह रही थीं, "उठ नहीं सक रही हूँ, शरीर बेबश है।" तदनन्तर हम सारे शरीर को हाथ से मलते रहे, बहुत देर बाद माँ उठ बैठीं। वस्त्र ठीक करने की चेष्टा कर रही थीं, किन्तु हाथ ठीक न होने के कारण नहीं कर सक रहीं थी। इस कारण बच्चों की तरह अपने आप हँस रही थीं। आँखें भी भली-भाँति नहीं खोल सक रही थीं। किन्तु मुँह पर हास्य की रेखा लगी ही थी। भावावस्था में मुख उज्ज्वल था। उसमें वह हास्य की रेखा भी बड़ी ही मीठी लग रही थी।

कुछ क्षणों के बाद माँ उठ कर खड़ी हुईं और अपने शयन गृह की ओर चलीं। उसी कमरे में भोग का सब सामान प्रस्तुत था। माँ और भोलानाथजी कमरे में गये। धूप-दीप जला दिया गया, दरवाजा बन्द कर दिया गया। भोग लगा, वे दोनों बाहर आये। बहुत लोग प्रसाद पाने वाले थे। फलतः बैठक के कमरे में, जहाँ कीर्तन हो रहा था उसी कमरे में, खाने की जगह की गई। माँ ने भोलानाथजी से कहा, "तुम इन लोगों के साथ बैठो मैं और खुकुनी परोसेंगी, पीछे हम खाएँगी।" माँ का आदेश था, इसलिए सब लोग खाने बैठ गये।

एक घटना

इस बीच में एक घटना हो गई। माँ जिस समय कीर्तन में बैठी थीं उस समय सब स्त्रियाँ माँ को घेर कर बैठी थीं। माँ की संनिधि होने के कारण किसी को भी संकोच नहीं रहा। कुछ दूर पर एक पुरुष खड़ा था, किसी ने भी उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु घूँघट के भीतर से ही माँ की दृष्टि उसकी ओर जाकर स्थिर हुई। धीरे-धीरे दृष्टि इतनी तीव्र हो उठी कि उस आदमी ने फिर घूर न सकने के कारण नेत्र जमीन की ओर नीचे कर लिये। माँ की तीव्र दृष्टि शान्त हो गई। माँ जरा हँसते हुए उस आदमी को लक्ष्य कर कह उठीं, "ये सब लड़कियाँ आज मेरे कारण ही सबके सामने हुई हैं, तुम इनमें से किसी की भी ओर नहीं घूर सकोगे। केवल मेरी ओर देख सकते हो, उससे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, किन्तु सावधान, अब किसी की ओर न ताकना।" इस कथन का अर्थ किसी की समझ में

कुछ नहीं आया। उस समय वहाँ नये-नये लोग आये थे, कोई किसी को विशेष पहचानते न थे। उनके बीच में एक भद्र पुरुष के प्रति माँ के इस तरह कहने पर सभी का ध्यान आकृष्ट हुआ कि यह क्या हुआ। उसके पश्चात् कीर्तन आदि में और भोजन का इन्तजाम करने में व्यस्त रहने के कारण किसी ने उस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब सब लोग भोजन करने बैठे तब वे सज्जन भोजन करने के लिए नहीं बैठ रहे थे। माँ और मैं परोसने लगी। माँ ने भी कमर पर कपड़ा लपेट लिया, उस समय मानो एक दूसरी मूर्ति हो गई। वह सज्जन भोजन करने नहीं बैठ रहे हैं यह देख कर सब लोग उनसे बैठने का अनुरोध करने लगे। उन्होंने कहा—"मैं खाऊँगा नहीं, माँ मेरे ऊपर गुस्सा हुई हैं।" माँ उस समय समीप में ही परोस रही थीं। बिना सिर उठाये ही एक आदमी के पत्तल पर खिचड़ी परोसते-परोसते मानो अपने मन में ही बोल उठीं, "माँ किसी पर गुस्सा नहीं होती।" उक्त सज्जन ने भी वह सुना, सबके कहने पर इस बार वह भोजन करने बैठे, किन्तु विशेष कुछ खा न सके। प्रायः दो पहर रात बीतने पर सबका खाना-पीना समाप्त होने पर मैं और माँ एकसाथ भोजन करने बैठीं। भोलानाथजी ने माँ से कहा, "मैं कहता हूँ आज भली-भाँति सब कुछ खाओ।" माँ ने अपने नियमानुसार न खाकर कुछ खाया। उस पुरुष की ओर इस प्रकार की तीव्र दृष्टि की चर्चा उठी। माँ ने केवल यही कहा, "देखो, मैंने अपनी इच्छा से अथवा गुस्से से उस तरह ताका हो सो बात तो बिलकुल ही नहीं है। हर एक पुरुष के भीतर के भाव

के अनुसार ही उसकी ओर उस प्रकार की दृष्टि पड़ती है। वह भयभीत हो जाता है और सोचता है कि माँ ने गुस्से में आकर उस प्रकार से देखा है। किन्तु मेरे अन्दर क्रोध का भाव बिलकुल ही नहीं रहता, दृष्टि यदा-कदा वैसी हो जाती है।" इस प्रकार की अनेक बातें होने के अनन्तर हम लोग नमस्कार कर बिदा हुए। माँ भी विश्राम करने लगीं।

दूसरे दिन आश्रम में जाकर सुनने में आया कि माँ रात्रि में कुछ ही देर बिछौने पर रह कर जमीन पर आ बैठी रहीं। माँ अक्सर इसी प्रकार रहती हैं, कभी जमीन पर पट होकर (नमस्कार करने की तरह) पड़ी रहती हैं, बहुत समय बीत जाता है। यह दिन है या यह रात्रि है यों कोई समय-असमय माँ का नहीं है। रात्रि में सोना चाहिये अथवा दिन में जागना चाहिये ऐसा कुछ नियम मैं नहीं देखती हूँ, जब शरीर में जो भाव हो जाता है तब उसी भाव में चलती हैं। वे कहती हैं, "तुम लोगों को जैसे प्रातःकाल, दोपहर, सन्ध्या, रात्रि इस प्रकार भिन्न-भिन्न समयों की प्रतीति होती है, भाव में परिवर्तन होता है, मुझे वह कुछ भी प्रतीत नहीं होता, सभी समय मानो बिलकुल एक से लगते हैं, कोई भी भेद मालूम नहीं होता।" उस दिन तड़के रात्रिशेष से ही जमीन पर उतर कर आँखें बन्द करके ही चौकी पर सिर रख कर बैठी थीं। इधर प्रातःकाल ही वे भद्र पुरुष आकर माँ को प्रणाम कर माँ से कुछ दूर सिर नीचा कर बैठ गये। माँ के उठने में विलम्ब देख कर उन्होंने भोलानाथजी से पूछा, "माँ कब उठेंगी ?" भोलानाथजी ने माँ को दो-चार बार पुकार कर जगा कर बैठाया। माँ ने उस भद्र पुरुष

की ओर देखा। भद्र पुरुष ने पुनः प्रणाम कर भोलानाथजी से पूछा, "कल माँ ने मेरी ओर उस तरह क्यों निहारा एवं मुझसे वे सब वचन क्यों कहे यही पूछने आया हूँ।" माँ ने क्या उत्तर दिया इसका ठीक स्मरण नहीं है। उसे सुनकर वह भद्र पुरुष माँ के निकट अपने जीवन का सारा वृत्तान्त जी खोल कर कहने लगे। अपने भाव की बात भी कहने लगे। उन्होंने जो कहा उसका सारांश यह है कि किसी स्त्री के प्रति मेरा मातृभाव उदित नहीं होता है, केवल सखी भाव जागता है। मैं शिक्षित हूँ, किन्तु किसी तरह भी मेरे इस स्वभाव में परिवर्तन नहीं हो रहा है। घर पर बड़े भाइयों के निकट इसीलिए अब भी बहुत किचकिच सहनी पड़ती है किन्तु उपाय क्या ? मातृभाव तो मेरे भीतर आता ही नहीं। उन्होंने यह भी कहा, "आज पहले-पहल मैंने आपको 'माँ' कहकर पुकारा है और प्रणाम किया है। आज तक मैं किसी को भी माँ कहकर नहीं पुकार सका।" माँ ने उन्हें कुछ उपदेश दिया और कहा "प्रतिदिन एक बार यहाँ आना। पर किसी स्त्री के मुख की ओर निहार नहीं सकोगे, पैरों की ओर निहारोगे।" प्रतिदिन मैं देखती वे माँ के निकट बैठे रहते, "दूसरी किसी स्त्री के कमरे में जाते ही सदा कपड़े से ढँक कर सिर को नवाँ कर बैठते। माँ जब जाने की आज्ञा देतीं तब कुछ प्रसाद लेकर चले जाते। पीछे मैंने सुना कि उक्त पुरुष के चरित्र में परिवर्तन हो गया है। वे अब भली-भाँति परिवार को साथ लेकर नौकरी करके दिन व्यतीत कर रहे हैं।

पखावज और करताल उस समय शाहबाग में ही पड़े

थे। एक दिन सन्ध्या के समय माँ ने कहा, "रोज सन्ध्या के समय थोड़ा-थोड़ा नाम-कीर्तन हो तो क्या बुरा है ? पखावज करताल तो हैं ही।" यह कहने पर भोलानाथजी को साथ लेकर आशु, अमूल्य आदि सभी उस दिन सन्ध्या समय कीर्तन करने बैठ गये। माँ भी बैठीं, हम लोग भी बैठे, थोड़ा सा कीर्तन हुआ। धीरे-धीरे और भी दो-चार आदमी सन्ध्या समय आने लगे, उन्होंने भी कीर्तन में योग दिया। भोलानाथजी गाना न जानने पर भी खूब आनन्द के साथ जोर-जोर से नामकीर्तन करते। इस तरह प्रतिदिन कुछ देर तक कीर्तन होना आरम्भ हुआ, मैं बतासे ले आती, उनका प्रसाद बाँटा जाता। प्रतिदिन ही कीर्तन में माँ का थोड़ा-थोड़ा ऐसा भाव होता, किसी दिन खूब अधिक होता। कभी-कभी स्तोत्रादि भी मुँह से निकलते, किन्तु उस भाषा का अर्थ कोई भी समझ न पाता।

शाहबाग में नियमित रूप से कीर्तन का आदेश

संक्रान्ति के दिन माँ की उक्त अवस्था होने के अनन्तर माँ के दर्शन करने बहुत लोग आने लगे। बहुत से लोग भोग भी देते। माँ भी रसोई बनातीं, जो उपस्थित रहते तदुपरान्त वे प्रसाद पाकर जाते। माँ का नियम था, जिस दिन जो-जो कुछ भी लेकर आवेगा (कच्ची मिर्चा तक) उसी दिन वह पका कर बाँट दिया जायगा, घर में कुछ नहीं रह सकेगा। और खाने वाले लोग भी ठीक समय पर जुट जाते। इसके अनन्तर माँ ने तीन भात खाने का नियम आरम्भ किया।

प्रमथ बाबू की बदली हो रही थी, इसलिए उन्होंने माँ के हाथ का बना हुआ प्रसाद पाना है यह सोचकर माँ के मकान में नाना प्रकार की वस्तुएँ भेजीं। भोलानाथजी हमारे मकान में जाकर हम लोगों को प्रसाद लेने के लिए कह आये। भोग रात्रि में होने वाला था। पिताजी बहुत वर्षों से रात्रि में थोड़ा दूध और मिठाई लेते हैं, यदि और कुछ खा लें तो उन्हें नुकसान करता है। माँ ने यह सुना था, इसलिए उन्होंने कहला भेजा, "पिताजी, दिन में थोड़ा दूध-फल खाकर रहें, तब रात्रि का खाना उन्हें कोई नुकसान नहीं करेगा।" माँ के आदेश से वैसा ही किया गया। दोपहर में ही हम आ गये। माँ रसोई की व्यवस्था कर रही थीं, चिंड़िमछली का चाप, काटलेट आदि बनाने वाली थीं। मैं साथ-साथ सहायता कर रही थी। मुझे मालूम हुआ कि माँ किसी विषय में भी अपटु नहीं हैं। वह काम भी बड़ी कुशलता के साथ ही कर रही थीं। क़ाम-धाम खूब सफाई सुघराई से और शीघ्रता से करतीं। रसोई तैयार हो गई, अग्नि के ताप से माँ का मुँह लाल हो गया, किन्तु मुँह पर हास्य की रेखा लगी ही रही। सन्ध्या होते ही भोग लगा। भोलानाथजी, प्रमथ बाबू, पिताजी और दो-चार व्यक्ति भोजन करने बैठे। माँ ने मैं बाद में खाऊँगी कहा। माँ और मैं परोस रही थीं। सभी में माँ का भिन्न-भिन्न नूतन रूप देख रही थी। उस समय देख कर यह प्रतीत नहीं होता था कि इन्हीं ने कीर्तन के समय ऐसा रूप धारण किया था। हाँ, ध्यान देते ही दोनों नेत्रों का अस्वाभाविक भाव उस कामकाज के समय भी लक्षित होता था। बोलना

अधिकांश समय अस्पष्ट रहता, कुछ देर बोलते-बोलते तब जाकर कुछ साफ होता । नहीं तो चुपचाप रसोई बनातीं, परोसते समय मुँह में बोली न रहती, पर हाथ खूब काम करते । उस समय यदि कोई बातें करना आरम्भ करते तो मुँह से वचन न निकलना ऐसा मैंने अक्सर देखा है । जरा चुप होते ही बोली रुक जाती । और यदि कोई काम हाथ में न ले चुप होकर बैठतीं तो तुरन्त नेत्र बन्द हो जाते हिलती रहतीं या एकबारगी सो पड़तीं,—ऐसा भाव हो जाता कि उठाना कठिन हो जाता । केवल कीर्तन में ही नहीं, जब कभी इस प्रकार का भाव हो जाता । पर कीर्तन में ही अधिक होता और विविध प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ होतीं । सबका खाना-पीना हो गया । माँ सदैव भोलानाथजी के पत्तल पर ही बैठतीं । उस दिन मैं और माँ एकसाथ बैठीं । खाने-पीने के बाद माँ के निकट थोड़ी देर बैठ कर हम सब लोग अपने-अपने मकान चले आये ।

श्रीसरस्वती पूजा थी मेडिकल कालेज के लड़के भिखारियों को भोजन कराने वाले थे और साथ ही कीर्तन भी कराने वाले थे, उसमें उन्होंने माँ को ले जाना चाहा । किन्तु पिताजी ने मना कर दिया । साधारणतः कीर्तन करते ही माँ का ऐसा भाव होता है । कालेज के अन्दर भी यदि ऐसा हुआ तो बाहर के जो सब लोग वहाँ रहेंगे वे सब इस भाव को पहचान तो सकेंगे नहीं, न जाने कौन किस दृष्टिकोण से देखेगा, क्या कहेगा, माँ तब भी घूँघट

भिखारियों का भोजन और दरिद्र नारायणों की सेवा—सौर १९ फाल्गुन; १९८२

काढ़े रहती थीं—यह सब विचार कर निषेध कर दिया गया। शाहबाग में ही कीर्तन हो, जो-जो आवे देखे। माँ ने एकबार कहा था, "भिखारियों का भोजन देखने में आता।" इस कथन पर मेरा आग्रह हुआ, अपनी जननी की मृत्युतिथि के उपलक्ष्य में मैंने भिखारियों के भोजन का आयोजन किया। माँ को ले जाऊँगी यही आनन्द था।

बगीचे में पेड़-पौधे नष्ट हो जायेंगे यह सोचकर मालिकों ने शाहबाग में भिखारियों को भोजन कराने की अनुमति नहीं दी। संयोगवश मेडिकल कालेज में ही भिखारियों के भोजन का आयोजन किया गया। लगभग तीन हजार आदमियों के खाने का बन्दोबस्त हुआ। माँ के भक्तों तथा कालेज के छात्रों ने ही सब प्रबन्ध किया। हम लोग माँ को और भोलानाथजी को साथ लेकर भोजन के पहले दिन रात्रि में वहाँ गये। रात्रि में वहाँ रहने का निश्चय हुआ। माँ का आदेश था कि जब तक भोर न हो तब तक दरिद्र नारायणों के लिए रसोई नहीं बैठाई जायगी, क्योंकि बासी भोजन नहीं दिया जायगा। तरक़ारी काटी जा रही थी, माँ ने कहा, "हम भी थोड़ी तरकारी काटेंगे। दरिद्र नारायणों के भोग क़ा काम करना चाहिये।" वही हुआ, ऊपर बैठ कर हंमने भी थोड़ी बहुत तरकारी छीली। दूसरे दिन प्रातःकाल जिनके रसोई बनाने के लिए आने का निश्चय था वे नहीं आये। मथुर बाबू नाम के माँ के एक भक्त ने (जो पुलिस विभाग में काम करते थे) माँ को प्रणाम कर कहा—"रसोई बनाने वाले ब्राह्मण तो अभी तक नहीं आये, इधर भोर

हो गया है ।" माँ ने कहा, "चल, हमीं जाकर रसोई चढ़ा दें ।" माँ की कृपा से थोड़ी देर बाद मथुर बाबू रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को साथ लाकर उपस्थित हुए, हम लोगों को रसोई चढ़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ी । सारी रात माँ ने हम लोगों में से किसी को भी सोने नहीं दिया, बोलीं, "दरिद्र नारायणों की सेवा करोगे, आज रात जागे रहो । सभी कामों के पहले निष्ठा के साथ संयम करना पड़ता है ।" प्रातःकाल मुझसे कहा, "इस समय दरिद्र नारायण जिस तरह तुम्हारे काम में उपस्थित हों उसके लिए उनके निकट प्रार्थना करो ।" यह कहते ही मुझसे बोलीं, "क्या, नारायण सब भली-भाँति आयेंगे तो ?" मैं जानते हुए भी जवाब देते समय न जाने क्यों ठिठक गई, बोली "यदि तुम्हारी इच्छा होगी तो आवेंगे ।" माँ उसी समय बोल उठीं, "कैसे कह रही है—प्रतीत होता है गड़बड़ करेंगे ।"

हो जाने वाला है होगा ही । दोपहर के समय लगभग ११ बजे से लड़कों ने कीर्तन आरंभ किया । सरस्वती देवी की मूर्ति उस समय भी वहीं थी । माँ ने हँस कर कहा, 'इस सरस्वती की पूजा में लड़कों ने इस शरीर को यहाँ लाना चाहा था, मूर्ति रहते-रहते ही आना हुआ ।" कीर्तन खूब जम उठा । माँ भी भाव में विभोर हो पड़ीं । शरीर में कितने प्रकार की क्रियाएँ हो रही थीं । उस दिन भी कुछ क्षण ऐसी उग्रमूर्ति में ऊर्ध्व दृष्टि से मानो खड्ग लेकर किसी के साथ युद्ध कर रही हों । इस भाव का आरंभ होते ही जीभ बाहर निकल पड़ी । मुहूर्त भर में ही जीभ भीतर चली गई, भाव में भी परिवर्तन हो गया । माँ ने भाव से भरपूर शान्तमूर्ति

धारण की। कभी आसन पर बैठ कर मानो पूजा कर रही थीं—अपनी ही स्वयं पूजा कर रही थीं, कभी अपने पैरों पर ही माथा टेक कर प्रणाम कर सर्वथा अशक्त हो जा रही थीं, कभी द्रुतगति से घूमते-घूमते जमीन पर लोट-पोट लेते-लेते स्थिर भाव से चित्त होकर लेट रही थीं—नाभि से लेकर कण्ठ तक ऐसा श्वास चल रहा था मानो लहर खेल रही हो, फिर कभी शिथिल होकर पड़ गईं, मैं गोद में लेकर बैठी थी। सारा शरीर पत्थर के समान ठण्डा हो गया, जरा स्थिर होते ही मुख से असंभावित रीति से राल निकलने लगी, मेरे सब कपड़े भींग गये; कभी नेत्रों से इतना अश्रुजल निकल रहा था कि धोती, कुर्ती सब भींग कर तर हो रहे थे; फिर कभी एकबारगी मृत की-सी अवस्था हो जा रही थी, अँगुलियाँ, नख सब काले हो गये थे। मुख मृत के मुख की भाँति पीला पड़ गया था। नाड़ी की गति भी है या नहीं, समझ में नहीं आता था। श्वास के चिह्न भी बिलकुल न थे। हम लोग मारे भय के अधीर हो उठे, किन्तु माँ ने पहले से ही बतला रक्खा था, "तुम्हें नामकीर्तन करना चाहिये, यदि ठीक होने वाला होगा तो उसी से हो जायगा।" इसलिए हम लोग यदि माँ की ऐसी अवस्था होती तो केवल नामकीर्तन करते। भोलानाथजी भी खूब नामकीर्तन करते थे। वह कीर्तन दो तल्ले पर हो रहा था। उस समय पिताजी नीचे रसोई के कमरे में खड़े थे। एक आदमी ने जा कर पिताजी से कहा, "ऊपर जाकर देखें माँ की कैसी चमत्कारपूर्ण भावावस्था हुई है।" पिताजी दौड़ कर ऊपर गये, किन्तु जाकर देखा तो माँ बैठी हुई थीं,

सिर के बाल अस्त-व्यस्त थे, सिर झुका कर बैठी हुई थीं। पिताजी ने जाकर बड़े ही दुःख के साथ मन ही मन कहा, "आज मैं ही ठगा गया। तुम्हारे उस रूप के मुझे दर्शन नहीं मिले।" मन ही मन ऐसा विचार कर जप करने बैठ गये। थोड़ी देर बाद आँखें सहसा खुल गईं,—माँ की ओर देखते ही माँ के मुख का रंग गहरा काला और दोनों ओठ लाल दिखाई दिये। जीभ बाहर निकली नहीं दिखी। पिताजी ने कहा, "मैंने आँख गड़ा कर दो-तीन बार देखा, सोचा आँखों का भ्रम तो नहीं है ? किन्तु भ्रम नहीं था, मैंने स्पष्टतः वही रूप देखा। थोड़ी देर बाद उस रंग में परिवर्तन हो गया—स्वाभाविक गौरवर्ण हो गया।" माँ कुछ देर बाद सो गईं। फिर उठ कर बैठते ही उसी तरह धाराप्रवाह से स्तोत्र आदि निकलने लगे। कुछ क्षणों के बाद प्रसाद बाँटा गया। माँ भी तनिक सुस्थिर रूप से सो पड़ीं। तीन बजते-बजते बहुत प्रयत्नों से माँ को जगाया गया। इधर दरिद्र नारायणों को भोजन के लिए बैठाना था। माँ उठीं, कुछ स्वस्थ हुईं, जंगलें से भिखारी कितने इकट्ठे हुए हैं यह देखकर बोलीं, "कुछ विशेष तो नहीं देख रही हूँ। तीन हजार के लिए प्रबन्ध है, आधे भी होंगे या नहीं, सन्देह है। मैंने प्रातःकाल ही कह दिया था कि आज गोलमाल करेंगे।" नीचे जहाँ सब रसोईं तैयार कर रक्खी हुई थी, माँ को उस कमरे में ले जाना हुआ। उस दिन विशेष भोग लगाना न था, माँ को दर्शन करा कर फिर प्रसाद वितरण करने की बात थी, इसलिए पिताजी माँ को नीचे ले गये। माँ ने मेरे कन्धे पर हाथ रख कर घूम-घूम कर सब देखा।

घूँघट के भीतर से माँ ने जिस प्रकार दृष्टि डाली, आज भी उसकी मुझे याद है। किस प्रकार नेत्र घुमा कर सब वस्तुएँ एक ही बार देख लीं। माँ ने कहा, "मैं भी थोड़ा परोसूँगी।" सबने माँ के जयकार के नारे लगाये। माँ ने कमर पर कपड़ा लपेट कर परोसा। एक कुष्ठ रोगी आया, माँ ने उसे विशेष प्रेम से खिलाया। पीछे माँ ने दरिद्र नारायणों की जूठन उठानी चाही। भोलानाथजी के निषेध करने के कारण फिर नहीं उठाई। भक्त और कालेज के लड़कों ने ही जूठन उठाई। अनेक भद्र महिलाएँ भी उक्त कार्य को देखने गई थीं। माँ ने कहा, "आज हम सभी दरिद्र हैं, सभी यह प्रसाद पावेंगे।" वैसा ही हुआ। सभी उसी जगह प्रसाद पाने बैठ गये। धनी-गरीब का कोई विचार नहीं रहा। दरिद्र नारायण भोजन करने बैठे, भीषण अन्धकार कर वृष्टि आई। सब लोग मैदान में भोजन करने बैठे थे, माँ एकाएक कमरे से बाहर निकलीं, मैदान की एक ओर जाकर टहलने लगीं। सब लोग भोजन समाप्त होने पर उठ गये, माँ भी कमरे के अन्दर आकर बैठीं। उसके बाद वेग से वृष्टि आई। हमने सोचा वृष्टि के कारण सबका भोजन खराब न हो, इसीलिए माँ बाहर जाकर टहलने लगी थीं। इसी तरह बाद में और भी दो-एक बार मैंने देखा है। रात में एक दूसरे भद्र पुरुष को सब भार सौंप कर माँ सबको साथ लेकर जहाँ पर दरिद्र-भोजन हुआ था, अन्धकार में उस मैदान में जाकर खाने बैठीं और बोली, "आज हम भी भिखारी हैं, हमें भी भिक्षा दो।" जिन भद्र पुरुष पर भार सौंपा था उन्होंने जल्दी-जल्दी लाकर माँ को परोसा। सभी

लोग माँ के चारों ओर बैठ गये। माँ ने उजाला लाने नहीं दिया, बोलीं, "क्या भिखारी दीपक जला कर खाते हैं ?" खाने-पीने के अनन्तर धीरे-धीरे सबने बिदा ली। अन्त में माँ भी हमें साथ लेकर चली आईं। बहुत सा सामान बच गया। निश्चय हुआ कि दूसरे दिन बाँट दिया जायगा। माँ कह आईं, "कल फिर मैं नहीं आऊँगी।" रात्रि में टिकाटूली आकर दूसरे दिन शाहबाग चली गईं।

अनाथ का वृत्तान्त

इधर उक्त दरिद्र नारायण भोजन के समय एक लड़का माँ के दर्शन कर न मालूम कैसा हो पड़ा था। वह ढाका में कानून का अध्ययन करता था—मेडिकल कालेज के निकट ही एक मेस में रहता था। पीछे सुनने में आया कि वह उस दिन रात्रि से ही माँ के दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठा। दूसरे दिन भोर में एक बार अपनी कोठरी का दरवाजा खोल कर कुछ फूल तोड़ कर फिर दरवाजा बन्द कर दिन भर बैठे-बैठे एकाग्र मन से माँ को पुकारता रहा। उसका विश्वास था कि माँ इस पुकार से निश्चय ही मेरे कमरे में आवेंगी एवं उस समय मैं फूलराशि माँ के चरणों में चढ़ाऊँगा। वह दिन भर बिना खाये दरवाजा बन्द किये बैठा रहा। उसके सगे-सम्बन्धियों में से कोई भी माँ कहाँ रहती हैं यह जानते न थे। मेडिकल कालेज में पूछताछ करने पर लड़कों से उन्हें केवल यह खबर मिली कि वह माताजी शशाङ्क बाबू की गुरु माँ हैं। शशाङ्क बाबू रोज ही वहाँ जाते हैं। वास्तव में माँ किसी को भी दीक्षा नहीं देती हैं। लड़के हमारे घर आकर उपस्थित हुए और पिताजी से शाहबाग का पता

लेकर सन्ध्या समय अनाथ को साथ ले शाहबाग गये । हम लोग भी शाहबाग गये । लड़का माँ को साष्टाङ्ग प्रणाम कर पड़ा ही रहा । इधर सुनने में आया कि दोपहर से ही माँ बाहर जाने के लिए छटपटा रही थीं, मेडिकल कालेज की ओर जाऊँ ऐसा भाव जागा था । किन्तु पहले दिन कह आई थीं, "कल फिर इधर नहीं आऊँगी, तुम्हीं ने भार लिया है, तुम्हीं सब बाँट देना"—इसलिए रात खुलते ही उधर जाने की प्रतीक्षा में थीं । माँ ने कहा, "मैं तो अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं हूँ, किन्तु उधर जाने के लिए कैसा एक अपूर्व भाव जागा था ।" इधर अनाथ के बन्धु-बांधवों ने बलात् दरवाजा खोल कर अनाथ को ले जाकर माँ के समीप उपस्थित किया । सारी घटना सुन कर हम तो अवाक् रह गये । कीर्तनादि हुआ । किन्तु अनाथ उस समय भी माँ की चरणधूलि लेने के लिए पड़ा था । माँ किसी को भी चरण छूने नहीं देती हैं । बहुत समय बीत गया, रात बहुत हो गई । माँ उस समय भी घूँघट काढ़ कर बैठी थीं । दूसरा चारा न देखकर भोलानाथजी ने माँ से कहा—"यह लड़का जब सारे दिन तुम्हारे लिए ही व्याकुल रहा तब आज इसे चरणधूलि दो ।" भोलानाथजी के आदेश की माँ जैसे भी हो, रक्षा करने की चेष्टा करतीं । उस दिन भोलानाथजी बार-बार वही रट लगा रहे थे । किन्तु माँ स्थिर होकर बैठी ही रहीं । कुछ क्षणों के बाद माँ धीरे-धीरे उठ खड़ी हुईं, मुख लाल हो उठा, पैर के केवल अँगूठे के ऊपर भार देकर खड़ी हुईं । भोलानाथजी के संकेत पर अनाथ एवं अन्यान्य सभी माँ की चरणधूलि पाकर कृतार्थ

हुए। उस समय अनाथ के आनन्द की सीमा न रही। माँ और भोलानाथजी भोजन करने गये। अनाथ बैठा रहा, उसकी इच्छा थी कि माँ के पत्तल का प्रसाद लेकर जाऊँ। माँ उसे भी विशेषतः किसी को नहीं देती हैं। किन्तु उस समय अनाथ के सभी कर्मों में सिद्धि हुई। माँ ने एक छोटी सी चाँदी की थाली में सब तरकारियों से मेरे द्वारा भात मिलाया फिर सिर पर लम्बा घूँघट काढ़ कर अन्नपूर्णा स्वयं ही प्रसाद वितरण करने गईं। एक-एक ग्रास उठाकर माँ ने हाथ एक ही स्थान पर स्थिर भाव से रक्खा, पहले अनाथ, तदनन्तर सभी धीरे-धीरे माँ के हाथ के नीचे हाथ पसार रहे थे, माँ ग्रास छोड़ दे रही थीं, फिर दूसरा ग्रास उठा रही थीं। इस प्रकार अनाथ के कारण उस दिन सभी माँ की चरणधूलि और प्रसाद पाकर धन्य हुए। तदुपरान्त सबने माँ को प्रणाम कर बिदा ली। संभवतः अनाथ उस दिन वहीं रहा, दूसरे दिन दोपहर के समय उसने पुनः माँ की चरणधूलि ली थी। नियम हुआ कि महीने की उन दो तारीखों में, जिन दो समयों में अनाथ ने पैर की धूलि ली है उन्हीं दो तारीखों के निर्दिष्ट इन दो समयों में, पाँच मिनट के लिए सभी माँ की चरणधूलि लेंगे। अगले महीने में सब भक्तजन यह वृत्तान्त जानकर निर्दिष्ट तारीखों के निर्दिष्ट समय में उपस्थित हुए। माँ बैठी थीं, घूँघट काढ़ कर बैठे-बैठे हिल रही थीं। सब लोग घड़ी देख रहे थे, किन्तु माँ नेत्र बन्द कर बैठी थीं। ज्यों ही ठीक समय हुआ, माँ खड़ी हो गईं। जल्दी-जल्दी एक-एक करके सब चरण धूलि लेने लगे, माँ नेत्र बन्द कर हाथ जोड़कर खड़ी थीं। सुई के

ठीक २-१० पर पहुँचते ही माँ ने बैठ कर जमीन पर लोट कर प्रणाम किया। किन्तु उक्त नियम केवल उसी मास में दो दिन रहा, उसके अनन्तर बन्द हो गया।

उसके बाद से ही अनाथ और मेडिकल कालेज के अन्य कई लड़के आते-जाते रहते। धीरे-धीरे सीतानाथ, सुबोध, जटू, पोष्टमास्टर सुरेन्द्र बाबू, गिरिजा बाबू, विनय बाबू, केदार मास्टर आदि अनेक लोग आने लगे, कीर्तन भी अत्यन्त सुचारु रूप से होने लगा।

माँ का स्ववर्णित पूर्वावस्था का इतिहास

एक दिन माँ ने अपने पूर्व जीवन का वृत्तान्त कहते-कहते कहा, "कितने प्रकार की अवस्थाएँ हुई हैं, इसका अन्त नहीं है, किन्तु कोई भी अधिक दिन नहीं चली; मानो एक के बाद एक अवस्था शरीर के ऊपर से चली गई है।" प्रातः स्नान कुछ दिन किया, परान्न-भोजन का कुछ दिन त्याग किया, आचार निष्ठा की ओर कुछ दिन विशेष भाव रहा। माँ कहतीं, "जिस कमरे में बैठकर ये सब क्रियाएँ होतीं उस कमरे के बाहर की चारों ओर लगभग दो हाथ जगह इतनी साफ रखती कि एक तिनके के साथ भी कमरे का स्पर्श न रहता। धूपदानी लेकर चारों ओर घूम आतीं।" और भी कहा, "दिन-रात कहाँ चले जाते इसका मुझे भान न रहता।" भोलानाथजी की सेवा की पूर्ति कर जा बैठतीं—खाना-पीना (दिन का खाना) संभवतः किसी-किसी दिन रात्रि शेष में होता, और कभी होता भी नहीं, यदि किसी प्रकार छू जातीं तो कैसी विचित्र अवस्था हो जाती। कहने लगीं, "मैं चौकी पर बैठी होऊँ, पीछे की

ओर शायद किसी के कपड़े से स्पर्श हुआ, इतने में शरीर हिलने लगता। मैं देखती नहीं, किन्तु शरीर की अवस्था से मुझे विदित हो जाता कि किसी से मैं छू गई हूँ।" फिर किस प्रकार ये सब नियम टूटे यह बात भी कही—"एक लड़की के विवाह में उसे सिन्दूर लगाने गई, सिन्दूर लगा दिया। तभी से सबको छू सकती हूँ।" माँ ने कहा "बाजितपुर में यह अवस्था प्राप्त होने के पूर्व सभी मुझसे खूब स्नेह करते थे, सदा मेरे समीप आते थे। किन्तु यह अवस्था आरंभ होने पर इन्हें भूत लगा है यह सोच कर सबने आना बन्द कर दिया। अच्छा ही हुआ, मैं भी एकान्त पा कर अपनी इच्छा के अनुसार बैठ कर पुकारती। सभी जिससे सुचारू रूप से सम्पन्न हो गया।" बचपन के वृत्तान्त के सिलसिले में एक दिन बोलीं, "बाल्यावस्था में भात खाने बैठते ही मैं अन्यमनस्क हो जाती थी, माँ मुझे धक्का देकर बिगड़ती और कहती, खाने बैठ कर खाने की ओर ध्यान नहीं है, ऊपर की ओर देखती है। मैं कुछ कह न पाती। इस समय कह सकती हूँ, इसलिए कह रही हूँ मैं देखती कि कितनी ही देव-देवियों की मूर्तियाँ आ रही हैं और जा रही हैं।" एक दिन हँसते-हँसते बोलीं—"बाल्यावस्था में सभी मुझको सीधी कहते, विशेषतः माँ सदा ही कहतीं, यह अत्यन्त सीधी है, इसे कुछ भी सुधबुध नहीं है।" मैंने एक दिन एक कलसा जल पोखरे से भर कर बगल में रख कर टेढ़ी खड़ी होकर माँ से कहा "तुम सब मुझे सीधी कहते हो, यह तो मैं टेढ़ी बन गई हूँ।" यह बात सुनकर हम सभी हँस उठे। माँ भी

हँसने लगीं। मैंने हँसते हुए कहा, "इस समय तुम्हारी माँ देख रही हैं कि उस सीधी लड़की ने किस प्रकार इतने लोगों को पागल बना डाला है।"

एकदिन जाकर मैंने देखा माँ को एकाएक भीषण सर्दी हुई है। पीछे मुझे उसका कारण मालूम पड़ा। प्रमथ बाबू के लड़के प्रतुल ने माँ से कहा था, "मुझे सर्दी मालूम पड़ रही है, परीक्षा आई है, देखना परीक्षा के समय जैसे सर्दी न रहे।" इस कथन के फलस्वरूप उसकी सर्दी घट गई और उसकी परीक्षा के समय माँ को सर्दी हो गई।

दूसरे के रोग का आकर्षण

एक दिन प्रमथ बाबू की स्त्री ने माँ से कहा, "माँ, मैं सोमवार को मौन रहूँगी। माँ प्रायः सभी लोगों से कुछ समय मौन रहने को कहती रहती हैं। इस कथन पर माँ ने कहा, "अच्छा तो है, वैसे ही रहना।" इधर प्रमथ बाबू ने माँ से कहा, "माँ, मेरी स्त्री मुझसे आगे बढ़ जायँ सो नहीं होगा। वे सोमवार को मौन रहेंगी, तो मैं उसके पहले दिन रविवार को मौन रहूँगा।" माँ ने उस पर भी अपनी सम्मति प्रकट की। वे अत्यन्त भक्तिमान् पुरुष थे। गत पौषसंक्रान्ति के दिन रात्रि में कीर्तन के समय भाव में विभोर होकर खड़े-खड़े नाचे थे। वे माँ के समीप आकर चुपचाप बैठ कर नाम-जप करते थे और प्रणाम कर चले जाते थे, यह उनका प्रतिदिन का सन्ध्या समय का

मौन ग्रहण और मौन तोड़ने की प्रक्रिया

काम था । किस तरह उत्तम प्रकार से मौनी रहा जाता है, इस सम्बन्ध में उन्होंने एकान्त में माँ से प्रश्न किया । माँ ने भी उन्हें एक प्रक्रिया बतला दी । उन्होंने उसी प्रक्रिया से रविवार को मौन लिया । सोमवार को बोलने के समय उन्हें प्रतीत हुआ कि वचन नहीं निकल रहा है । वे बड़े ऑफिसर थे । कितने ही लोग आकर कितने कागज-पत्र ले कर बैठे थे, किन्तु महा-विपत्ति यह कि वे बोल ही नहीं सक रहे थे । प्रतुल ने शाहबाग आकर माँ को सब हाल बतलाया और उन्हें साथ ले गया । माँ ने जाकर बोलने की प्रक्रिया बतला दी, तदुपरान्त उस प्रक्रिया द्वारा प्रमथ बाबू बातें कर सके । माँ ने कहा, बोलना बन्द करने की प्रक्रिया देख आकर "तुमने तदनुरूप क्रिया कर मौन ग्रहण किया था, किन्तु मौन तोड़ने की प्रक्रिया तुम देख नहीं आये, इसी से यह गड़बड़ी हुई ।"

हम लोगों को साथ लेकर माँ एक दिन सिद्धेश्वरी-मन्दिर गईं । वहाँ पर एक स्थान बाँसों से घेरा हुआ था और

सिद्धेश्वरी का वृत्तान्त

उसके बीच में एक छोटी वेदी ईंट और मिट्टी से बनाई थी । उसके चारों ओर तुलसी के पेड़ तथा दो फूल के पेड़ लगाये थे । सिद्धेश्वरी के काली-मन्दिर में जो भैरवी सेवा आदि करती थी, वही वहाँ एक बत्ती जला दिया करती थी । माँ वहाँ जाकर बहुत देर तक बैठीं । फिर चली आईं । सिद्धेश्वरी का कालीमन्दिर भी प्राचीन मन्दिर है । एक विशाल पीपल का पेड़ जड़ सहित उखड़ा पड़ा है, किन्तु पेड़ सूखा नहीं, जड़ से फिर पेड़ निकल रहा है । सुनने में आया कि इस वृक्ष

का भी क्या अद्भुत माहात्म्य है ।

सिद्धेश्वरी का पहले का इतिहास माँ के मुँह से जैसा मैंने सुना है वह यहाँ पर उल्लेखयोग्य प्रतीत हो रहा है ।

सिद्धेश्वरी का पहले का इतिहास

माँ कहती हैं, "सन्ध्या होते ही अपना काम पूरा कर रमना के कालीमन्दिर में आकर कभी मैं बैठी रहती अथवा कभी प्रणाम करने की-सी मुद्रा में पट होकर पड़ी रहती । इस तरह रात्रि बहुत बीत जाती । एक दिन सुनने में आया कि रात को दस बजे रमना कालीमन्दिर का दरवाजा बन्द हो जायगा, ऐसा नियम बना है । उसी समय एक दिन अटल तथा अन्यान्य दो-तीन व्यक्तियों से मैंने कहा, "चलो, रमना की काली के दर्शन कर आवें ।" यह कह कर उन लोगों को साथ लेकर हम बाहर निकले । मार्ग में ही दस बज गये । उस समय सभी कहने लगे कि अब तो दर्शन होंगे नहीं, क्योंकि दरवाजा बन्द हो गया होगा । मैंने कह डाला, 'चले तो चलो ।' हम लोग जिस समय कालीमन्दिर के फाटक से प्रवेश कर रहे थे उस समय एक घटना घटी । ठीक उसी समय देखा गया कि एक विधवा दो बालक-बालिकाओं को साथ लेकर हम लोगों की दृष्टि बचा कर बगल से शीघ्रता से मन्दिर की ओर चली गई । हमने जाकर देखा तो वही स्त्री मन्दिर में प्रणाम कर लौट रही थी, मन्दिर का दरवाजा खुला था । सभी ने अचम्भे में आकर पूछा, "इस समय भी यह दरवाजा खुला है ? तब मालूम हुआ कि वह स्त्री कालीमन्दिर के महन्त की शिष्या है । वह आई थी इसी से दरवाजा खुला है । हम लोगों के

पहुँचते ही स्त्री चली गई। आश्चर्य की बात है कि रास्ते में और कहीं पर भी उस स्त्री के साथ भेंट नहीं हुई। एकदम फाटक के पास जाकर इस प्रकार भेंट हुई। इतनी रात में यह स्त्री यहाँ अकेली क्यों आई, यह प्रश्न किसी के मन में नहीं उठा। पीछे वह स्त्री चार वर्ष की एक लड़की को लेकर मेरे पास शाहबाग आई थी। लड़की भली-भाँति चल फिर नहीं सकती है, यही बात मुझसे कहने आई थी। मेरे मुँह से न जाने क्या निकला। पीछे एक दिन आकर उस स्त्री ने कहा, "माँ तुम्हारे निकट प्रार्थना करके जाने के अनन्तर लड़की अच्छी हो गई है।" मैंने छोटी लड़की की ओर ध्यान नहीं दिया, किन्तु वह विधवा स्त्री शाहबाग में जब मेरे निकट आई तब मैंने विशेष रूप से उसे ही लक्ष्य किया। उसी समय एक दिन सावन महीने में, जिस वर्ष भोलानाथजी की शाहबाग में नौकरी लगी थी उसी वर्ष बाउल ने हम लोगों के साथ शाहबाग लौटते समय मार्ग में कहा, 'एक दिन तुम लोगों को सिद्धेश्वरी ले जाऊँगा। बाउल के साथ रमनामन्दिर में ही कुछ दिन पहले भेंट मुलाकात हुई थी। और भी पहले की बात यह है कि बाजितपुर में एक दिन मेरे नेत्रों के सामने एक वृक्ष उद्भासित हो उठा था और मनमें सिद्धेश्वरी का वृक्ष ऐसा भान हुआ था। उसके बाद शाहबाग आने पर एक दिन मैंने भोलानाथजी से पूछा, 'सिद्धेश्वरी का पेड़ कहाँ है ?' भोलानाथजी बतला न सके। बाद में बाउल के मुँह से उक्त बात सुनी। भोलानाथजी से इशारे में मैंने पहले जो सिद्धेश्वरी की बात कही थी उसे प्रकट करने का निषेध कर दिया। इसके

पश्चात् एक दिन बाउल आकर रात्रि में हम लोगों को सिद्धेश्वरी ले गया। जो पीपल का पेड़ गिरा था उसे देखते ही मैंने उसका स्पर्श किया और उसके पत्ते पर हाथ रक्खा। मैं समझ गई कि यही पेड़ मैंने देखा था। बाउल के मुँह से सुना कि यहाँ बहुत पहले मन्दिरादि नहीं थे। पीछे संवरन नामक एक संन्यासी ने इस मन्दिर की स्थापना की। यहाँ पर एकसाथ तीन वृक्ष थे, इसलिए इसका नाम तिन्तिरी पड़ा था। दो अब नहीं हैं—केवल यह पीपल का पेड़ विद्यमान है। किंवदन्ती है कि इस पीपल के वृक्ष से एक ज्योति निकल कर मन्दिर स्थित कालीमूर्ति में समा गई थी। हम लोग लालटेन से मन्दिर देख कर चले आये। उस समय सिद्धेश्वरी में ये सब मकान, कमरे न थे। इसके अनन्तर फिर एक दिन हम बाउल के साथ सिद्धेश्वरी गये। जाकर देखा तो ताला बन्द मिला, मैंने ताला पकड़ कर ज्यों ही खींचा, ताला खुल गया। बाउल ने कहा, 'माँ की इच्छा से ही ऐसा हुआ है।' पीछे हम लोग रात को लौट न सके, क्योंकि मन्दिर को खुला छोड़ कर कैसे लौटते ? प्रातः-काल ताले को यों ही खुला लगा कर हम लोग लौट आये। सिद्धेश्वरी के महन्त को इसकी सूचना दे दी थी। उन्होंने ताला खुला देख कर सोचा था कि बन्द करते समय संभवतः ताला भली-भाँति लगा न होगा। ताला मेरे खींचते ही खुला-पहले से खुला न था, यह बात किसी से कहने के लिए मैंने बाउल को मना कर दिया था। उसके अनन्तर एक दिन मैंने भोलानाथजी से कहा, 'तुम बाजार जाकर एक दर से सवा सेर आलू, सवा

सेर पीले मूँग की दाल और एक नारियल तथा कुछ चावल ले आओ, मोलभाव न करना।' भोलानाथ, आलू, चावल और नारियल ले आये, किन्तु पीले मूँग मिले नहीं। इसके कुछ दिन पहले मैं नारायणगञ्ज द्विजेन्द्र बाबू वकील के घर गई थी। वे आशु के (भोलानाथजी के भतीजे के) मामा थे। मुझे वे अत्यन्त प्यार करते थे। लड़के की बीमारी में मुझे ले गये थे। उनके मकान में मैं पीली मूँग देख आई थी। वहाँ से मैंने डेढ़ सेर मूँग मँगाया, उन्होंने दाम लेना नहीं चाहा, किन्तु अन्त में आशु द्वारा मैंने कहला भेजा जा कर कहो कि मुझे आवश्यंकता है यदि आप दाम नहीं लेंगे तो मैं उन्हें काम में नहीं ला सकूँगी। मेरी अवस्था वे जानते थे, इसलिए बाध्य होकर उन्होंने दाम ले लिये। इस तरह सब ठीक कर और सब सुधार-बीन कर एक दिन मैंने भोलानाथजी से कहा, "चलो सिद्धेश्वरी जायँ।" भोलानाथजी मेरी बात पर अड़ंगा नहीं डालते थे। वे चले। माखन उस समय शाहबाग में मेरे डेरे पर था, उसे खूब ज्वर चढ़ा था। सुरबाला की (माँ की बहिन की) मृत्यु के बाद वह हमारे समीप आया था। किन्तु उस ओर मेरा ध्यान ही न था। मैं गई। वहाँ जाकर उन सब वस्तुओं से रसोई बना भोग लगा कर खाना-पीना हुआ। मूँग की दाल, नारियल का भूँजा, आलुओं के साथ पकाया गया भात—बनाया। उसके अनन्तर मैंने भोलानाथजी से कहा, 'मैं यहीं रहूँगी।' उस समय निश्चय हुआ कि दिन में पिताजी जाकर सिद्धेश्वरी रहेंगे और सन्ध्या के बाद भोलानाथजी जायँगे। मैंने कहा, मैं कालीमन्दिर के निकट छोटी कोठरी में रहूँगी। वैसा ही

हुआ। मैं बहुत तड़के स्नान आदि करके कमरे में चली जाती, दिन-रात मैं फिर बाहर न निकलतीं। दिन भर कुछ खाना था नहीं। रात्रि के समय बाउल गाते-गाते फलादि ले आता। बहुत रात बीते उसी का नैवेद्य लगा कर खाना होता। पहले पहले मैं भोग लगाती थी, तुम लोगों ने भी देखा है। सब कुछ सजा कर बैठ गई या गिर पड़ी—पीछे उठ कर बोली, 'भोग हो गया है।' कभी-कभी रात्रि के समय महन्त लोग फूल, चन्दन रख जाते। शायद फूल काली को चढ़ा देती थी। किन्तु ये सब ही अस्वाभाविक रूप से निवेदन, पूजा आदि हो जाते। इसी तरह भोग निवेदन किया जाता। पीछे मैंने भोलानाथजी से कहा, "मालूम होता है अब यह सब मेरे बूते का नहीं है। तुम्हारे जो मन्त्र हैं उन्हीं से तुम भोग निवेदन करो।" तदनन्तर वे वैसा ही करते। इस तरह सात दिन बीत गये। भोलानाथजी कालीमन्दिर के एक छोर पर रहते, कभी अपना काम करते, कभी सोये रहते। मैं भी रात्रि को कालीमन्दिर में ही रहती, भोर में स्नानादि कर छोटी कोठरी में प्रविष्ट हो जाती। बाउल मन्दिर के फाटक पर रहता। इस प्रकार सात दिन बीते। आठवें दिन प्रातःकाल भयानक वृष्टि हुई। मैं भोलानाथजी को इशारे से (उस समय तीन वर्ष का मौन चल रहा था) बुला ले जाकर बाहर चली गई। कहाँ कौन मार्ग है कुछ भी नहीं जानती थी, एकदम उत्तर की ओर चली। अन्त में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर शरीर खड़ा हो गया। तीन बार प्रदक्षिणा सी हुई। उसके अनन्तर दक्षिण मुँह होकर घेरा डाल कर बैठ गई एवं स्तोत्रादि सब होने

लगे । क्योंकि उस समय इसी प्रकार बोली बाहर निकलती थी । बैठ कर ही मैं जमीन पर हाथ दबा कर रखा । आश्चर्य की बात है कि एक के बाद एक जमीन की पर्त हटने लगी और हाथ बिना रोक-टोक के जमीन के अन्दर घुसने लगा । इस प्रकार जब हाथ काँख तक अन्दर धँस गया तब भोलानाथजी ने मुझे पकड़ लिया और खींच कर हाथ बाहर निकाल लिया । साथ ही साथ थोड़ा-थोड़ा लाल रंग का गरम जल निकलने लगा । एवं माँ ने हाथ में कोई एक चीज उठाई थी । माँ जमीन में धँसी जा रही हैं देख कर भोलानाथजी को बड़ा डर लगा । इस समय हाथ में उक्त वस्तु को देखकर न जाने फिर क्या हो यह सोच कर माँ के हाथ से लेकर उन्होंने उसे सिद्धेश्वरी के पोखरे में फेंक दिया । पीछे भोलानाथजी से कहा गया, 'तुम हाथ डालो ।' भोलानाथजी के हाथ डालने में सहमत न होने पर उनसे कहा गया, भय कुछ नहीं है । तुम्हारा हाथ डालना आवश्यक है । हाथ डालो । तब उन्होंने भी हाथ डाला । भोलानाथजी ने कहा, 'स्थान मानो एकदम पोला प्रतीत हुआ तथा गरम मालूम पड़ा ।' भोलानाथजी के हाथ निकालने के साथ-साथ लाल गरम जल निकला । मैंने और भोलानाथजी ने खड़े होकर उसे देखा, जल निकल कर बहा जा रहा था । उस समय मिट्टी से उस जगह को ढक कर हम लोग चले आये । आश्चर्य का विषय है कि बाउल रोज जगा रहता था, किन्तु उस समय वह सो पड़ा । हम लोग उसके शरीर के निकट से ही बाहर गये थे, किन्तु उसे आहट प्रतीत नहीं हुई । उसके अनन्तर हम लोग लौट आये । बाउल जाग

गया। जाग कर उसने बहुत दुःख प्रकट किया। बाउल को भोग देने की इच्छा हुई। वह उसका प्रबन्ध करने के लिये चला गया। मैंने और भोलानाथजी ने फिर उस जगह जाकर भीतर हाथ डाला। पीछे एक बार शाहबाग जा कर सन्ध्या के बाद सिद्धेश्वरी लौट आये एवं रात्रि में मैंने ही भोजन बनाया। उसी समय तुम लोगों की नानी और बाउल की स्त्री भी आ गईं। भोजन के अनन्तर हम सब शाहबाग चले गये। उक्त निर्दिष्ट स्थान के पास ही एक बाँबी का स्तूप था। उसे तुम लोगों ने भी बाद में देखा है। देखो, उस जगह जब पहले गये तब बाउल सोया था, चारों ओर से किसी आदमी ने भी हमको जाते नहीं देखा। जब लौट आये तब भैरवी ने देखा था।"

आठवें दिन भी भोग लगा—माँ बाहर गईं। उसके दूसरे ही दिन भाद्रपद की संक्रान्ति थी। उसके बाद माँ शाहबाग में एक दिन लेटी थीं। बाउल से कतिपय वस्तुओं के लिए कहा गया। उसने उनको जुटा कर माँ के कथनानुसार उक्त गड्ढे में रख दिया। उक्त निर्दिष्ट स्थान की लिपाई कर रखने एवं उक्त स्थान को देखने प्रतिदिन जाने के लिए माँ ने कहा, बाउल वही करते। उन्होंने तुलसी और कई एक फूल के पौधे वहाँ लगाये थे। तदनन्तर प्राणगोपाल बाबू ने यह सुनते ही उस स्थान की रक्षा के निमित्त बाउल बाबू को दस रुपये दिये। उन रुपयों से माँ के निर्देशानुसार दस हाथ जगह बाँसों से घेर दी गई तथा उस निर्दिष्ट स्थान पर ईंटों की एक वेदी बना दी गई। वह नाप में सवा वर्ग हाथ थी। बाद को उक्त स्थान में जाकर कभी-कभी माँ बैठतीं

और कीर्तनादि होता। एक दिन वहाँ प्राणगोपाल बाबू को ले जाकर कीर्तन करके रात बिताई। प्राणगोपाल बाबू ने कहा था कि इस प्रकार कीर्तन आदि द्वारा रात व्यतीत करने का मेरे जीवन में यह सर्वप्रथम अवसर है। वे बड़े नियम के साथ आहार विहारादि करते थे। उस समय कीर्तन में माँ अपने आसन पर लेटी थीं। बाउल आदि सबने देखा कि माँ का शरीर नहीं है केवल कपड़े ही पड़े हैं। और एक विशेष बात यह हुई कि बाँबी का स्तूप गिरा कर जब पिताजी ने एक कमरा बनवाया तब कुली मजदूरों को उस बाँबी के स्तूप को तोड़ने में कैसा विचित्र भय हुआ था। तदुपरान्त माँ के कथनानुसार भोलानाथजी जाकर उसे गिरा आये। उक्त बाँबी के स्तूप की मिट्टी वासन्ती (चैत्र नवरात्र) पूजा के समय प्रतिमा की मिट्टी में मिला दी गई थी। इस बाँबी के स्तूप का क्या विवरण है यह अभी तक माँ के मुँह से प्रकाशित नहीं हुआ है। पर माँ ने यह बात प्रकट की थी कि भोलानाथजी ने इस स्थान में किसी समय साधना की थी। उन्होंने दुर्गापूजा की थी एवं उस दुर्गा-प्रतिमा का कालीमन्दिर के पोखरे में विसर्जन किया था। पाँच हजार पाँच सौ पाँच वर्षों के बाद इसी तरह विभिन्न साधक इस स्थान पर आते थे।

यहाँ पर एक ध्यान देने योग्य विषय है। वह यह कि भोलानाथजी ने बाजितपुर में यह इच्छा प्रकट की कि मेरी इच्छा है कि मैं एक पोखरे के साथ एक मकान बनाऊँ। एवं वासन्ती पूजा करूँ। माँ ने उसी क्षण कहा, "तुम्हारा तो मकान है—ढाका में गोकुल ठाकुर का मकान ही तुम्हारा

मकान है।" माँ के द्वारा कहे गये गोकुल ठाकुर ही पहले रमना आश्रम के मालिक थे यह बात बाद को सुनने में आई। पीछे भोलानाथजी की वासन्ती पूजा सिद्धेश्वरी में हुई। सिद्धेश्वरी के निर्दिष्ट स्थान पर बहुत प्राचीन काल में भोलानाथ ही साधक थे। तभी देखा जाता है कि भोलानाथजी के कारण ही उक्त दो स्थानों में माँ उन्हें ले आईं। उक्त दोनों स्थानों में वे थे।

भोग में बाधा

और एक घटना घटी। प्रमथ बाबू रोज ही माँ के मकान में कुछ मछलियाँ और पान भेज देते थे। उनकी बदली हो जाने पर उनका पुत्र प्रतुल ढाका में था, उसने नौकर से कह रक्खा था कि मकान में मछली आते ही पहले थोड़ी माँ के लिए भेज देनी चाहिये। एक दिन एक छोटी मछली का सिर माँ के मकान में भेज दिया। माँ ने अपने ही हाथ से रसोई बनाई। भोलानाथजी ने भोजन करने के लिए बैठकर ज्योंही सिर फोड़ा तो सिर के भीतर एक दम ताजा रक्त दिखाई दिया, थाली में खून की बूँद खूब जम गई। यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ, पक गया फिर भी उस सिर में इस तरह का ताजा खून कैसे रह गया ? माँ ने उसे उन्हें खाने नहीं दिया। प्रतुल ने आते ही यह बात सुनी, माँ से बार-बार इसका कारण पूछा, माँ ने अगत्या कहा, "शायद इस मछली को यहाँ भेजते समय किसी के मन में अनिच्छा रही हो, इसीलिए ऐसा हुआ।" उसने घर जाकर नौकरों और रसोइयों को बहुत फटकार कर पूछा। उन्होंने स्वीकार किया कि उस सिर को माँ के डेरे में भेजते समय हमारे मन

में ऐसा भाव आया था कि सिर प्रतुल बाबू के लिए ही रख देना चाहिये, अन्त में प्रतुल बाबू शायद पीछे बिगड़ें इस भय से माँ के डेरे में ही भेज दिया। तब प्रतुल ने जाकर माँ से विनती की "चूँकि भोग में इस प्रकार की गड़बड़ी हुई, इसलिए आगामी अमावस्या को मैं भोज के लिए सब सामान भेजूँगा आपको सब खाना होगा।" प्रतुल का भी माँ के प्रति अत्यन्त विश्वास और भक्ति थी। माँ उसके और भोलानाथजी के कथन पर अमावस्या को भात खाने के लिए राजी हो गईं। अमावस्या के दिन प्रतुल ने भोग भेज दिया, माँ ने उस दिन नियमानुसार भोजन किया। दूसरे दिन वे नौ पके चावल खाकर रहीं, दूध–फल का कुछ भी प्रबन्ध न था। अगली अमावस्या को पिताजी ने विनती की एवं उस दिन भोग दिया माँ ने उस दिन भी खाया।

उसके बाद प्रति अमावस्या को पिताजी भोग देते एवं माँ भी नियमानुसार भोजन करतीं। इस तरह अमावस्या का भोग आरम्भ हुआ। माँ के भानजे अमूल्य को जब पहले-पहल नौकरी मिली तब उसने पूर्णिमा को पूरी और मिठाई द्वारा माँ को भोग दिया। माँ ने उस दिन भी खाया। उसके बाद प्रत्येक पूर्णिमा को अमूल्य भोग देता। पीछे इस अमावस्या-पूर्णिमा का भोग सब मिल कर देने लगे। अमावस्या और पूर्णिमा को दिन के समय माँ, भोलानाथजी एवं सब भक्त साधारण थोड़ा-सा फल खाकर रहते। रात में कीर्तन होता और माँ का भोग लगता। बाद में सब प्रसाद पाते। हम लोग अक्सर ही रात

अमावस्या और पूर्णिमा को माँ का भोग

खुलते समय प्रसाद पाने बैठते । क्योंकि कीर्तन में माँ का भाव होता और उसके हटते-हटते बहुत रात बीत जाती थी । उसके बाद इतने लोगों का खाना-पीना समाप्त होने में प्राय: रात खुलने की नौबत आ जाती थी । उन दिनों माँ के भक्तों में प्राय: बहुत लोग अमावस्या और पूर्णिमा को दिन में खाते नहीं थे—रात्रि में रमना आश्रम में भोग लगता था, वहीं पर प्रसाद पाते थे । अमावस्या और पूर्णिमा की रात्रि में मन्दिर में विशेष पूजा होती थी ।

खाने की वस्तु में यदि किसी को लोभ हो जाता तो वह माँ के भोग में न लगती, यह मैंने अनेक बार देखा है ।

भोग की वस्तु में लोभ होने पर भोग नहीं होता

एक दिन माँ हमारे टिकाटूली के मकान में भोग ग्रहण करने बैठी थीं, खूब बड़ी मछली बनाई गई थी, जरा माँ के मुँह में दी गई, किन्तु माँ उसे किसी प्रकार भी निगल न सकीं । अन्त में प्रतीत हुआ कि नौकरों में गड़बड़ी हुई थी । एक दिन शायद कोई व्यक्ति कोई उत्तम खाद्य दे गये । किन्तु माँ ने कुछ नहीं खाया । सब बाँट दिया । फिर दूसरे किसी एक दिन साधारण सी वस्तु इस तरह खाई कि जो लाया था वह देख कर खूब ही तृप्त हुआ । फिर तो माँ के खाने की वस्तु बनाने में हमें बड़ी आशङ्का होती थी । कुछ दिन ऐसा हुआ था कि किसी फल पर यदि किसी पक्षी ने चोंच मारी हो तो उस फल को खा नहीं सकती थीं । माँ जानती न थीं—हम काट कर ले जाते, किन्तु खा नहीं सकती थीं । पीछे कारण बतलातीं । हम लोग देखते तो सचमुच वह पक्षी का चोंच मारा हुआ

निकलता । कुछ दिन इस तरह का भाव रहता, पीछे वह हट जाता । फिर जो-जो कुछ देता, बेरोक-टोक खा लेतीं । यहाँ तक कि दूसरे के मुँह की वस्तु भी खा जातीं । एक दिन एक कुत्ते को न जाने क्या खाता देख कर "मैं उसके साथ खाऊँगी" कह कर दौड़ पड़ी थीं ।

□□

दूसरा अध्याय

संवत् १९८२ में एक दिन एक घटना घटी। उस दिन अमावस्या थी। उस समय भी बहुत लोगों का आना आरंभ नहीं हुआ था। हम ही कुछ लोग शाहबाग गये थे। रात्रि में अमावस्यां का भोग और कीर्तन हो रहा था, सीतानाथ आदि कतिपय लोग कीर्तन कर रहे थे। निरामिष भोग मटरी बुआ ने ही बनाया था। सामिष रसोई माँ ने बनाई थी, मैं

अमावास्या के भोग और कीर्तन काल में विचित्र भाव—पैरों पर फूल चढ़ाने का परिणाम

साथ-साथ सहायता कर रही थी। रसोई में सामान्य थोड़ी सी कसर थी। माँ मुझे वहाँ रख कर कीर्तन में आ बैठीं। थोड़े आदमी रहते थे, इसलिए माँ बीच के जिस कमरे में लेटतीं उसी कमरे में कीर्तन होता था। मटरी बुआ आदि जिस कोने के कमरे में सोते थे, उसी कमरे में माँ बैठती थीं, कोई महिला यदि उपस्थित होतीं तो वह भी उसी कमरे में बैठतीं। रात के समय स्त्रियाँ विशेष रहती न थीं, कभी-कभी दो-चार महिलाएँ आ जाती थीं। उस दिन कोई स्त्री आई न थी, माँ अकेली ही उस कोने के कमरे में बैठी थीं। उसी कमरे में भोग लगने वाला था, रसोई के पदार्थ भी उसी कमरे में रखे जा रहे थे। प्राय: कीर्तन के समय माँ भावावस्था में बीच वाले कमरे में कीर्तन के बीच चली जाती थीं। कभी सारे मकान में घूमतीं, कभी लोट-पोट

लेतीं, कभी केवल पैर के अँगूठे के ऊपर सारे शरीर का भार देकर खड़ी रहतीं—उस समय शरीर में कितनी ही क्रियाएँ होतीं। कभी केवल पैरों की एड़ियों के ऊपर भार देकर घूमतीं, भावावेश में नाचतीं। कभी स्थिर होकर बैठी रहतीं अथवा लेट जातीं। पहले-पहले कभी-कभी प्रसाद के बतासों पर हाथ फेर कर एक बार जमीन पर फेंक कर गिर पड़तीं। कुछ दिनों के बाद फिर यह भी न कर सकतीं। भोलानाथजी से कह देतीं, वे ही नैवेद्य लगा कर प्रसाद बाँट देते। अन्त में कभी थोड़े से ही प्रयत्न से उठ जातीं। कभी-कभी सारा दिन बीत जाता, माँ उठाई न जातीं, रात के लगभग २-३ बजे तक मैं और पिताजी माँ के समीप बैठे रहते। भोलानाथजी उठाने के लिए विविध चेष्टाएँ करते। किसी दिन हम ही नामकीर्तन करते-करते माँ के तनिक स्वस्थ होने पर माँ को सुला कर घर आते। उस दिन माँ कोने के कमरे में जाकर बैंठी, कीर्तन हो रहा था। शेष रसोई बना कर मैं भी कीर्तन के समीप आई। माँ भाव में विभोर होकर कीर्तन में चली गई थीं। इधर मैं रोज ही माँ के लिए माला और कुछ फूल ले आती थी। उस दिन भी लाई थी। माँ जब चुपचाप बैठतीं, कीर्तन आरंभ होने के पूर्व ही मैं माला माँ के गले में डाल देती और फूल हाथ में रख देती। आज माँ पहले ही उस कमरे में चली गई थीं, इस कारण माला नहीं डाली जा सकी थी, इसलिए मेरा मन कैसा खराब हुआ। मैं पहले से माँ के शरीर की रक्षा करने के लिए भाव के समय पुरुषों की भीड़ में भी माँ के साथ-साथ रहती, किसी प्रकार का संकोच न करती थी। परन्तु

उस दिन माँ चली गई थीं, इसलिए मुझे अकेले-अकेले कीर्तन के बीच में जाने में एक प्रकार की लज्जा का अनुभव हुआ, अतः बीच में जा न सकी। उस कोने के कमरे में अन्धकार में ही खड़ी होकर माँ की ओर देखती रही, माँ को माला न पहना सकी, यह दुःख मन ही मन माँ को जताने लगी। मैंने देखा माँ कुछ देर घूम-घूम कर प्रतिदिन के समान बतासों को बखेर कर भूमि पर सो पड़ीं। मैंने सोचा माँ शीघ्र उठेंगी नहीं। कितने प्रयत्नों से उन्हें उठाना पड़ता है यह मुझे ज्ञात था। किन्तु क्या आश्चर्य है कि उस दिन माँ धीरे-धीरे उठकर खड़ी हो गईं। पहले कभी ऐसा देखने में नहीं आया था, इसलिए आश्चर्य में पड़ कर मैं देखने लगी। मैंने देखा, माँ हिलते-हिलते खड़ी होकर कोने की कोठरी की ओर—मेरी ओर—आ रही हैं। मैं अपने मन की उस समय की अवस्था न समझा सकूँगी, छाती के भीतर न मालूम कैसा हो उठा, क्षण भर में ही माँ हिलते-डुलते मेरी गोद में आकर गिर गईं, मैं भी उन्हें चिपटाकर बैठ पड़ी। कमरे में दूसरा कोई न था, कमरे में अन्धेरा था, मेरे मन की अभिलाषा जान कर ही माँ इस कमरे में इस प्रकार उठ कर चली आई हैं, इसमें मुझे बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं रहा। उस समय मन में कैसी लहर आई कि मैंने किसी विधि निषेध का खयाल नहीं किया, अन्धकार में माँ के गले में माला डाल कर फूल पैरों पर बिखेर दिये सोचा कि और तो कोई देखेगा नहीं। किन्तु फूल पैरों पर चढ़ाते ही माँ कैसी कड़ी पड़ कर गोद से लुढ़क कर जमीन पर लम्बी होकर लेट पड़ीं, अन्दर से

एक विचित्र आवाज बाहर निकालने लगी, आँखें चढ़ गईं । मुँह लाल हो गया, हाथ-पैर मानो ऐंठे जा रहे थे, एक अस्पष्ट शब्द कर रही थीं । भोलानाथजी वैसी अवस्था देख कर दौड़ कर उस कमरे में आये । जो कतिपय लोग कीर्तन में उपस्थित थे सभी उजाला लेकर दरवाजे पर खड़े हुए । माँ के पैर और कपड़ों पर नाना रंग के फूल बत्ती के उजाले में स्पष्ट दिखाई देने लगे । सभी समझ गये कि माँ के पैरों पर उसने (मैंने) फूल चढ़ाये हैं, इसी से माँ की ऐसी अवस्था हुई है । माँ का अस्पष्ट शब्द भी क्रमसे कुछ स्पष्ट हुआ । बाहर निकला, "उसने फूल चढ़ाये हैं मैं जाती हूँ" यह कह कर कैसा विचित्र भाव करने लगीं उसे देखते ही भय लगा । भोलानाथजी ने निषेध कर कहा, "जाना मत ।" सबने धीरे-धीरे कहा, "अनुचित ही हुआ जब कि निषेध किया था ।" वह भी मेरे कानों में पड़ा । माँ की ऐसी अवस्था थी, अपनी अवस्था का वर्णन करने के लिए मेरे पास भाषा नहीं है । मैं काठ की तरह स्तब्ध हो गई थी, अँगुलियाँ हिलाने की भी मुझमें शक्ति न थी । लज्जा, दुःख और भय ने मेरी ऐसी अवस्था कर दी थी कि मैं सोच रही थी पृथ्वी यदि फट जाती तो मैं उसमें समा जाती । किस प्रकार फिर लोगों को मुँह दिखाऊँगी, पिताजी ही क्या कहेंगे । सभी जानते हैं कि माँ मेरे ऊपर जरा अधिक अनुग्रह करती हैं, किन्तु आज मैं क्या कर बैठी, लोग क्या सोचेंगे ? मैंने माँ के आदेश की अवहेलना की । इतनी बातों का विचार करने की उस समय मुझमें शक्ति नहीं थी । मैं तो चौकी के कोने पर माँ के पैरों के पास ही सिर

नवा कर बैठी थी, भोलानाथजी सान्त्वना दे रहे थे। सभी चुप थे। माँ आज क्या कर डालेंगी सभी को यह भय था। सहसा माँ अस्त-व्यस्त वेश से ही उठ बैठीं। नेत्र उस समय भी शान्त नहीं हुए थे। उठते ही मुझसे बोलीं, 'उठ'। मैं मशीन के खिलौने की तरह खड़ी हुई। फिर बोलीं (अपने दोनों पैर मिला कर बैठी थीं) "मेरे दोनों पैरों के ऊपर दोनों पैर रख कर ठीक तरह से खड़ी हो।" दरवाजे के निकट ही कितने ही लोग खड़े हैं, कैसे उनकी ओर मुँह करके खड़ी होऊँ ? किन्तु इतना सोचने का अवकाश उस समय कहाँ था ? मशीन के खिलौने के समान मैंने उस आदेश का भी पालन कर लिया। उस समय माँ न मालूम क्या-क्या सब मन्त्रों का उच्चारण करते-करते उन्हीं सब फूलों को मेरे पैरों पर बिखेरने लगीं। कुछ देर तक इस तरह करने के बाद माँ शान्त हुईं। मुझसे उतरने को कहा, स्वयं भी पैर समेट कर ठीक तरह बैठीं। फिर सहसा मेरी ओर निहार कर बोलीं, "आज से अपने पैरों पर हाथ लगा कर किसी को भी प्रणाम करने न देना, छोटे भाई-बहनों को भी नहीं।" पीछे किसी कारण से यह भी बतला दिया था, "तुम भी दो-तीन व्यक्तियों को छोड़ कर और किसी के भी पैरों पर हाथ लगा कर प्रणाम न करना।" मैं कोने के भीतर फिर बैठ गई। इस बार माँ को शान्त देख कर मारे दुःख के मुझे भीषण रुलाई आई, क्यों माँ उस प्रकार स्वयं आईं, माला, फूल चढ़वाये, फिर इस प्रकार सबके सामने मुझे लज्जित किया। भय उस समय चला गया था, क्योंकि माँ तो स्थिर ही हो गई थीं।

मैं रोने लगी । माँ ने हँस कर भोलानाथजी से कहा, "देखो तो वह क्यों रोती है ।" भोलानाथजी ने कहा, "तुमने जैसा किया है रोवेगी ही तो, अब शान्त करो ।" उस समय भी हम लोगों को वहाँ गये बहुत दिन नहीं हुए थे । उस समय माँ ने दरवाजा बन्द कर देने को कह कर वास्तव में ही उस दिन मुझे शान्त ही किया । इस घटना के बाद से प्रत्येक अमावास्या को पैरो में फूलों की अञ्जलि देने की माँ से अनुमति पाकर मैं प्रत्येक अमावास्या को पूजा करती थी । एक दिन मैंने कहा, 'माँ, मैं पूजा नहीं जानती हूँ ।' माँ ने कहा, "तुम जिस प्रकार करोगी उसी से पूजा हो जायगी ।" मैं यथासाध्य भक्ति पुष्पाञ्जलि माँ के चरणों में अर्पित करती । जिस दिन से माँ के चरणों में अञ्जलि अर्पित करना आरंभ किया उस दिन से माँ ने और किसी देवता के चरणों में अञ्जलि देने का निषेध कर दिया । तभी से केवल इन चरणों को छोड़ कर और कहीं पर भी पुष्पाञ्जलि नहीं देती हूँ । तदनन्तर माँ ने कहा, 'चल, अब प्रसाद परोसें ।' मैंने कहा, मैं परोसने न जा सकूँगी । जो काण्ड हुआ है, उससे सबके समीप जाने में मुझे लज्जा लगती है । वे सब निश्चय ही मन ही मन मेरे लिए खूब क्रुद्ध हुए होंगे ।

माँ ने तुरन्त ही कहा, "अच्छा, मैं सबसे पूछती हूँ, कैसा गुस्सा किया है ।" मैंने देखा ये फिर एक महाविपत्ति खड़ी करेंगी । मैं अगत्या माँ के कथनानुसार माँ के साथ परोसने के लिए राजी हुई । माँ और मैं सबको परोस कर भोजन करने बैठे ।

मांस खाने में मुझे भीषण घृणा होती, इसलिए माँ

प्रसादी का मांस भी मुझे कभी न देती थीं। एक दिन खाने के लिए बैठने के पूर्व माँ बोलीं, "आज से खुकुनी मुझे खिला देगी। और जब वह न रहेगी तब तुम खिला दोगे।" कुछ दिन भोलानाथजी ने खिला दिया था, कभी मुँह नवा कर अपने हाथ से ही भोजन कर लेतीं। अवश्य कभी हाथ से भी जरा खा लेतीं। आज से अपने हाथ से भोजन करना

अपने हाथ से खाना बन्द—मेरे ऊपर खिलाने का भार

एकबारगी बन्द हुआ। माँ अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं। कुछ दिन पहले राजेन्द्र कुशारी के मकान में भोज में गई थीं, उस समय भात मुँह में डालते समय माँ को प्रतीत हुआ कि हाथ मुँह की ओर न जा कर नीचे की ओर झुका जा रहा है। उसी समय माँ ने समझा कि हाथ से खाना बन्द हो रहा है। उसके बाद किसी प्रकार चलता था। मैं इस काम का भार पाकर कृतार्थ हुई। बहुत दिन पहले टिकाटूली के मकान में पहले दिनके भोग में बैठ कर माँ ने मुझे खिला दिया था और कहा था, "जिस समय मैं न खा सकूँगी उस समय तुम मुझे खिला दोगी।" उस कथन का तात्पर्य अब मेरी समझ में आया। माँ तो सब कुछ जानती थीं, इसी से उस समय मुँह से ऐसी बात निकली थी। खाने-पीने के पश्चात् माँ और भोलानाथ सो गये, हम उन्हें प्रणाम कर घर चले गये। उसके बाद से माँ नौ या तीन जितने भी पके चावल खातीं, यदि मैं उपस्थित रहती तो मैं ही खिला देती। उस समय दिन में भोजन करते समय मैं न आती थी, रात्रि में रोज ही मैं माँ को खिला देती माँ के सोने पर चली जाती। मकान को लौटने

में रात्रि के प्रायः ही १½ या २ बजे क्या उसमें भी अधिक समय हो जाता था।

एक और घटना सुनने में आई कि गत दीपावली को (संवत् १९८२ वि० के कार्तिक में) सबके अनुरोध से इस शाहबाग में ही माँ ने कालीपूजा की थी। माँ को कभी फूल-बेलपत्रों से सर्वसाधारण के समान पूजा करते किसी ने नहीं देखा, उनके दीक्षादि भी साधारण रीति से नहीं हुए, अलौकिक रूप से अपने आप ही हो गये। माँ पूजा करने बैठीं। एक तगड़ा बकरा बलि देने के लिए लाया गया। माँ बकरे को गोद में लेकर पहले बहुत देर तक रोईं, पीछे उसका उत्सर्ग किया। उसके बाद बकरा कैसा सीधा होकर अपने आप ही बलि के स्थान पर जाकर खड़ा हो गया। माँ ने स्वयं प्रतिमा के सामने मुँह के बल पट हो तन कर लेट कर बलि देने के पूर्व ज़ैसे बकरा कातर शब्द से चिल्लाता है वैसे ही तीन बार शब्द किया। बहुत देर बाद बलि होने पर देखने में आया कि एक बूँद भी रक्त बाहर नहीं निकला। थोड़ा सा रक्त बाहर निकालना आवश्यक था, क्योंकि पूजा में रक्त की आवश्यकता होती है, भोलानाथजी अँगुलियों से दबा-दबा कर बड़े प्रयत्न से एक बूँद रक्त नहीं निकाल सके।

दीपावली की कालीपूजा का इतिहास—कार्तिक, १९८२ वि०

भावावस्था में माँ की नाना प्रकार की अवस्थाएँ होती थीं। बहुधा ऐसा होता कि माँ टहल रही हैं, बातें कर रही हैं, पर हैं अत्यन्त अन्यमनस्क। यद्यपि हाथ का काम सब बिलकुल ठीक ही करतीं तथापि अधिक समय इस प्रकार

का अन्यमनस्कता का भाव रहता, खड़ी हैं प्रतीत होता मानो कहीं चली गई हैं। माँ का ऐसा भाव देख कर भोलानाथजी के बहनोई कालीप्रसन्न कुशारीजी कहते— "देखें, आप बातें करते-करते कहाँ चली जाती हैं बता सकती हैं ? साफ मालूम होता है कि आप यहाँ नहीं थीं। किस तरह का भाव हुआ बतलावें तो ?" माँ जरा मुसकरा कर कहतीं, "जिसने चीनी नहीं खाई है उसे क्या यथार्थरूप में समझाया जा सकता है कि चीनी कैसी मीठी है ?" माँ तब विशेष बातें न करतीं, भाव में विभोर रहतीं। किसी-किसी समय अधिक चटपटा भाव दिखाई देता—किसी-किसी समय खूब बातें करतीं। किन्तु हम लोगों के चुप होते ही माँ स्थिर हो जातीं। सदा ही बातें कहला-कहला कर माँ का बोलना जारी रखना पड़ता। माँ भी हँस कर कहतीं, "मशीन और क्या है ? तुम लोग जितना चला लो चलती है फिर बन्द हो जाती है।" अधिकांश समय पड़ी रहतीं। कभी भोजन करने बैठतीं तो थाली में ही लुढ़क पड़तीं—एकदम स्तब्ध हो जातीं। पाखाना जाने का भी स्मरण करा देना पड़ता। फिर संभवतः यह भूल जातीं कि किसलिए आई हूँ, वहीं पर जम कर बैठ जातीं। मैं बहुधा साथ-साथ रहती, अवस्था की ओर ध्यान रखती। इसलिए बहुत देर होने पर यदि न लौटतीं तो भीतर चली जाती। देखती कि जम कर बैठी हैं। धक्का देकर पुकारने पर चौंक कर मुसकराती हुई उठतीं और कहतीं, "मैं भूल ही गई थी।" उसके बाद मैं उठा लाती। सदा ही शरीर के लिए एक प्रकार का भय लगा रहता। दिन पर दिन यह अवस्था बढ़ने लगी। भोलानाथजी अकेले आदमी कितना देखें।

इसीलिए मैं अधिकांश समय वहीं बिताने लगी। किसी दिन कहतीं, "देख, मुझे अग्नि और जल का भेद ज्ञान ठीक-ठीक नहीं रहता है, यदि तुम लोग देखभाल रख सकोगे तो शरीर रहेगा, अन्यथा नष्ट हो जायगा।" सचमुच किसी-किसी दिन जल में गिर जातीं। और कभी-कभी ऐसा होता कि बैठी हैं चट उठ कर शाहबाग के भीतर ही भीतर चारों ओर घूम आईं। बीच-बीच में ऐसा प्रतीत होता कि मानो किसी के साथ बातें करती हों। यदि मैं साथ रहती तो सुनती कि मानो किसी के साथ बातें कर रही हैं।

किसी-किसी दिन भोग के समय बिलकुल भी कुछ मुँह में लेना नहीं चाहतीं—फिर किसी-किसी दिन ऐसी अन्यमनस्क रहतीं कि जो कुछ भी मुँह में डाल देती, खा जातीं अन्य ओर देखतीं और नहीं खाऊँगी यह नहीं कहतीं। मैं सुविधा पाकर सम्भवतः दिये ही जाती, दो-तीन व्यक्तियों का आहार खा डालतीं, फिर भी कुछ नहीं कहतीं, मुँह में लेती जातीं। अन्त में भयभीत होकर मैं जब खिलाना बन्द कर देती तब ध्यान जाता, चौंकने के समान निहार कर कहतीं, "क्या और नहीं देगी ? तुम लोगों का खाना समाप्त हो गया है क्या ?" मैंने किन्हें खिलाया, उन्होंने क्या खाया मानो बिलकुल ही खयाल नहीं आता। एक दिन इसी अवस्था में खा रही थीं, मैंने भी ध्यान न देकर इलिश मछली का सिर मुँह में दिया, मैंने सोचा चबा कर फेंक देंगी। थोड़ी देर बार रोहू मछली का सिर भी दिया, चबा कर फेंका या नहीं इसपर मैंने भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि अनेक बार भली-भाँति चबाकर फेंकते मैंने

देखा था। कुछ देर बाद मैं खिलाती जा रही थी। पिताजी सहसा देखकर कह उठे, "काँटा चबा कर फेंका या नहीं ?" मैंने देखा तो कुछ भी फेंका न था, ऐसा भयंकर काँटा खा डाला। माँ भी चौकने के समान ताक कर बोलीं, "मैं क्या जानती हूँ ? तू खाने को कहती है, खा रही हूँ। जिस समय ग्रहण करती हूँ उस समय सभी कुछ ग्रहण करती हूँ बीच-बीच में त्याग करना होगा, यह तो तू कहती नहीं है। मैं सदा क्या त्यागना होगा क्या ग्रहण करना होगा समझती नहीं हूँ। स्वाद का भेद कुछ पहचानती नहीं हूँ, सब कुछ एक सा प्रतीत होता है—मैं क्या करूँ ?" स्वयं ध्यान देकर मैंने काँटा फेंकवा नहीं दिया यह सोच कर मुझे अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। मेरे मन में विचार आया कि हम लोग सेवा करने के अधिकारी ही नहीं हैं। शरीर की अवस्था भी ऐसी चलती कि हम लोग सदा ही सशङ्क रहते कि आज न जाने शाहबाग जाकर क्या अवस्था देखते हैं। स्वाभाविक अवस्था देखने पर निश्चिन्त होते।

सुनने में आया कि बाजितपुर में रहते ही माँ ने एक दिन अरब देश के दो फकीरों के सूक्ष्म शरीर देखे थे।

बाजितपुर में अरब देश के फकीरों के दर्शन

उनमें एक गुरु था और दूसरा था शिष्य। माँ ने कहा, "इतने स्पष्टरूप से देखा कि यदि मैं अङ्कित करना जानती तो अङ्कित करके दिखा देती।" एक दिन शाहबाग के निकट सिक्खों के अखाड़े में जाकर एक चित्र में एक सफेद दाढ़ी वाले शुभ्रकेशधारी सौम्यमूर्ति वृद्ध का चित्र देखकर माँ ने कहा था, "अरब देश के फकीर का भी चेहरा कई

अंशों में इसी तरह का देखा था ।" उसके बाद शाहबाग आकर माँ को दो कबरें दिखाई दीं, माँ ने सुना कि ये अरब देश के दो फकीरों की कबरें हैं, एक गुरु की है और दूसरी शिष्य की । शाहबाग में भी माँ ने अकेले-अकेले घूमते-घूमते फिर एक बार उन्हीं फकीरों को देखा था । माँ ने कहा, "अरब देश कहाँ है अथवा अरब नाम का कोई देश है यह मैं कुछ नहीं जानती थी, किन्तु इस प्रकार भीतर से ही सब प्रकट हुआ था ।"

पूर्व अवस्था का विवरण

एक दिन मैं दोपहर में बैठी थीं—पहले जो आसन आदि हो जाते थे, वह चर्चा चली । माँ ने कहा "ये जो आसन आदि होते, मैं इच्छा करके कुछ भी करती न थी, यहाँ तक कि हाथ से पकड़ कर भी कुछ कर न सकती थी । मैं देखती कि शरीर के मुड़ने से अपने आप ही । विभिन्न प्रकार के आसन हो जा रहे हैं । यहाँ तक कि प्रतिदिन कितने ही प्रकार के आसन हो जाते । एक दिन संभवतः एक आसन हुआ पीछे फिर जब वही आसन होने लगा, मैंने सोचा कि देखूँ तो किस तरह होता है । मैंने हाथ से पकड़ कर थोड़ा ठीक कर दिया । उससे पैर पर झटका लग गया, मैं चोट खा गई । अभी तक उस जगह पर कैसा विचित्र मालूम होता है ।" आगे माँ ने कहा—"उस समय तो जानती न थी कि आसन क्या हैं ? कितने प्रकार के आसन हैं, या आसनों के नाम ही क्या हैं, यह तब तक मुझे बाहर से विदित न था । किन्तु तरह-तरह के आसन हो जा रहे थे । उसके बाद क्या हुआ यह भीतर से ही [illegible] साफ सुन रही थी और

समझ रही थी ।" शरीर में भी इस प्रकार उलट-पलट होकर आसन हो जाते कि मालूम पड़ता शरीर में हड्डी नहीं है केवल मांस है, इसीलिए इस तरह मुड़ाया-घुमाया जा सकता है । किस तरह गोल-मटोल हो जाता था, सिर मुड़ कर एकदम पीठ के बीच में सट जाता था । हाथ-पैर इस प्रकार मुड़ जाते थे कि देख कर अवाक् होना पड़ता था । माँ कहतीं, "देख दरवाजे के कब्जों में यदि तेल दिया जाय तो उन्हें घुमाने फिराने में तनिक भी जोर लगाना नहीं पड़ता और यदि कब्जों पर मोरचा लगा हो तो थोड़ा भी घुमाना हो तो कष्ट होता है और घुमाया भी नहीं जा सकता—इस शरीर के जोड़ों में वैसे ही तेल दिया जाय तो यह सब ओर अपने आप मुड़ जाता है । और भोग-विलास में जीवन-यापन कर यदि कभी आसन किया जाय तो महा कष्ट होता है, किसी प्रकार भी हाथ-पैर ठीक नहीं किये जाते, मालूम होता कि मानो मोरचा लग गया है ।" बाल्यावस्था का वृत्तान्त कहते-कहते माँ ने कहा, "एक बार माँ मुझे गोद में लेकर कीर्तन सुनने गईं—मेरी अवस्था उस समय लगभग तीन वर्ष की होगी । कीर्तन सुनने से इस समय जैसा भाव हो जाता है उस समय भी ठीक वैसा ही हो जाता था । किन्तु माँ को मालूम पड़ा कि यह नींद में ऊँघ रही है, इस कारण मुझे धक्का देकर वे जगाने लगीं । किन्तु मैं उस समय कुछ न कह सकी । यदि कहती भी तो समझता कौन ? मालूम होता है तब समय नहीं हुआ था । इस समय वही बात तुम लोगों से कह सक रही हूँ ।"

बहुत सी बातें समझ में ही नहीं आती थीं । जब से

शरीर प्रकट हुआ तभी से माँ को पूर्ण ज्ञान था, किन्तु जिस समय जिसकी आवश्यकता हुई, उपयुक्त समय में ही वह धीरे-धीरे प्रकट हुआ और हो रहा है। जब विवाह के बाद माँ जेठजी के समीप रहती थीं उस बहू-अवस्था की बातें माँ कहती हैं—"देख, शरीर एक बार लड़की बना, फिर बहू के रूप में परिणत हुआ, जिस समय जो करना था वह शरीर से हो गया। अब यह अवस्था आई है। इसके बाद फिर क्या हो कौन जाने ? बहू बनी, जेठजी ने कभी मुँह नहीं देखा, पर सम्पूर्ण सेवाएँ इस शरीर द्वारा हो गईं। वे मेरे ऊपर बहुत स्नेह रखते।"

भावावस्था में सिद्धेश्वरी में गृह निर्माण का आदेश—फाल्गुन १९८२ वि०

एक दिन फाल्गुन के महीने में कीर्तन के अवसर पर माँ की भावावस्था हुई। कुछ देर बाद कीर्तन समाप्त हुआ। माँ कुछ स्वस्थ हुईं, उस समय भी अस्तव्यस्त वेश में बैठी थीं। इस बीच में भोलानाथजी की ओर दृष्टि कर बोलीं, "सिद्धेश्वरी के इस स्थान में जो एक कमरे की बात कही गई थी।" बात उस समय भी स्पष्ट नहीं हुई—इतने में पिताजी ने एक भक्त के द्वारा पुछवाया, "कमरा किस तरह का होगा।" माँ ने कहा, "अच्छा, कल बात होगी।" दूसरे दिन पिताजी ने स्वयं ही कमरे की बात पूछी। माँ ने भी आविष्ट भाव से बैठ कर उत्तर दिया, कितना बड़ा और कितना ऊँचा होगा, सब बतला दिया। किन्तु स्वाभाविक अवस्था न थी। वेदी के ऊपर कमरा बनाने की बात हो रही थी। माँ ने कहा, यह जो बाँस... घेरा डाला गया है वह

जिस तरह हटाना न पड़े । उसके बाहर से ही दीवार उठानी होगी । पक्का कमरा बनाने का निषेध कर दिया, बोलीं, "मैं मिट्टी के कमरे में ही रहूँगी ।" वेदी की बात पूछी गई कि उसके ऊपर क्या मिट्टी डाली जायगी ? उसके उत्तर में माँ ने कहा, "काम आरंभ तो हो, उस समय जो होने को होगा, हो जायगा, इस समय कुछ प्रकट नहीं हो रहा है ।" भोलानाथजी से पिताजी ने निवेदन किया । भोलानाथजी ने जा कर माँ से पूछा, "उस कमरे को बनाने के लिए शशांक बाबू प्रस्तुत हैं, तुम्हारी अनुमति चाहते हैं ।" माँ ने कहा, "तुम बनाओ, जो ही बनावे, होना चाहिये ।" पिताजी ने उक्त कमरा बनाना आरंभ किया, उक्त वेदी के साथ उस जगह एक जमीन ली गई । माँ ने कहा, "सात दिनों के अन्दर कमरा बनना चाहिये ।" इसके बीच में एक दिन वेदी की बात भी कही । आँखें मूँद कर बोलीं, "वेदी के ऊपर मिट्टी नहीं पड़ेगी । चारों ओर से दीवार उठेगी, वह जगह गड्ढे की तरह ही रहेगी ।" वेदी चौकोर थी । संभवतः वेदी की माप चारों ओर सवा हाथ थी । सात ही दिनों में अत्यन्त त्वरा के साथ कमरा बनाया गया । संवत् १९८२ के फाल्गुन महीने में पहला कमरा बना । माँ ने सातवें दिन उस कमरे में जाकर सबसे कीर्तन करने को कहा । वही हुआ । निर्दिष्ट दिन माँ और भोलानाथजी को ले जाकर सबने उस कमरे में कीर्तन किया । रातभर कीर्तन हुआ, भोर में माँ शाहबाग लौट आईं । माँ उक्त कमरे में जाकर उस गड्ढे के बीच में वेदी पर ही बैठतीं । इतनी सी जगह में ही पैर समेट कर सो भी रहतीं । बहुत सा समय इस

तरह व्यतीत होता, भक्त लोग चारों ओर बैठते। इसके बाद माँ कभी-कभी तो उस कमरे में दो-एक दिन भी रह जाती थीं। किसी-किसी दिन कुछ ही क्षण रह कर चली आती थीं।

कुछ दिनों के बाद सुनने में आया कि उस कमरे में माँ ने श्रीवासन्ती पूजा करने को कहा है। बहुत दिन पहले

पूर्वोक्त कमरे में वासन्ती पूजा का अनुष्ठान—चैत्र, सं० १९८२ वि०

भोलानाथजी को वासन्ती पूजा करने की प्रबल इच्छा हुई थी। इसीलिए माँ इस समय उसकी पूर्ति कराने वाली थीं। भक्तजन बड़े आनन्द से पूजा का आयोजन करने लगे। भोलानाथजी के आत्मीय बन्धु-बान्धवों को खबर दी गई। इसी बीच मेरा छोटा भाई हरिदास ढाका आया। वह कलकत्ते में बी० ए० में पढ़ता था। उसने सुना था कि ये (हम) लोग किसी एक माताजी के भक्त बन गये हैं। इस बीच में माँ के आदेश से मेरा चिट्ठी-पत्री लिखना बन्द हो गया था। उसे इससे बड़ा दुःख हुआ था। उसकी जननी लगभग डेढ़ वर्ष हुआ मर गई थीं। हम लोगों की यह अवस्था थी, इसलिए वह ढाका आकर महादुःख प्रकट करने लगा। हम लोगों ने कुछ नहीं कहा। क्योंकि यह समझाने का विषय नहीं है। एक दिन वासन्ती पूजा के उपलक्ष में माँ स्वयं जाकर चटगाँव से बुआजी को (कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री को) बुला लाई थीं। इन बुआजी का चेहरा देखने में हमारी जननी के चेहरे से बहुत कुछ मिलता-जुलता था। माँ उन्हें साथ लेकर हमारे [illegible] के मकान [illegible] घूमने गईं। माँ का क्या

उद्देश्य था यह माँ ही जानें। हरिदास तो माँ आई हैं यह सुनते ही दूसरे कमरे में जा कर बैठ गया। उसने सुना था हम लोग घर में अधिक नहीं रहते हैं। इन माँ के समीप ही रहते हैं। इसलिए माँ के ऊपर उसको बड़ा गुस्सा आया था। माँ, भोलानाथजी बुआजी—सब एक कमरे में बैठे थे। पिताजी ने हरिदास को पुकार कर माँ को प्रणाम करने को कहा। वह क्या करे, पिताजी के कहने पर उसने आकर माँ को प्रणाम किया। माँ ने मुसकरा कर बुआजी से कहा, "यह देखिये खुकुनी का छोटा भाई है।" बुआजी स्वभावतः खूब हँसमुख और धर्मप्राण महिला हैं। उन्होंने हरिदास को देखते ही हाथ बढ़ाकर गोद में ले लिया, हरिदास भी बहुत कुछ अंशों में अपनी माँ का-सा चेहरा देख कर उनकी गोद के समीप निःसंकोच बैठ गया। माँ ने देखकर जरा हँस दिया, किन्तु कहा कुछ नहीं। कुछ देर बाद वे लोग शाहबाग लौट गये। मैं और पिताजी साथ गये। हरिदास भी गाड़ी के पावदान पर खड़ा-खड़ा कुछ देर तक साथ-साथ चला। फिर लौट आया। वहाँ से लौटने में हमें बहुत रात हो गई। लौटने पर हमने सुना कि भाई मुँह से माँ के लिए कुछ न कहने पर भी उन्हें देखकर कैसा हो गया है। मकान में कई आत्मीय स्त्रियाँ थीं। हम लोगों के मकान में आते ही उन्होंने कहा, "नन्दू (हरिदास का पुकारने का नाम) अभी तक सोया नहीं है, अबतक माँ की ही सब कथाएँ सुनता रहा।" ऊपर जाते ही वह बिछौने से उठकर हमारे निकट आया। उसके मुख का भाव बदल गया था। हरिदास खूब गम्भीरप्रकृति [illegible] है, किन्तु आज कैसा हो

गया। कह रहा है—"ये साधारण माँ नहीं हैं, मैं दर्शन करते ही न जाने कैसा हो गया हूँ। मन में आ रहा है अभी फिर आऊँ। माँ की सब बातें कहो मैं सुनता हूँ।" दूसरे दिन हम लोगों के घर में माँ के भोग की बात थी। नन्दू ने कहा, "मैं ही माँ को लेने जाऊँगा।" उसका ऐसा भाव देखकर हमें महा आनन्द हुआ। बैठे-बैठे माँ की कहानियाँ सुनाते-सुनाते प्रायः रात्रि खुल गई। भोर होते ही वह उठ कर हाथ-मुँह धो कर माँ को लेने चला गया। उसके बाद वह माँ के निकट अधिक समय रहने लगा। माँ के आदेश से काम-काज भी कुछ करने लगा। पढ़ना-लिखना प्रायः बन्द कर दिया। माँ के पीछे-पीछे ही वह घूमता। इस घटना को लिखने का उद्देश्य यह है कि माँ की अद्भुत आकर्षण शक्ति पहले से ही प्रकट हो चुकी थी एवं हर एक व्यक्ति के अन्दर विशेषरूप से काम करती थी। अनाथ का वृत्तान्त लिखा जा चुका है। नन्दू की अवस्था भी देखी। आजकल के शिक्षित अल्पवयस्क लड़कों का भी किस प्रकार से मतपरिवर्तन हो गया। नन्दू तो गुस्से में आकर तथा हम वहाँ जाते हैं यह सुनकर अत्यन्त दुःखी हो कर आया था। किन्तु एक बार के दर्शन से ही यह अवस्था हुई।

नानीजी और नानाजी आये। नानीजी अत्यन्त शान्त स्त्री हैं, मालूम होता है क्रोध नाम की वस्तु ही उनमें नहीं है। नानाजी गाना खूब गा सकते हैं। वृद्ध को बैठा कर सब गाना सुन रहे थे। भोलानाथजी के बड़े बहनोई सीताराम कुशारीजी आये, उनकी स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू और नन्हीं पोती—

सब आये । शाहबाग में खूब आनन्द चल रहा था । राजशाही के प्रोफेसर श्रीयुत् अटलबिहारी भट्टाचार्य सस्त्रीक आये । वे गतवर्ष की गर्मी की छुट्टियों में ढाका प्राणगोपाल बाबू के घर आकर माँ के प्रथम दर्शन और पूजा कर गये थे । तदनन्तर पूजा की छुट्टियों में भी आये थे । इस समय स्त्री को लेकर आये । इनके सन्तान आदि नहीं है । ये बड़े ही सरल और धार्मिक पुरुष हैं । चेहरा देखते ही भीतर की स्वच्छता फूट पड़ती है । सुनने में आया कि इन्होंने भी एक दिन माँ के चरणों में फूल अर्पित कर डाले थे । बाल्यावस्था से ही ये मांस-मछली नहीं खाते हैं । माँ के गृहस्थ-जीवन का जो लक्ष्मी-व्रत का कलश था, माँ ने उसे अटल दादा की स्त्री को दे डाला था । और भी बहुत से आत्मीय तथा भक्त आये थे । पूजा का आयोजन खूब समारोह के साथ ही हो रहा था । यह जो सिद्धेश्वरी में माँ की वेदी के ऊपर कमरा बना उसके नीचे बहुत बड़ा बाँबी का टीला था । घर बनने के बाद भी कमरे के अन्दर दीमक मिट्टी का ढेर लगा देते थे । माँ के आदेशानुसार वासन्ती मूर्ति बनाते समय वह दीमकों की मिट्टी उसमें मिला दी गई । हम लोगों ने सिद्धेश्वरी के कमरे में माँ और भोलानाथजी को ले जाकर पूछा, "मूर्ति की माप क्या होगी ?" माँ ने भोलानाथजी से एक सींक से अपने शरीर की नाप लेने को कहा । वही हुआ । माँ के शरीर की माप से ही वासन्ती प्रतिमा तैयार कराई गई । पूजा करने के लिए विक्रमपुर से पुरोहितजी आये । चण्डीपाठ की भी व्यवस्था की गई थी । इधर भोग का भी प्रबन्ध हो रहा था । श्रीयुत योगेश बन्द्योपाध्यायजी

भण्डार घर मेंव रहें। मथुर वसु लोगों को काम में लगा रहे थे। प्रस्ताव हुआ कि तीन दिनों में एक दिन माँ के पूर्व नियमानुसार केवल मूँग की दाल, आलुओं के साथ पके भात और नारियल के भूँजे का भोग होगा। ज़ितने लोग इन तीन दिनों में उपस्थित होंगे, उन्हें प्रसाद देना होगा, किन्तु एक बार जो कुछ पका कर भोग प्रस्तुत हो जायगा फिर वह दूसरी बार नहीं पकाया जा सकेगा, ऐसा ही माँ का आदेश था। ऐसा नियम होने पर वस्तुओं का अन्दाज कौन करे ? बुआजी ने माँ से कहा—"तुम्हीं अपनी वस्तुओं का अन्दाज कर के दे जाओ। क्योंकि एक बार से अधिक पाक़ नहीं हो सकेगा और जितने लोग आवेंगे, सभी को प्रसाद देना होगा।" वही हुआ। दोनों बुआ और राजेन्द्र कुशारी की स्त्री आदि भोग बनाने वाली थीं। षष्ठी के दिन से सभी सिद्धेश्वरी चले गये। वहाँ उस समय कई नये-नये घर बन गये थे, जंगल तब बहुत कुछ साफ हो गया था—उन्हीं सब मकानों में भक्तजनों को रहने के लिए स्थान दिया गया। पुरुष कालीमाता के मन्दिर के बरामदे में रहते। उस समय कालीमन्दिर का बरामदा आदि भी जीर्ण-शीर्ण था, पीछे मन्दिर में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। माँ जिस समय सात दिन मन्दिर की छोटी कोठरी में रही थीं, उस समय कोठरी में बाहर की ओर कोई दरवाजा न था, अब दरवाजा लग जाने के कारण कमरे में प्रकाश हो गया है। षष्ठी के दिन 'अधिवास' आदि प्रारम्भिक कृत्य हो गये। सप्तमी को पूजा आरंभ हुई। माँ अत्यन्त भोर में ही एक बार कालीमन्दिर के पोखरे में स्नान कर आईं और भण्डार घर की ओर जा

कर क्या-क्या चीज कितनी बनेगी यह बतला आईं। तदुपरान्त प्रतिमा के सामने उस वेदी के ऊपर गड्ढे में बैठी रहीं—दिनभर, रातभर फिर उठी नहीं। थोड़ा सा दूध सन्ध्या के पहले या पीछे ले लिया। पुरोहितजी के पूजा करने के पहले भोलानाथजी ने माँ से पूछा, "किस बीजमन्त्र से पूजा होगी ?' माँ थोड़ी देर चुप रह कर बोलीं, "बीज कुछ उच्चारण न करें, पूजा सब विधि के अनुसार ही करें। जहाँ बीज के उच्चारण की आवश्यकता हो वहाँ प्रत्येक बार जरा चुप रह कर पूजा किये जायँ।" माँ के सब काम असाधारण होते हैं। उन्होंने जो कह दिया वही हुआ। माँ पुरोहितजी के अत्यन्त निकट ही गड्ढे में बैठी थीं, घूँघुट से मुँह ढँका था। माँ के हाथों में सदा ही कोई न कोई मुद्रा रहती है, उस समय भी वह थी। पूजा हो गई, भोग भी लग गया, सबने प्रसाद ग्रहण किया। रात्रि में माँ उस गड्ढे में कभी बैठी रहतीं, कभी पैर समेट कर लेटी रहतीं। उक्त गड्ढे की माप यज्ञकुण्ड की-सी है। माँ उसमें भली-भाँति लेटी रहतीं। यदि शरीर में संकुचित होने की क्रिया न हो तो उक्त गड्ढे में सोये रहना कदापि संभव नहीं है। विशेषकर माँ का शरीर उस समय अधिक लम्बा और मोटा था। उक्त कमरे के एक ओर भोलानाथजी लेटते। मैं भी माँ के गड्ढे के निकट ही सोई रहती। दूसरा कोई भी उस कमरे में नहीं रहता था। दूसरे दिन फिर सभी वस्तुओं का भोग होने वाला था। मथुर बसु ने नौकरों के द्वारा रात्रि में ही सब साफ करा कर भोग का प्रबन्ध कर दिया था। कीर्तन बीच-बीच में चल रहा था। दूसरे दिन महाष्टमी

थी । आज भी पूजा आदि हो चुकी, भोग लाने में तनिक विलम्ब हो रहा था, माँ रोते-रोते व्याकुल हो उठीं । इस हँसने-रोने का मतलब हम कुछ न समझते । कभी रोते-रोते व्याकुल हो जातीं तो कभी हँसते-हँसते समाधिस्थ हो जातीं । कभी खिलखिला कर हँसतीं । भोग जल्दी-जल्दी ले गये । भोग लग गया, सब लोग प्रसाद पाने बैठे । जितने लोग आ रहे थे सभी प्रसाद पा रहे थे । इस तरह समय प्रायः समाप्त होने आया । रसोईघर की सामग्री भी प्रायः समाप्त हो चली । बड़े-बड़े बर्तन सब खाली करके बाहर फेंके जा रहे थे । चिन्ताहरण समाद्दार (पुलिस सब इन्स्पेक्टर) रसोईघर की सब वस्तुएँ उठा कर रख रहे थे । केवल अपने कतिपय लोगों के लायक ही सामान शेष रह गया था । उसे रख कर उन्होंने सब बर्तन बाहर कर दिये । सन्ध्या के थोड़ी देर पहले एक दल स्त्रियों और पुरुषों का प्रतिमा के दर्शन करने के लिए आया, किन्तु प्रसाद कुछ विशेष नहीं था । "एक बार से अधिक रसोई नहीं बन सकेगी" इस बात का किसी को स्मरण नहीं रहा । भोलानाथ तथा अन्य सबने घबरा कर भात चढ़ा देने को कहा । उसी दम चार हाँडियों में भात चढ़ा दिया गया । माँ गड्ढे में निश्चल भाव से प्रतिमा की ओर मुख करके बैठी थीं । मैंने जाकर माँ से कहा, "माँ, प्रसाद कुछ विशेष नहीं है, बहुत लोग आये हैं ।" माँ ने बिना मुँह फेरे ही कहा, "जो है उसी को दे देने को कहो, फिर तुम लोगों का जो होगा, देखा जायगा, पर पुनः रसोई न बने ।" उस समय याद आया कि पुनः पाक करने का निषे[illegible] । मेरे जाकर कहते ही

चिन्ताहरण बाबू ने जो सब बर्तन बाहर रखे थे उनमें हाथ डाल कर कुछ-कुछ प्रसाद इकट्ठा किया। जो पहले से बचा था, सब मिला कर उसी समय उक्त दाल को खाने के लिए बैठा कर उक्त सब जिनिष से ही खिला दिया गया। आश्चर्य की बात है कि वे भी पेट भर कर खा गये और हम सब लोगों के लिए भी बच गया। चार हाँडी भात उतार कर रख दिया गया, उसमें से रत्ती भर भी खर्च नहीं हुआ। दूसरे दिन वह बाँट दिया गया।

सप्तमी के दिन सन्ध्या के बाद ही भीषण आँधी आई। घर गिरने की नौबत आ गई। रसोई की झोपड़ी न मालूम उड़ कर कहाँ चली गई। माँ आँधी के साथ ही साथ उठ खड़ी होकर झूम रही थीं और महा आनन्द से हँस रही थीं। हाथों से ताली बजा रही थीं। इधर क्रमशः आँधी का वेग बढ़ने लगा। भोलानाथजी अत्यन्त घबरा उठे, वे भी मन ही मन जानते थे कि माँ यदि चाहें तो सब कुछ कर सकती हैं। इसी से उन्होंने माँ से कहा, "यह फिर क्या आरंभ हुआ, प्रतिमा को कुछ नुकसान न पहुँचे।" अत्यन्त घबड़ा कर उन्होंने यह बात कही थी। माँ वायु के वेग के साथ ही साथ मानो मचल उठीं। बहुत से लोगों ने आकर पूजा के कमरे में शरण ली। कमरा भर गया। हम लोगों ने उस समय नामसंकीर्तन आरंभ कर दिया। माँ तब कीर्तन के समय बीच-बीच में अत्यन्त मधुर स्वर में "हरि बोल" कहती थीं, इसलिए उन दिनों "हरि बोल" कह कर ही कीर्तन होता था। बाद को ज्योतिष दादा ने 'माँ' 'माँ' कीर्तन आरंभ कराया। पीछे देखने में आया कि पहले एक

दिन रात्रि में माँ ने भी अपने आप ही 'माँ' 'माँ' कीर्तन किया था, किन्तु ज्योतिष दादा को उसका पता न था। उन्होंने "मातृ नाम ही हो" यह सोच कर इस प्रकार का कीर्तन आरंभ किया था। आँधी के वेग के साथ ही साथ कीर्तन भी खूब जोर से चलने लगा। पिताजी केवल हाथ जोड़ कर माँ की ओर निहार कर 'माँ' 'माँ' पुकारते थे। वे कीर्तन में योग नहीं देते थे, चुप बैठे रहते थे। माँ का भाव होने पर ही हाथ जोड़ कर धीरे-धीरे केवल माँ-माँ पुकारते थे। उस दिन भी वैसा ही कर रहे थे। इतने में माँ उस आँधी-वृष्टि में ही बाहर चली गईं। साथ ही साथ अन्यान्य सभी लोग बाहर निकल पड़े। माँ विविध स्थानों में घूम-घूम कर अन्त में काली माँ के मन्दिर में जा प्रविष्ट हुईं। वहाँ पर कुछ देर रह कर बाहर आईं। इस बार बाहर निकल कर निकट स्थित राजमोहन बाबू के मकान में एक छोटी कोठरी में प्रविष्ट हो कर भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। उस मकान में महिलाओं के रहने के लिए स्थान का प्रबन्ध किया गया था। इस पूजा के सिलसिले में भोलानाथजी के बड़े भाई रेवती बाबू की स्त्री, उनकी लड़की लावण्य और जामाता आदि सब आये थे। इस लड़की के जन्म के समय प्रसूति-गृह में माँ ही थीं। लड़की बहुत ही सीधी-सादी है। माँ के कमरे में प्रविष्ट होते ही पिताजी पूजा के कमरे की ओर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उस कमरे के पास ही कीचड़-मिट्टी में लावण्य लोट-पोट ले रही है। सारा शरीर कीचड़ से ढँक गया था। केवल 'हरि बोल' शब्द सुनाई दे रहा था। पिताजी ने जा कर उसे

उठाया—उसकी प्रसन्न मूर्ति, कोई खयाल नहीं, केवल हँसते-हँसते हरिबोल कह रही थी। सभी ने उसके समीप जाकर वह अवस्था देखी। भोलानाथजी दौड़े, जाकर माँ को बुला लाये। माँ ने कीचड़ भली-भाँति धोकर कपड़े बदला कर लड़की को राजमोहन बाबू के मकान में ही ले जाने को कहा, माँ भी वहाँ गईं। लड़की की अद्भुत अवस्था थी। बाह्य ज्ञान कुछ न था, केवल नाम के रस में ही मानो डूबी हो। उसकी अवस्था देख कर उसकी माँ और पति बहुत घबड़ाये। उसकी माता माँ की शरण में गईं, "शीघ्र ही इस भाव को हटा दो, इस तरह की होने से गृहस्थी किस प्रकार चलेगी।" लड़की से कह रही थीं "अब मैं तुझे ढाका की चाची के निकट कभी नहीं आने दूँगी, यहाँ आकर ही यह अवस्था हुई है।" बहुत क्रुद्ध हो रही थीं। लड़की उक्त आविष्ट दशा में ही माँ की ओर निहार कर कह रही थी, "देखिये तो चाचाजी, क्या मैं पागल हुई हूँ। माँ ऐसा क्यों कह रही हैं। क्या मधुर नाम है, आप ही ने तो सिखाया है, इस नाम के सिवा और क्या है ?" माँ जिस समय भावावस्था में गड्ढे में उठ कर खड़ी हुईं, उसी समय लड़की भी 'चाचीजी को क्या हुआ कह कर माँ के समीप जाकर माँ से चिपट गई। माँ को छूते ही वह कैसी हो पड़ी। उसके अनन्तर सब लोगों के कमरे से उठ कर माँ के साथ चले जाने के कारण साथ ही साथ लड़की भी भावावस्था में कमरे से लुढ़कते-लुढ़कते नीचे गिर गई। कीर्तन के कोलाहल में किसी ने उसे देखा नहीं। माँ लड़की को सा[illegible]कर एकान्त में एक कमरे में

बैठीं । मैं भी उसी कमरे में थी । माँ ने मुझसे कहा, "देख, इस समय इसकी जो अवस्था है यह बहुत साधनाओं से भी नहीं मिल सकती । किन्तु क्या करूँ ? इसकी माँ आदि समझ नहीं रहे हैं । मैं क्या करूँ ?" यह कहकर लड़की के शरीर के ऊपर कुछ क्रिया करने लगीं, लड़की कुछ क्षणों के लिए स्वाभाविक स्थिति में आकर फिर कैसी हो रही थी । माँ ने कहा, "देखो, जैसे अधिक अग्नि में एक ओर जल डालने पर वह दूसरे छोर पर सुलग उठती है यह भी वैसा ही हो रहा है ।" धीरे-धीरे लड़की कुछ स्वस्थ हुई । किन्तु लगभग तीन दिनों तक वह उसी अलौकिक भाव में विभोर रही । नवमी-पूजा के दिन आलू के साथ पका भात, मूँग की दाल और नारियल के भूँजे का भोग लगा । लड़की पूजा के समीप जा बैठ कर प्रतिमा के मुख की ओर देख-देख कर जरा हँसते-हँसते मुझसे बोली, "दीदी, देखिये, प्रतिमा का मुख ठीक चाचीजी के मुख की तरह दीख रहा है ।" माँ ने मुझसे भी कहा था, "सदा लावण्य के साथ-साथ रहना इस प्रकार के भाव का प्रसंग आते ही उसे रोकना ।" भाभीजी तथा दामाद के कहने पर भोलानाथजी ने भी माँ से प्रार्थना की थी, "जिस प्रकार लावण्य का यह भाव स्थायी न रहे वैसा कर दो ।" इसलिए माँ ने कहा, "मेरा क्या ? उसके आत्मीय इस भाव को निवृत्त करने के लिए कह रहे हैं । वही हो । जो होने वाला है, होगा ।" लड़की के कथन के उत्तर में मैंने कहा, "क्या चाचीजी के दस हाथ हैं ? यह सब क्या कह रही है ।" लड़की ने कहा, 'मैं सच कह रही हूँ । दस हाथ क्या सब

देख सकते हैं। मनुष्यों के साथ मिल-जुल कर रहने के लिए दस हाथ छिपा कर दो ही हाथ दिखा रही हैं।" यह कह कर प्रतिमा की और माँ की ओर बार-बार देखने लगी। माँ की यह अवस्था होने के बाद उस लड़की ने फिर माँ को देखा भी नहीं। आज आविष्टावस्था में ही ये सब बातें कह रही थी। नवमी की पूजा विधिपूर्वक हो गई। दशमी के दिन सिद्धेश्वरी के मन्दिर के निकट एक पोखरे में प्रतिमा का विसर्जन किया गया। इस पूजा के अनन्तर भी कई दिनों तक सभी लोग सिद्धेश्वरी में रहे। पूजा के कुछ दिन बाद ही माँ के सहोदर भाई माखन का (यदुनाथ भट्टाचार्य का) उपनयन वहीं हुआ। और एक बात हुई। वह यह कि अष्टमी की पूजा के दिन बुआजी (कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री) ने १०८ जपा के फूलों से और १०८ कमलोंसे माँ की पाद-पूजा की। माँ गड्ढे में ही बैठी रहीं, उन्होंने ऊपर बैठ कर पूजा की। भाभी के प्रति आज उनका देवीभाव जाग्रत् हुआ, इसीलिए इस प्रकार पूजा कर सकीं। दशमी के दिन रात्रि में बुआजी ने माँ को भात खिला दिया। कई दिनों के बाद सब लोग शाहबाग लौट गये।

शाहबाग में एक दिन कीर्तन हो रहा था। आत्मीय बन्धु-बान्धव उस समय भी शाहबाग में ही थे। बूढ़े सीतानाथ कुशारीजी भी कीर्तन कर रहे थे। माँ का भाव हुआ था, लोटपोट ले रही थीं। एकाएक माँ का हाथ वृद्ध के पैर में लग गया। वे ही वृद्ध भोलानाथजी का विवाह करा लाये थे। वे बड़े ही ... गुरु पुरुष थे तथा माँ के प्रति

माँ के प्रति सीतानाथ कुशारीजी का देवी-भाव

देवी की ऐसी श्रद्धा रखते थे। कीर्तनादि के बाद कुशारीजी ने कहा, "मैं चरणधूलि लिये बिना खाऊँगा नहीं, मेरे पैर में माँ का हाथ लग गया है।" वे भोलानाथजी के सबसे बड़े बहनोई थे। माँ पहले तो किसी को भी चरण में हाथ लगाने नहीं देतीं फिर इन वृद्ध को तो पैर छूने के लिए माँ किसी प्रकार भी राजी नहीं हुईं। किन्तु वृद्ध कहने लगे, "मैं विवाह करा कर आपको लाया हूँ, किन्तु आज मेरे निकट आप रमणी की (अर्थात् भोलानाथजी की) स्त्री नहीं हैं। मैं जानता हूँ आप देवी हैं, मैं चरणाधूलि लिये बिना जल-ग्रहण नहीं करूँगा।" अगत्या माँ ने उन्हें चरण-धूलि दी। उस अवसर पर सभी चरण-धूलि लेकर धन्य हुए।

मरणी को आश्रय प्रदान

सब आत्मीय जन बिदा हो गये। सीतानाथ कुशारीजी के एकमात्र पुत्र मङ्गल दादा की बहू के बच्चे बचते न थे। एक बच्चे के कुछ बड़े होने पर दूसरे बच्चे के गर्भ में आते ही पहला बच्चा मर जाता था। इस तरह दो बच्चे मर चुके थे। उस बार एक लड़की गोद में लेकर आई थीं। वह लगभग दो वर्ष की होगी। बहू का फिर गर्भ था। इसलिए रो रही थीं, कि शायद इस बार यह लड़की भी मर जायगी। अन्त में सब लोग मिलकर विचार-विमर्श कर उस बच्ची को माँ के चरणों में चढ़ा गये। लड़की का नाम मरणी है। तब से मरणी माँ के समीप ही रहती है। मटरी बुआ ही उसका लालन-पा[illegible]ने लगीं। भोलानाथजी

उक्त बच्ची को बहुत प्यार करते हैं। माँ के कहीं भी बाहर जाने पर वह कभी साथ-साथ जाती है और कभी मटरी बुआ के पास ही रहती है। सदा हरि-संकीर्तन सुनते-सुनते लड़की भी सुन्दर नाम-कीर्तन करती, माँ ने मरणी को फिर अपने पिताजी के घर जाने नहीं दिया। संयोगवश इसके बाद मरणी के माँ का जो बच्चा हुआ वह मर गया। उसके बाद और दो बच्चे पैदा हुये, जो जीवित हैं।

सब लोग चले गये। शाहबाग में दिन पर दिन आनन्द की धारा बहने लगी और माँ की विविध प्रकार की अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं। माँ के दर्शन करने के लिए अनेकों लोग आ रहे थे। उस समय अन्यान्य घरों में जाकर भी कीर्तन होता था। माँ जाती थीं, भाव खूब होता था। सभी लोग दर्शन करते थे। ज्योतिष दादा एक बार दर्शन कर फिर लगभग एक वर्ष तक नहीं आये। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। बाद को एक दिन वह पुस्तक पढ़ कर माँ को सुनाने के लिए उन्होंने एक आदमी भेजा। माँ ने कहा, जिसने पुस्तक लिखी है उसी को भेज दो।" इस आह्वान पर ज्योतिष दादा फिर आये। इस बार माँ ने उनके साथ खूब बातचीत की। उन्होंने देखा माँ का वधूत्व हट कर मातृत्व विकसित हो रहा है। इसके पश्चात् वे प्रायः ही आते। भीड़ में विशेष रहते नहीं, किन्तु सदा ही माँ की खबर लेते रहते। माँ के चिन्तन में वे इतने मग्न रहते कि कभी-कभी अपने मकान में बैठ कर भी स्पष्टरूप से माँ ने कौन कपड़ा पहना है यह तक देख लेते। वे प्रायः एकान्त में आकर माँ के साथ बहुत-सा समय बिता जाते। वे माँ के एक विशेष कृपाभाज[illegible]क्ति थे। माँ का अभिप्राय भी

वे विशेष रूप से ग्रहण कर सकते। निरञ्जन बाबू ज्योतिष दादा के बड़े मित्र थे। वे दोनों व्यक्ति चटगाँवनिवासी थे। निरञ्जन बाबू के मकान में माँ को ले जाकर कीर्तन आदि हुआ था। टिकाटूली के मकान में अनेकों बार कीर्तन होता था। माँ जातीं। कभी-कभी रात वहीं रह कर भोर में चली आतीं। माँ रात को विशेष सोती न थीं, हम लोगों की भी माँ के समीप रहने पर वही अवस्था होती। सारी रात माँ के साथ जाग कर ही बिता डालते। बहुत-सी रात्रियाँ ऐसे ही बीतीं। माँ के भोजन के विविध प्रकार के नियम होने लगे, कुछ दिन बाद माँ ने कहा, "मुझे जो खिला देगा, उसे रात्रि को फल खा कर रहना होगा।" वैसा ही हुआ। तभी से मैं एक वक्त भोजन करती हूँ।

भोलानाथजी की अस्वस्थता

चिन्ताहरण बाबू की स्त्री ने न जाने क्या स्वप्न देखा, इसलिए वे दीक्षा लेने वाली थीं, इसीलिए माँ और भोलानाथजी को ले गईं। तब भोलानाथजी किसी को भी दीक्षा देते न थे, माँ तो दीक्षा देती ही नहीं हैं। किन्तु उनकी दीक्षा किस प्रकार सम्पन्न हुई, यह हमें ज्ञात नहीं है, किसी की भी बात दूसरे किसी के निकट प्रकट नहीं की जाती। उसी मकान से भोलानाथजी भीषण पेचिश की बीमारी ले आये। माँ ही मल साफ तथा अन्यान्य सेवा आदि करती थीं। दूसरे दिन रात को माँ ने जरा खीरा खिला दिया। उसके बाद वे धीरे-धीरे चंगे होने लगे।

माँ प्रतिदिन बैठकर पहले की बातें कहतीं। एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ [illegible]जी से कह रही थीं, "माँ,

माँ के जन्म और बाल्य-जीवन की बात

मेरे जन्म के तेरहवें दिन अमुक मुझे देखने आये थे न ?'' संभवतः नानीजी को उस बार का स्मरण नहीं रहा, पीछे माँ की बात सुनने के अनन्तर उसका स्मरण हो आया। इस प्रकार की अनेक बातों से प्रतीत होता है कि माँ को सदा ही पूर्ण ज्ञान था। बचपन से ही समाधि सीं लगती। बहुत दूर कीर्तन होता रहता, माँ घर में सोई रहतीं, कहती हैं, "इस शरीर की एक अस्वाभाविक अवस्था हो जाती, किन्तु कमरे में अँधेरा होने के कारण पिता-माता अथवा अन्य कोई देख न पाते। और मेरे भी भीतर ऐसा एक भाव रहता कि कोई देखे नहीं। इसीलिए मालूम होता है गुप्त ही रहती।'' माँ के शरीर के प्रादुर्भाव की किंवदन्ती मैंने सुनी। नानाजी की माँ कसवा के विख्यात कालीमन्दिर में विपिन के एक पुत्र हो ऐसी प्रार्थना करने के लिए जाकर देवी के निकट प्रार्थना कर बैठीं कि विपिन के एक लड़की हो। बुढ़िया की उस प्रार्थना के कुछ दिन बाद ही माँ के शरीर का प्रादुर्भाव हुआ। बचपन से ही माँ खूब हँसमुख थीं। उनकी जो आकर्षिणी शक्ति आज इतनी प्रचुर मात्रा में उद्भूत हुई है, उस शक्ति के प्रभाव से सब लोग माँ के प्रति स्नेह करते थे। यद्यपि माँ ने गरीब के ही घर जन्म लिया था, तथापि पिता-माता के प्रेम से उन्हें विशेष कष्ट प्रतीत नहीं हुआ। माँ के जन्म के बहुत बाद और भी दो बहिनों तथा एक भाई ने जन्म लिया था। उनमें से भी बड़ी बहन लगभग सत्रह वर्ष की अवस्था में मर गई। उसकी बात भी माँ से मैंने सुनी है। वह बहन मरने के समय तक माँ को दीदी दीदी पुकार कर मरी।

उसके जीवन की घटना भी जो मैंने सुनी है उसमें एक विशेषता थी।

मैंने और एक घटना सुनी। हम लोगों के माँ के समीप आने के कुछ पूर्व (बड़े दिनों में) बुआजी (कालीप्रसन्न बाबू की स्त्री) शाहबाग आई थीं। इन्होंने आकर देखा कि माँ कुछ खाती नहीं हैं। उन्हें एक दिन खीर के भोग से माँ को खिलाने की इच्छा हुई। उन्होंने भोलानाथजी से प्रार्थना की, क्योंकि भोलानाथजी के कोई बात कहने पर माँ उसका यथाशक्ति पालन करती हैं। भोलानाथजी जानते थे कि माँ जो भी करती हैं वह कल्याण के लिए ही करती हैं। माँ इच्छा करके कुछ नहीं करती हैं, यह उन्हें ज्ञात ही था, इसलिए वे भी माँ के नियम के विरुद्ध विशेष अनुरोध नहीं करते थे। आज उन्होंने बुआजी के कहने पर माँ से खाने के लिए अनुरोध किया। माँ ने कहा, "उस समय जो हो जाय।" आधे मन दूध की खीर बनी थी। और भी २।४ व्यक्तियों को निमन्त्रण दिया गया था। उन्होंने भी कुछ-कुछ खाया था। भोग लग जाने पर माँ ने बुआजी से कहा, "क्या, खीर खिलाएँगी नहीं।" बुआजी ने एक बर्तन में रख कर खीर दी, माँ ने उसे खा लिया, और भी खाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने और खीर ला कर दी। इस प्रकार धीरे-धीरे सब खीर खाकर भी माँ ने और खाने की इच्छा व्यक्त की। शाहबाग शहर से कुछ दूर है; इस कारण आदमी भेज कर पुनः दूध मँगाने में कुछ देरी होने लगी। दूध आते ही खीर पकाने को चढ़ा दी गई। किन्तु विलम्ब देख कर माँ की रुलाई भी एक देखने योग्य

बुआजी का खीर का भोग

ही थी । चावल पके नहीं, माँ के परोसे पर सब खीर उडेल दी, माँ वैसी ही खीर खा गईं । माँ ने इस तरह लगभग आधे मन दूध की खीर खा डाली, देख कर बुआजी को भय लगा । वे बड़ी भक्तिमती हैं, उन्होंने सोचा यह मनुष्यों का स्वाभाविक भोजन नहीं है । उस समय उन्होंने हाँडी काछ कर न जाने कौन-सा मन्त्र पढ़ कर थोड़ी खीर माँ के सिर पर डाल दी । फिर माँ तनिक भी खीर न खा सकीं, सारा शरीर न जाने कैसा हो गया । बुआजी ने माँ के सिर पर जो खीर डाली थी, उससे उनके सिर के कपड़े में उस जगह जले का-सा दाग लग गया था, उसे हमने देखा है ।

प्रणाम बन्द होना

किसी मन्दिर में अथवा अन्य किसी जगह कभी मैंने माँ को प्रणाम करते नहीं देखा है । उनके मुँह से मैंने सुना है कि गत सोलह वर्षों से उनका प्रणाम करना बन्द है । इस सिलसिले में उन्होंने कहा कि गत संवत् १९७८ के फाल्गुन महीने में उनकी छोटी बहन सुरबाला और हेमाङ्गिनी के विवाह की शुभ रात्रि को माताजी (नानीजी) और पिताजी (नानाजी) लड़कियों और जमाइयों को लेकर ढाकेश्वरी के मन्दिर में पूजा करने गये । माँ भी साथ थीं । माँ मन्दिर में जाकर ढाकेश्वरी की मूर्ति की ओर दृष्टि कर पद्मासन से स्थिरता के साथ बैठ गईं । उस अवस्था में पहले एक रोदन का भाव और तदनन्तर हँसी का भाव प्रकट हुआ । तदुपरान्त साष्टाङ्ग, पञ्चाङ्ग आदि दो-तीन प्रकार के प्रणाम अपने आप हो गये । अन्तिम प्रणाम हो जाने के अनन्तर कुछ क्षण तक माँ अपने शरीर को उठा न सकीं । कुछ देर बाद धीरे-धीरे उठ कर घर लौट आईं । [illegible] में सब से कह दिया, “ये

सब बातें किसी से भी न कहना।" भोलानाथजी भी साथ थे, माँ के ममेरे भाई निशि बाबू भी साथ थें। वे पण्डित हैं, माँ को इस प्रकार प्रणाम करते देख कर विस्मित होकर उन्होंने पूछा "तूने यह सब किससे सीखा है ?" माँ नें कहा, "किसी से भी नहीं सीखा, अपने आप ही हो जाता है। माँ का बाजितपुर में उस दिन से प्रणाम बन्द हो गया। पहले-पहले तो माँ बिलकुल ही प्रणाम नहीं कर सकती थीं। पीछे मैंने देखा कि मौका पड़ने पर कभी-कभी माँ ने भोलानाथजी, नानाजी तथा नानीजी को प्रणाम किया है। वह भी कभी हो गया। भोलानाथजी भी माँ को प्रणाम करते थे, उन लोगों का क्या भाव है, यह वे ही जानें। इस प्रणाम के प्रसंग में माँ ने और भी एक घटना कही। भोलानाथजी के बाजितपुर रहते समय एक बार वे, नानाजी, नानीजी और माँ सब लोग इकट्ठे होकर कसवा के कालीमन्दिर में गये। वहाँ पर अन्यान्य सबके समान माँ ने भी प्रणाम और प्रदक्षिणा आदि किये, किन्तु उसके बाद ही माँ के मुख और नेत्रों से एक असाधारण भाव का उदय हुआ। उस घटना के वर्णन के प्रसंग में माँ ने कहा, "कैसा होता था जानती है ? जिस देवता के निकट प्रणाम करने जाती उसके साथ मानो अभेद हो जाता और उसके साथ-साथ शरीर में एक अस्वाभाविक परिवर्तन हो जाता।" और भी माँ ने कहा, "बचपन में मुझे ठाकुरजी के कमरे का काम करने को देते थें। माँ कहती, सावधान, जिस प्रकार ठाकुरजी छुए न जायँ। किन्तु क्या आश्चर्य है कि किसी न किसी प्रकार ठाकुरजी अवश्य छू जाते। मैं कोई काम अपनी इच्छा से करती नहीं हूँ, विशेष कर जब कि माँ का

निषेध था, किन्तु क्या करूँ ? वैसा हो जाता। दूसरे ही क्षण में विचार उठता—मैं तो कुछ इच्छा करके करती नहीं हूँ। और भी आश्चर्य का विषय यह है कि बाहर आकर इन सब बातों को किसी से कहने का स्मरण ही नहीं रहता।" मैंने कहा, "तुम क्यों स्मरण रखो, जो आवश्यक नहीं है, वह तो तुम्हारे शरीर से होता ही नहीं। यदि कहती तो संभव है ठाकुरजी को पुनः स्नान कराना पड़ता, किन्तु उसकी तो जरूरत नहीं थी।"

दिन पर दिन ही खाने के नियमों में परिवर्तन होता था। संभवतः कुछ दिनों तक स्वाभाविक रूप से खाया

भोजन के विविध प्रकार के नियम

फिर छः महीने तक संभवतः मुँह में अन्न रखा ही नहीं, हम लोगों से कह दिया,—'मेरे मुँह में कुछ भी अन्न न रखना, यदि तुम लोगों ने रखा तो तुम्हारी ही हानि होगी। छः महीने के बाद भोलानाथजी खाने बैठे हैं, वहाँ बैठ गईं, मटरी बुआ से बोलीं, "सब भात ले आवें तो।" वे जितना पकाया था सभी भात ले आईं। उस दिन तरकारी कुछ विशेष न थी। बोलीं, "गेंदे की पत्तियाँ तोड़ लाओ।" वे ही लाई गईं, उनके साथ ही ७-८ व्यक्तियों के भोजनयोग्य भात खा गईं। उस दिन जो कुछ दिया गया वही खा गईं! तदनन्तर कुछ दिन तक फिर नियम चला—बोलीं, "बगीचे के पेड़ों के जो फल जमीन पर पड़े रहें, उन्हीं को खा कर रहूँगी, और कुछ न देना।" बगीचे में विशेष कुछ फल थे नहीं, आम के पेड़ और लीची के पेड़ ही अधिक थे। वे आम के दिन न थे। सारांश यह कि कुछ भी न खातीं। फिर कुछ दिन ... मुझसे कह रही थीं, "एक

निश्वास में जो कुछ खिला सको, सारे दिन, सारी रात वही मेरा भोजन है।" फिर जल तक न लेतीं। इस कारण एक निश्वास में जल तक पिलाना पड़ता। माँ माँ की दृष्टि से मालूम होता है इससे भी मनोनुकूल नहीं हुआ। अन्त में बोलीं, "दूब जैसे दो-तीन अँगुलियों से तोड़ी जाती है वैसे ही एक निश्वास में दो-तीन अँगुलियों से जो उठे वही खिलाओ।" सारांश यह कि न खाना ही उद्देश्य था। इसी तरह दिन बीतते। भात तो खातीं ही नहीं, किन्तु दूध, फल आदि किसी का प्रबन्ध भी करने न देतीं। कुछ प्रबन्ध यदि किया भी जाता तो उसे तोड़ देतीं। एक बार माँ कुछ नहीं खाती हैं जानकर ज्योतिष दादा ने मटरी बुआ से कह दिया कि मैं मैदा और घी भेज दूँगा, रोज दो-चार पूरियाँ बना कर माँ को खिला दें।" मैदा और घी वे सम्हाल कर रखतीं। माँ से छिपा कर ज्योतिष दादा के आदमी मैदा और घी दे जाते। माँ यदि देख लेतीं तो एक ही दिन में सब को बाँट कर समाप्त कर देतीं। कुछ दिनों तक माँ ने यथोचित रूप से उक्त सेवा ग्रहण की, अन्त में एक दिन माँ ने कहा, "जितना मैदा और घी घर में है, पूरी बना कर ले आओ।" इधर ज्योतिष दादा को भी बुला भेजा। उनके आने पर उनसे बोलीं, "देखूँ कितनी पूरी खिला सकते हो।" यह कह कर जितनी पूरियाँ पकाई थीं (६०-७०) सब माँ ने खा डालीं। हँस कर बोलीं, "यदि और होती तो और भी खाती। किन्तु यदि मैं इस तरह खाऊँ तो कितने दिन खिला सकोगे ?" यह कह कर हँसने लगीं। बोलीं, "यदि मैं रोज ठीक तरह से खाना शुरू करूँ तो तुम लोगों में

किसी के भी रुपयों से पूरा नहीं पड़ेगा। इसलिए कहती हूँ आज से अब घी, मैदा न भेजना। इस प्रकार के प्रबन्ध से मेरा भोजन नहीं चलेगा।'' फिर उस दिन से बहुत दिनों तक पूरियाँ नहीं खाईं। ऐसा मैंने बहुत बार देखा है, कुछ भी नहीं खा रही हैं, एक आदमी आया उसने आग्रह कर खाने को बैठा दिया। माँ कुछ गम्भीर बन कर खाने बैठीं। वैसा ही अन्यमनस्क भाव है। मैं खिला रही हूँ, किन्तु उससे पूर्ति नहीं हो रही है, कह रही हैं, "देरी हो जाती है। किसी और एक को बुला ले।'' दो व्यक्ति खिला रहे हैं, तिस पर भी मालूम होता पूर्ति नहीं कर सक रहे हैं, खाते ही जा रही हैं, स्थिर भाव से बैठ कर खा रही हैं। उक्त अवस्था को देखकर जिसने खाने को कहा था वह भी भयभीत हो जाता, अन्त में खिलाना बन्द कर देना पड़ता। तुरन्त माँ कहतीं, "क्या अब दोगे नहीं? एक बार कहते हो खाओ, और खाना आरम्भ करने पर दोगे नहीं। मैं क्या करूँ कहो तो?'' भोलानाथजी ने भी बहुत बार आग्रह के साथ खिला कर यह अवस्था देख भयभीत हो खिलाना बन्द कर दिया। इसीलिए वे इस विषय में माँ से विशेष आग्रह नहीं करते थे। बहुत बार फिर ऐसा भी दृष्टिगोचर हुआ है, माँ के अपनी इच्छा से असंभव ढंग से आहार करने पर कुछ भी न होता। किन्तु यदि दूसरा कोई आग्रह करके खिलाता तो खातीं सही, किन्तु थोड़े समय के भीतर ऐसी अस्वस्थ हो उठतीं कि खिलाने वाला अप्रतिभ हो जाता, फिर कभी अनुरोध करने का साहस न करता। फिर कुछ दिनों के बाद [illegible]स्थता अपने आप चली

जाती। किन्तु सबको आश्चर्य हो जाता। कई दिन फिर ऐसा देखा है—कह दिया, रोज ही मेरे मुँह में बनते ही दो-एक भात देना। किन्तु संभवतः संयोगवश उस दिन खाना ही नहीं हुआ, रात में सिद्धेश्वरी गई हैं, वही खायेंगी, वहाँ खाने का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। कोई प्रबन्ध करने के लिए व्यग्र भी न होता। क्योंकि माँ की गतिविधि का कोई ठीक न था—इसलिए बन्दोबस्त करना संभव न होता। रात को सिद्धेश्वरी में कहतीं, "आज तो भात मुँह में दिया नहीं गया।" उसी समय किसी से दो-एक चावल लाकर सन की सींक जला कर उसमें पकाकर दो चावल मुँह में डालने को कहतीं। इस तरह एक दिन मैंने सिद्धेश्वरी में किया है। इस प्रकार अद्भुत ढंग से भी नियम का पालन करतीं। माँ प्रतिदिन खाने बैठें, ऐसा भी कोई नियम न था,—सोई हैं, प्रसाद लिये बिना कोई खायेगा नहीं, इसलिए मैं थोड़ा-सा मुँह में छुआ लाती। बस वही आहार हुआ। पड़े रहने का भाव ही खूब अधिक रहता। बोल भी बहुधा बन्द हो जाता।

कभी-कभी सहसा मौन धारण कर लेतीं। उस समय हम लोगों को महा दुःख होता। पहले-पहले मौनी होकर

बोलने का नियम

भोलानाथजी के साथ दो-एक बातें कर लेतीं, अन्त में फिर वह भी न करतीं। इशारा-इंगित कुछ भी नहीं करतीं। नेत्र और मुख से एकदम कोई भाव ही प्रकट न होता। पहले के तीन वर्ष के मौन की बात कहतीं, "केवल भोलानाथजी के साथ बहुत धीरे दो-एक कामकाज की बातें हो जातीं। उसके सिवा और कुछ भी बोल ... करती।" उस अवस्था में

भोलानाथजी के सबसे छोटे भाई यामिनी बाबू एक बार बाजितपुर गये। उस समय उनकी अवस्था विशेष अधिक न थी। जाकर उन्होंने माँ को मौनी देखा, उन्हें बहुत अधिक कष्ट हुआ। माता भी जीवित न थीं, भाभी के निकट गये थे, किन्तु वे भी बोलेंगी नहीं। अत्यन्त दुःख के साथ एक दिन उन्होंने कहा, "भाभीजी, क्या मुझसे भी नहीं बोलेंगी ?" माँ इस प्रसङ्ग में कहती हैं,—"मैं तो इच्छा से कुछ भी नहीं करती हूँ। उनके यह कहने के कुछ देर बाद अपनी अँगुली से ही जहाँ पर बैठी थीं उसके चारों ओर जमीन पर घेरा बन गया। उसके पश्चात् भीतर से मानो धक्का देकर न जाने क्या निकलने लगा। थोड़ी देर बाद अब जैसे स्तोत्र, मन्त्र आदि निकलते हैं वैसे ही निकले, तदनन्तर उनके साथ बातें कर सकीं। ऐसा होने का कोई नियत समय, असमय न था। संभवतः पोखरे पर काम करने गई हूँ वहीं पर इस तरह का घेरा पड़ जाता और बातचीत कर सकती, फिर अपने आप बोलना बन्द हो जाता और घेरा मिटा कर उठ पड़ती। इस प्रकार की जो कितनी ही अवस्थाएँ बीती हैं, उनकी इयत्ता नहीं है।" मैं देखती जो आकर चाहे जिस प्रकार की बातें करते, माँ तुरन्त ही उनका आशय समझ जातीं। किसी उच्च अवस्था की साधना की बातों की चर्चा छिड़ते ही माँ उन्हें साधारण बोलचाल की भाषा में सब समझा सकतीं। मानो कोई भी भाव उनका अज्ञात नहीं है। जब मैंने कहा, माँ बाजितपुर के एक कमरे में बैठ कर अकेले-अकेले ऐसी अवस्था होने

से क्या लाभ हुआ ? कोई [illegible] पाया नहीं—क्या लाभ

हुआ ?" माँ कहतीं, "तुम लोगों को उसकी जरूरत थी। उस समय गुप्त रूप से होने की ही जरूरत थी, इसलिए उस तरह ही हो गईं। जिस साधना की क्रियाएँ एकान्त में होने की जरूरत है वह तो एकान्त में ही होगी। और देखो, तुम लोग जिस समय जिसकी जिज्ञासा करते हो, तत्क्षण ही कह दिया जाता है कि इस शरीर में ही ऐसी क्रियाएँ हुई हैं और इस तरह होती हैं। इन बातों से तुम लोगों को कितनी उत्तम रीति से समझने में सुविधा होती है !" माँ के इस कथन से हम लोग भी सोचते कि ठीक ही तो है। ये सब माँ के शरीर में हो गई हैं यह सुनने से हम लोगों को कितने ही अंशों में अत्यन्त स्पष्ट-सा प्रतीत होती हैं। चैतन्यदेव की लीला में मैंने पढ़ा था, "उन्होंने स्वयं आचरण में लाकर धर्म दूसरों को सिखाया।" माँ कहती हैं, "देख, इसलिए सब कुछ आवश्यक है।" कितनी विपरीत घटनाओं के बीच माँ को गुजरते मैंने देखा है, किन्तु कभी व्यग्र होते अथवा असन्तुष्ट होते नहीं देखा। सभी अवस्थाओं में धीर, स्थिर, शान्तभाव, सभी में आनन्द। जो लोग माँ के प्रति वैसी विशेष भक्तिश्रद्धा नहीं रखते हैं, उन लोगों ने भी यह स्वीकार किया है कि हम कभी माँ को चञ्चल अथवा आनन्दशून्य अवस्था में नहीं देखते हैं।

□□

तीसरा अध्याय

माँ की वैद्यनाथ धाम यात्रा—१९८३

इस बीच में प्राणगोपाल बाबू ने माँ के पास देवघर जाने के लिए अनुरोध करते हुए पत्र लिखा। वे पेन्शन लेकर देवघर गुरु के समीप रहते थे। उनका परिवार भी वहीं भाड़े का मकान लेकर रहता था। प्राणगोपाल बाबू गुरु के आश्रम में ही रहते थे। उनके गुरु स्वामी बालानन्दजी एक महापुरुष हैं। उनके बार-बार अनुरोध करने पर माँ हम लोगों को साथ लेकर संवत् १९८३ के वैशाख या जेठ में देवघर को रवाना हुईं। साथ में भोलानाथजी, पिताजी, अटल दादा, नन्दू, अटल दादा की स्त्री और मैं गई। माँ पहले कभी कलकत्ता गई न थीं, उसी समय पहले-पहल गईं। हम लोग जाकर प्रमथ बाबू के मकान में ठहरे। वे उस समय सपरिवार कलकत्ता थे। दो-एक दिन वहाँ रह कर हम लोग देवघर को रवाना हो गये। देवघर जाकर प्राणगोपाल बाबू के डेरे में ठहरे। छोटे-छोटे बच्चों के साथ प्राणगोपाल बाबू की स्त्री मकान में रहती हैं। क्या सुन्दर परिवार है। अपराह्न के बाद प्राणगोपाल बाबू माँ को गुरु के आश्रम में ले गये। हम लोग भी साथ गये। शिष्यों की जबानी हमने सुना कि स्वामीजी की अवस्था एक सौ वर्ष की है। सिद्ध पुरुष के रूप में ही वे विख्यात हैं। बहुत बड़ा आश्रम है। दो मन्दिर हैं और कई ब्रह्मचारी हैं।

स्वामीजी थोड़ी दूर पर एक मन्दिर में रहते हैं। मन्दिर का नाम ध्यानमन्दिर है। प्राणगोपाल बाबू माँ को ध्यानमन्दिर में ले गये। वहाँ स्वामीजी के साथ माँ का साक्षात्कार हुआ। माँ को देख कर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने बातचीत के सिलसिले में माँ से कहा, "माँ, एक बार तुमने सूक्ष्म रूप से दर्शन दिया था, आज स्थूल रूप में दर्शन देने आई हो।" प्रतिदिन ही माँ प्रातःकाल और शाम को आश्रम में जाती थीं। हम भी साथ में जाते थे। एक दिन स्वामीजी के साथ माँ की बातें हुईं—माँ कहती थीं, "एक के सिवा कुछ भी नहीं है।" स्वामीजी कहते थे, "दो हैं, वे और उनकी माया।" माँ किसी प्रकार भी द्वैत स्वीकार नहीं कर रही थीं। बहुत देर तक कथोपकथन होने के बाद स्वामीजी ने माँ का ही कथन मान लिया। माँ हँस उठीं। स्वामीजीने माँ को अपनी गोद के निकट बैठा कर पूरियाँ खिला दीं। दूसरे दिन आश्रम में माँ को भोजन कराया। माँ को एक रुद्राक्ष की माला और एक लाल वस्त्र दिया। वहाँ कीर्तन में माँ की खूब भावावस्था हुई। पैर के अँगूठे के बल खड़ी हो कर बहुत देर तक माँ भावावस्था में नाची थीं। स्वामीजी ने माँ की अवस्था मुग्ध हो कर देखी थी। माँ ने उस भावावस्था में ही स्वामीजी के सिर पर हाथ रखा था। तदनन्तर उसी अवस्था में स्वामीजी का हाथ पकड़ कर माँ ध्यानमन्दिर में गईं। वहाँ जाकर एकान्त में कुछ बातें हुईं। माँ के कथानानुसार कुछ दिनों के बाद स्वामीजी अपनी साधना की भूमि (तपोवन) में जाकर कुछ दिन रहे थे। देवघर में भी इस भावावस्था की बात पर माँ

ने कहा, "मैं मानो कहीं रह कर देखती हूँ कि शरीर की इस तरह क्रीड़ा हो रही है। हम लोग लगभग ७ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ राजसाही कॉलेज के प्रोफेसर गिरिजाशङ्कर भट्टाचार्यजी ने भी जाकर माँ के दर्शन किये और माँ के साथ ही साथ कलकत्ता आये। एक दिन माँ से न मालूम कौन एक बात कह कर गिरिजा बाबू खूब रोये, वे बच्चों की तरह सिर नीचा कर रो रहे थे। माँ उठ कर चली आईं। इधर-उधर टहलने लगीं, ये भद्र पुरुष जो रो रहे थे उस ओर नजर तक न डाली। "हम लोगों ने कहा, तुमसे क्या कहें ? ये भद्रपुरुष इस प्रकार रो रहे हैं और तुम्हारा उस ओर दृष्टिपात भी नहीं है—उस ओर जा ही नहीं रही हो।" माँ ने हँसते हुए कहा, "क्या करूँ, मैं तो अपनी इच्छा से कुछ कर नहीं सकती हूँ। कभी सौ बार रोने पर भी उधर ख्याल ही नहीं जाता और कभी कुछ न कहने पर भी उसके समीप बैठ जाती हूँ, शरीर से जैसा हो जाय, विचार करके तो कुछ कर नहीं सकती।" यही भाव और भी बहुत बार मैंने देखा है। देवघर में एक दिन प्राणगोपाल बाबू के डेरे में माँ की ऐसी अवस्था हुई कि हम लोगों ने जीवन की आशा छोड़ दी थी। उस दिन कीर्तन में नहीं, यों ही बैठे-बैठे सारा शरीर काला हो गया था। पिताजी को नाड़ी की गति देखकर भय हो रहा था। हम लोग केवल नाम-कीर्तन करते, भोलानाथजी भी खूब नाम-कीर्तन करते, वही हमारे लिए एकमात्र सहारा था। माँ ने भी बहुत बार कहा है, "इस अवस्था में यदि शरीर में लौटने का ख्याल न रहे तो सब खेल समाप्त हो जा सकता है, किन्तु शायद लौटना

रहा, इसलिए तुम लोगों की यह व्याकुलता फिर लौटा लाई है।" कितने दिन माँ की एक अवस्था हुई है—रात्रि में सोई हैं, सहसा अत्यन्त अस्पष्ट भाषा में दरवाजा, खिड़कियाँ बन्द कर देने को कह रही हैं। मैं अत्यन्त कठिनाई से उक्त भाषा समझ कर दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर देती। और संभवतः पहले से ही कह रखतीं, "ऐसी अवस्था यदि हो तो मेरे शरीर के चाहे किसी भी स्थान पर हाथ रखना और मन ही मन नाम-जप करना।" मैं वही करती। पैर पर हाथ रख कर बैठे-बैठे नाम-जप करती। अनेक रात इस तरह बिताई हैं। उक्त अवस्था की बात भी माँ ने कही है, "तुम लोग जो पकड़ कर नाम-जप करते हो उसी से शरीर में लौटने का खयाल जागता है।" यह भी कहतीं, "संभवतः लौट आने की आवश्यकता है, इसी से तुम लोगों से यह सब कह दे सक रही हूँ।" उक्त अवस्था में क्या-क्या करना चाहिये यह सब भोलानाथजी से भी बहुधा कह रखतीं। वे ही सब चेष्टाएँ करते, किन्तु कभी ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाती कि किसी तरह भी कुछ न होता। हम लोग एकमात्र सहारा नाम-जप किये जाते। कुछ दिन शरीर की अवस्था ऐसी हुई कि संभवतः कुछ भोजन कर, विश्राम कर रही हैं, श्वास की गति भीषण तीव्र हो उठी, शरीर भी साथ-साथ कैसा विचित्र हो जाने लगा। इस प्रकार की जितनी भी अवस्थाएँ हुई हैं, उनमें कभी भी माँ बेहोश नहीं हुईं—यह बात माँ ने अपने मुँह से कही है तथा हम लोगों ने भी इसका अनुभव किया है। श्वास की उस प्रकार की अस्वाभाविक गति से शरीर पस्त पड़ जाता, मैं

शरीर मल देती, किन्तु मेरे खूब जोर से मल देने पर भी माँ को कुछ भी मालूम न पड़ता। अन्त में भोलानाथजी स्वयं तथा अन्यान्य युवक भक्त पूरी शक्ति से हाथ-पैर मल देते। तब जाकर माँ कहतीं बहुत थोड़ा प्रतीत हुआ। और जो मलते वे पसीने से सराबोर हो जाते, कई महीनों तक ऐसी अवस्था रही है। अन्त में जब माँ रमना के नूतन आश्रम से उत्सव के अनन्तर पिताजी को साथ लेकर अनेक स्थानों में घूमने बाहर निकलीं, बाहर जाने के कुछ दिन पहले मैदान में बैठ कर उन्होंने कहा था, "कितने दिन पहले से ही इस तरह बाहर जाने के लिए भोलानाथजी से अनुमति माँग रही थी, किन्तु वे राजी नहीं हुए, इसीलिए बाहर नहीं गई। किन्तु मेरे शरीर में जो ऐसा हो जाता है यह उसी के कारण होता है।" बहुत बार यह देखा है कि किसी विषय में यदि भोलानाथजी रुकावट डालते तो उसे करतीं तो नहीं पर शरीर ऐसा हो जाता कि सब लोगों को भय हो जाता। इस कारण भोलानाथजी साधारणतः किसी भी विषय में विशेष बाधा उपस्थित न करते। भोलानाथजी को किसी कारण यदि अति क्रोध होता तो भी शरीर ऐसा हो जाता। मृत्यु के सब लक्षण प्रकट हो जाते। इस प्रकार धीरे-धीरे भोलानाथजी का क्रोध बहुत घट गया था। पहले से ही सभी अवस्थाएँ तो वे देख ही रहे थे—इस शरीर की रक्षा के लिए उन्हें बहुत कुछ सहन करना पड़ा, इसमें सन्देह नहीं है।

हम लोग देवघर से लौट कर कलकत्ता सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में गये। उन्होंने उनसे पहले माँ

लौटते समय कलकत्ते में

को देखा न था। पहले-पहले उन्होंने भी अतिथि-सेवा के रूप में ही माँ की सेवा की थी। एक दिन रातभर छत पर बैठ कर माँ के साथ उनकी न जाने क्या बातें हुईं। उसके बाद से ही उन्होंने माँ को 'माँ' कह कर पुकारा और माँ को भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। उनकी वृद्धा माता ने भी माँ को इष्टदेवी की मूर्ति में देखा था। उसके बाद ही यह सारा परिवार माँ का अत्यन्त भक्त बन गया। माँ जब कलकत्ते जातीं तो सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में ही ठहरतीं। भक्तों के साथ कीर्तन आदि उसी मकान में अधिक होता। अधिक समय माँ उसी मकान में व्यतीत करतीं। उनकी वृद्धा माता माँ को अपनी इष्टमूर्ति के रूप में देखने पर भी सन्तान के समान ही प्यार करती थीं। माँ के लिए वे पागल हो जाती थीं। कलकत्ते से प्राणगोपाल बाबू की बहन अत्यन्त आग्रह कर माँ को अपने मकान (शिवनिवास) में ले गईं। वहाँ ले जाकर उन्होंने कितना प्रेम प्रदर्शित किया उसका वर्णन नहीं कर सकती। प्राणगोपाल बाबू और उनके सम्पूर्ण आत्मीयों—बन्धु-बान्धवों के चरित्र से हम लोग अत्यन्त मुग्ध हुए। ऐसे परिवार अधिक नहीं दिखाई देते। सभी सरल, नम्र, मधुरभाषी और धर्मभीरु। शिवनिवास से लौठ कर कलकत्ता प्रमथ बाबू के मकान में गये, वहाँ अनेक लोग माँ के दर्शन करने आये। प्रमथ बाबू के परिचित, बन्धु-बान्धव बहुतों ने आकर माँ के दर्शन किये। रेवती सेन (गुसाईंजी के शि[illegible]य बालब्रह्मचारी), नवतरु हालदार आदि अनेकों ने प्रमथ [illegible]बू के मकान में ही

माँ के पहले-पहल दर्शन किये। इस समय वे लोग माँ के अत्यन्त कृपाभाजन हैं। कलकत्ते से ढाका को रवाना होने के दिन पिताजी ने गाड़ी मँगा कर सब सामान उसपर लाद दिया, किन्तु प्रमथ बाबू ने माँ को किसी तरह आने नहीं दिया। मुख से विशेष कुछ कहा नहीं, किन्तु एक कमरे के कोने पर जाकर ध्यान में बैठे रहे। माँ के बिदा लेने के लिए जाते ही पैरों के निकट पस्त हो कर गिर गये, माँ फिर हिल न सकीं, स्थिर होकर वहीं खड़ी रहीं। इधर गाड़ी का समय बीत गया। खूब वर्षा आरंभ हुई। माँ के सबको कीर्तन क़रने की अनुमति देने पर सब लोग वर्षा में खड़े होकर कीर्तन करने लगे। माँ भी वर्षा में खड़ी रहीं। बहुत देर तक कीर्तन हुआ, रात भी बहुत हो गई। माँ के साथ देने के लिए सभी लोग कुछ न कुछ खाद्य पदार्थ लाये थे, उसी का प्रसाद वितरण किया गया। सभी के भींगे कपड़े थे। माँ को बहुत लोगों ने कपड़े दिये—सभी कपड़े बाँट दिये गये। सबने कपड़े बदल कर माँ को प्रणाम कर बिदा ली।

ढाका लौटना

दूसरे दिन हम लोग माँ को लेकर ढाका को रवाना हुए। मालूम पड़ता है अटल दादा कलकत्ते से ही बिदा हो गये थे। पहले अटल दादा के आते ही माँ ने मुझे दिखा कर उनसे कहा था, "देख, तुम्हारी बहन है, दोनों का ही चेहरा-मोहरा अधिकांश में मिलता है।" आगे भी इसी तरह और न जाने क्या-क्या कहा था।

माँ शाहबाग़ में ही थीं। कभी-कभी सिद्धेश्वरी जाती

थीं । एक दिन रात्रि में सिद्धेश्वरी गईं । सभी लोग उस दिन सिद्धेश्वरी गये । पहले-पहले यह नियम चला था कि यदि प्रतिदिन कीर्तन न भी हो सके तो सोमवार और बृहस्पति-वार को विशेषरूप से कीर्तन अवश्य होना चाहिये । वही होता था । सप्ताह में इन दो दिनों में सब इकट्ठे होते थे और खूब कीर्तन होता था । अन्यान्य दिन सामान्य थोड़ा-थोड़ा कीर्तन होता था । बहुत लोगों की भीड़ होने के कारण उद्यान की क्षति होने के भय से अधिकारियों ने सब का उद्यान में जाना बन्द कर दिया था । उस समय माँ ने एक-एक दिन एक-एक मकान में कीर्तन करने का आदेश दिया । सोम और बृहस्पतिवार को सिद्धेश्वरी में कीर्तन होगा, कह दिया । संभवतः उस दिन सोमवार या बृहस्पतिवार होगा । माँ सिद्धेश्वरी गईं । उस समय भी सिद्धेश्वरी का रास्ता बहुत खराब था । सभी लोग बड़ा कष्ट झेल कर सिद्धेश्वरी जाते थे । अथवा माँ ही सबको खींच कर ले जाती थीं । माँ सिद्धेश्वरी जा कर गड्ढे के अन्दर बैठीं, भोलानाथजी ऊपर बैठे । भक्तगण सब उपस्थित थे । ज्योतिष दादा भीड़ में विशेष रहते नहीं थे, किन्तु उस दिन वे भी विद्यमान थे । कभी-कभी भक्तों में विविध विषयों को लेकर कोलाहल होता था । माँ किस घर में गईं, किसमें नहीं गईं, इस विषय को लेकर भी दुःख व्यक्त किया जाता था । माँ ने तब घूँघट काढ़ना बहुत कुछ कम कर दिया था—सन्तानों के साथ बैठ कर खूब बातचीत करती थीं । उस दिन उनकी मूर्ति और भी उज्ज्वल थी । बोलने में

सिद्धेश्वरी का वृत्तान्त

संकोच का भाव या स्तब्धता बिलकुल न थी । मधुर दृष्टि से सब की ओर देखकर बोलीं, "यहाँ आये हो—सब लोग द्वेष, हिंसा भूल जाने का प्रयत्न करो । हिंसा निन्दा ही यदि करना है तो यहाँ आने का लाभ क्या ? और मैं तो जो जब जहाँ ले जाता है वहीं जाती हूँ । पहले टहलते-टहलते जहाँ होता था चली जाती थी, अब दिन पर दिन शरीर न जाने कैसा होता जा रहा है, सदा पैदल नहीं चल सकती हूँ । तुम लोग गाड़ी द्वारा जहाँ चाहो ले जाओ । इसमें दुःख की तो कुछ भी बात नहीं है ।" तदनन्तर जरा दृढ़ता से बोलीं, "आज भाव न जाने कैसा हो जा रहा है । मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ फिर भी तुम मुझे माँ कहते हो । यदि सचमुच वैसा ही समझते हो तो मैं जब जहाँ रहूँ जानो उतने समय के लिए वह मकान मेरा ही है, इससे वह हम लोगों का ही है, ऐसा यथार्थरूप से मन में ठानो ।" कुछ देर बाद फिर बोलीं,—वधूत्व का संकोच उस समय कहीं चला गया था, दृढ़ स्वर में कह रही थीं, 'जो-जो यहाँ आते हो सभी को तैयार होना होगा । इस समय तक तो कुछ भी नहीं हुआ है । केवल जमीन पर कुदाली पड़ी है बस । कितना सहन करना पड़ेगा, कितनी आँधियाँ उठेंगी, उस बवंडर में जिन्हें जाना होगा चले जायेंगे, जिन्हें रहना होगा रहेंगे ।" दृढ़तापूर्वक यह बात कह कर माँ चुप हो गईं । माँ हँसते-हँसते बोली थीं सही, किन्तु सभी के मन में माँ के उस दृढ़ स्वर ने आघात पहुँचाया । सभी चुपचाप बैठे रहे, कुछ क्षणों के बाद दूसरी चर्चाएँ चलीं, कुछ देर कीर्तन भी हुआ । सभी माँ से सांसारिक व [illegible] अवस्था के विषय में जिज्ञासा करते

हैं, उस दिन भी उन्होंने की। महिलाएँ प्रश्न कर रही थीं। माँ ने कहा, 'देखो, सभी सांसारिक विषयों में ही मुझसे प्रश्न करते हैं, मैं उस सम्बन्ध में कुछ भी विशेष नहीं कहती हूँ। किन्तु आज कह रही हूँ कि मैं जिस समय आकर यहाँ बैठूँ उस समय चाहे जो-जो भी प्रश्न करेगा, मैं उत्तर दूँगी। अन्य समय फिर कुछ नहीं कहूँगी। किन्तु मैं कब आऊँगी यह नहीं कह सकती।" यह बात सुनते ही स्त्रियाँ बहुत ही छोटे-छोटे सांसारिक विषयों में प्रश्न करने लगीं, माँ ने भी हँसते-हँसते प्रत्येक का उत्तर दिया। आश्चर्य की बात है कि किसी ने कोई अच्छी बात नहीं पूछी। पुरुषों में प्रायः किसी ने भी कोई प्रश्न नहीं किया। मेरी उस समय माँ को पाकर ऐसी अवस्था हुई कि मानो प्रश्न करने योग्य कुछ भी नहीं है। स्त्रियों में से भी केवल कतिपय स्त्रियों ने ही प्रश्न किये। सबने इन साधारण से प्रश्नों से ऊब कर फिर कीर्तन आरंभ कर दिया। माँ ने हँसते-हँसते मुझ से कहा—"इस गड्ढे में आकर बैठ सकती है ?" मैंने भी निर्भय होकर उत्तर दिया "खूब अच्छी तरह से, आपका आदेश होना चाहिये।" माँ जमीन से कुछ फूल उठा कर मेरे ऊपर फेंकने लगीं और हँसते-हँसते कहने लगीं, "मैं पूजा कर रही हूँ, यह लड़की बड़ी ढीठ है।" मैंने भूमि पर लोट कर प्रणाम किया। माँ के निकट अपने-पराये का कोई भेद नहीं है। माँ सबकी पूजा करती हैं फिर अपने पैरों की भी पूजा करती हैं। वह उनकी एक लीलामात्र है। कुछ देर बाद कीर्तन खूब जम गया, माँ उठकर उस गड्ढे के अन्दर ही खड़ी हुईं। उस दिन

अत्यन्त अद्भुत-अद्भुत भाव होने लगे। प्रतिक्षण ही परिवर्तन हो रहा था। बहुत लोग कीर्तन कर रहे थे, बहुत लोग कुछ-कुछ समझ कर हाथ जोड़े खड़े थे, उस दिन मैं भी न जाने कैसी हो पड़ी, जोर से देवीस्तुति पढ़ने लगी। हाथ जोड़कर घुटने टेक कर माँ के गड्ढे के समीप ही बैठी थी। आँखें मूँदी थीं, मैंने देखा नहीं सहसा माँ के हाथ का मेरे हाथ से स्पर्श हुआ। मैंने चौंक कर आँखें खोलकर देखा माँ हँसते-हँसते हाथ पकड़ कर मुझे खींच रहीं थीं। माँ का हाथ खूब ठंडा था मानो बरफ हो। कुछ देर बाद माँ बिखरे हुए केशों और अस्तव्यस्त वेश से बाहर निकल पड़ीं। अँधेरी रात थी, अति द्रुत गति से चली जाने लगीं। माँ कभी-कभी स्वाभाविक रूप से भी इतनी तेज चलती हैं कि कोई साथ नहीं चल सकता है। मैं प्रायः ही दौड़ती हुई माँ के साथ रहती हूँ। माँ ने जाकर कालीमन्दिर में प्रवेश किया। (उस दिन माँ सबको लेकर वहाँ आयेंगी यह सोचकर मन्दिर खुला रखने को कहा गया था।) मन्दिर में घुसते ही कालीमूर्ति की प्रदक्षिणा कर दरवाजे के सामने लम्बी होकर लेट गईं। मैं और भोलानाथजी शरीर पर हाथ फेर रहे थे, अन्यान्य सब लोग मन्दिर के दरवाजे पर खड़े थे। बहुत देर बाद अस्पष्ट भाषा में अत्यन्त धीमे स्वर में माँ ने कहा, "सबसे कह दो आज जो कुछ देखा है उसे कोई मुख से उच्चारण न करे।" अत्यन्त क्लेश से मैंने उक्त कथन का तात्पर्य समझ कर सबसे कह दिया। बहुत देर हो गई थी, माँ को उठाकर जिस कमरे में उनका आसन था उसमें लाया [illegible]। रात प्रायः खुलने को आई। बहुतों

ने बिदा ली। भोलानाथजी ने माँ को बड़े कष्ट से उठाया—शरीर मानो पस्त पड़ गया था, और भी कुछ क्षण बीते। तदुपरान्त माँ उठ खड़ी होकर इतनी तेजी से चलने लगीं कि साथ में कोई चल नहीं सका, एक-बारगी शाहबाग आकर लेट गईं।

बगीचे में लोगों के आने की निषेधाज्ञा का परिहार

इसी तरह प्रतिदिन एक-एक लीला कर रही थीं। एक दिन दोपहर के समय मैं टिकाटूली से शाहबाग आई, देखा माँ नही हैं। बहुत खोज करते-करते मैंने देखा माँ एक छोटे पेड़ की डाल पर चढ़ कर बैठे-बैठे हँस रही हैं, पीछे उतर आईं। राय बहादुर के मकान से भी स्त्रियाँ सदा ही आती थीं। राय बहादुर की भी माँ के प्रति खूब श्रद्धाभक्ति थी। उन्होंने बगीचे में सब के आने का निषेध कर दिया था। थोड़े ही दिनों में उक्त नियम हटा दिया और उसके लिए माँ के सन्मुख वे खूब लज्जित हुए।

एक दिन की घटना—कीर्तन में सबकी चरणधूलि लेने की चेष्टा

एक दिन शाहबाग में सन्ध्या के समय कीर्तन हो रहा था, माँ के सोने के कमरे में ही कीर्तन हो रहा था, माँ भावावस्था में थीं, सहसा माँ पिताजी के चरणों की धूलि लेने को उद्यत हुईं। पिताजी तो माँ माँ कह कर पीछे हट गये। अन्त में सभी के पैरों के निकट जा रही थीं, धूलि लेंगी, यह सोच कर सभी चौक कर हटे जा रहे थे, माँ नन्हे बच्चे की तरह [illegible]-रोते व्याकुल हो

उठीं। कहने लगीं, "यदि चरणधूलि नहीं दी तो मैं रहूँगी नहीं।" अन्त में भोलानाथजी ने जाकर बहुत कह-सुन कर शान्त किया। उन्होंने कहा, "तुम्हें कौन अपनी चरणधूलि देगा? तुम स्वयं ही अपने चरणों की धूलि लो।" तब माँ ने स्वयं ही अपने चरणों की धूलि ली और शान्त हुईं। मैं समीप के कमरे में खड़ी होकर सोच रही थी—माँ चरणधूलि लिये बिना रहूँगी नहीं जब कह रही हैं तब जो भाग्य में बदा हो, यदि मेरे निकट माँ आवें तो मैं रोकूँगी नहीं, माँ जो कुछ करेंगी इससे मङ्गल ही होगा। किन्तु माँ मेरी ओर आते-आते रुक गईं, आईं नहीं। उस दिन और भी कई स्त्रियाँ उपस्थित थीं। शान्त होकर माँ स्त्रियों के बीच में आ बैठीं। माँ बोलीं, "आज किसी ने चरणधूलि नहीं दी, यदि कोई आज चरणधूलि देते तो मैं भी सबको चरणधूलि देती।" मैंने कहा, "माँ तुम तो सबके समीप आई नहीं, जो तुम्हें नहीं रोकते ऐसे लोग भी यहाँ विद्यमान थे।" माँ ने हँसते-हँसते कहा, 'वह तो जानती थी, इसीलिए उधर नहीं आ सकी।" इस प्रकार लीला कर रही थीं।

अन्य के रोग को आरोग्य करने का इतिहास

रोग-पीड़ा की निवृत्ति के लिए कितने लोग औषधि और आशीर्वाद लेने आते, उनकी सीमा नहीं है। किन्तु माँ उस सम्बन्ध मेंचुप्पी साधे रहतीं। कभी जो दो-एक घटनाएँ हो जातीं वह दूसरी बात है। दो-एक रोगी चंगे भी हुए हैं। किसी-किसी रोगी के समीप संभवतः लोग माँ को ले ग[illegible], माँ ने उसके शरीर पर हाथ फेर दिया मानो झाड़ रही ह[illegible] [illegible]ह शायद अच्छा हो गया। माँ कहतीं,

"मैं अपनी इच्छा से ऐसा करती सो बात नहीं है, हाथ अपने-आप उठ जाता और ऐसी क्रिया हो जाती। और कभी-कभी सैकड़ों अनुरोध करने पर भी हाथ न हिलता।"

एक दिन शाहबाग में अतुलदत्तजी की स्त्री (विभु ठाकुरताजी की बहन) आकर माँ को अपने घर ले जाने के लिए खूब अनुरोध करने लगीं। माँ इधर-उधर घूम रही थीं, उनकी बात पर ध्यान ही नहीं दे रही थीं। अन्त में उन्होंने भोलानाथजी के निकट जाकर उनसे प्रार्थना की कि मेरा लड़का बहुत बीमार है, माँ को एक बार दिखाने ले जाना चाहती हूँ। भोलानाथजी दूसरे के दुःख से अत्यन्त द्रवित हो जाते थे। उन्होंने जाकर माँ से अनुरोध किया, जाना ही होगा। माँ ने कमरे में जा कर भोलानाथजी से कहा, "जाकर क्या होगा ? वह लड़का बचेगा नहीं। ज्योतिष दादा भी उस समय वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने कहा, तब तो न जाना ही अच्छा है, जाने पर केवल माँ का व्यर्थ बदनाम होगा। और नहीं तो उनके किसी आत्मीय के पास 'माँ ने यह बात कही है ऐसा कह आना ही उचित है। भक्त का हृदय है, पीछे कोई माँ की गलती समझे यह सोच कर यह सब बात कही गई थीं। किन्तु कुछ भी नहीं किया गया, क्योंकि यह बात पहले कहना ठीक नहीं। माँ और भोलानाथजी उस मकान में गये, लड़का एम. ए. या 'ला' पढ़ता था, ठीक स्मरण नहीं है। यक्ष्मा का-सा रोग हुआ था। माँ देख कर चली आईं। माँ [illegible]हुत जगहों में ऐसे स्थानों पर जाना नहीं चाहती थीं, कि[illegible] भोलानाथजी के

(क) अतुलदत्त के लड़के की बात

विशेष आग्रह करने पर जातीं और कहतीं, "अच्छा तो है, मालूम पड़ता है दरकार है, इसीलिए जाना हो रहा है। बचना या मरना मेरे निकट एक-सा है। शायद जो मरेगा उसके निकट भी जाना आवश्यक था।" यह कह कर फिर कोई विशेष आपत्ति न करतीं। किन्तु भोलानाथजी तथा विशेष कर हम सब लोगों से कह दिया था "किसी को भी अच्छा करना होगा ऐसा अनुरोध कभी मत करना। क्या कह सकते हो किसको खराब करना होगा ? सभी को यदि बचाना हो तो फिर किसी की मृत्यु ही नहीं होगी। यह क्या संभव है ? सभी अपने-अपने कर्मफलों का भोग कर रहे हैं और करेंगे, उसमें बाधा पहुँचाना ठीक नहीं है। जबर्दस्ती करने पर विपरीत फल होता है।" इधर देख आने के बाद एक दिन अतुल बाबू की स्त्री ने आकर माँ से बिनती की, "माँ, कोई व्यवस्था कर देने की कृपा कीजिये।" माँ ने कहा, "नियम बतला देने पर भी उसका पालन न कर सकोगी।" उन्होंने कहा "माँ, तुम बतला दो निश्चय ही उसका पालन करूँगी।" तब माँ ने बतला दिया, "इतने दिनों के (संभवतः अंठारह दिनों के) अन्दर लड़के को बिछौना छोड़ने न देना।" यह आज्ञा लेकर वे चली गईं। लड़का क्रमशः अच्छा होने लगा। सहसा एक दिन अवस्था फिर बिगड़ गई। लड़के की माँ शाहबाग माँ के पास आ खड़ी हुईं। आते ही माँ ने कहा, "बिछौना क्यों छोड़ने दिया ? सोमवार को बिछौना छोड़ा है।" उन्होंने कहा, "नहीं माँ, यह कदापि नहीं हुआ।" कुछ दिनों के बाद लड़के की मृत्यु हो गई। [illegible] को घर में रख कर ही अतुल

बाबू की स्त्री शाहबाग दौड़ी आईं। इधर कुछ देर पहिले माँ बैठी थीं, सहसा मुँह के बल लेट गईं। आध घण्टे में ही लड़के की माँ पागल के समान आकर उपस्थित हुईं। उनका विश्वास था, नियम का भंग नहीं हुआ। माँ ने जब कहा है यह नियम करो तब लड़का मर नहीं सकता। उन्माद की-सी अवस्था थी। कुछ देर बाद सब लोग उन्हें पकड़ कर ले गये। तब से उनका माँ के प्रति बड़ा अविश्वास हो गया। क्योंकि माँ के नियम का पालन करने पर भी लड़का मर गया, यही उनके अविश्वास का कारण था। कुछ दिनों के बाद किसी एक घटना से उन्हें स्पष्टतः स्मरण हो गया कि माँ ने ठीक ही कहा, उन निर्दिष्ट दिनों के अंदर लड़के ने अच्छा होकर बिछौना छोड़ बरामदे में आकर बातें की थीं। उसी समय वे फिर आश्रम में माँ के निकट आईं और उक्त बात बतला कर पश्चात्ताप कर रोने लगीं। माँ और भी उन्हें यह कह कर सान्त्वना दी, "देखो, जो होने वाला होता है वह अवश्य ही होकर रहता है। मैंने कहा था कि यह लड़का बचेगा नहीं, तुम से भी कहा था नियम यदि बतला भी दूँ तो तुम उसका पालन नहीं कर सकोगी। इसी से कहती हूँ मुझसे विशेष अनुरोध करने से कोई फल नहीं होगा, और जब होने को होता है, अपने आप ही हो जाता है।" इस तरह की विविध प्रकार की बातें करके माँ ने उन्हें सान्त्वना दी। वे अपनी सुविधा के अनुसार माँ के निकट आती हैं, माँ के प्रति उनका अत्यन्त विश्वास है। तब से भोलानाथजी भी फिर विशेष अनुरोध नहीं करते। और जब अच्छा होने वाला होता है तब माँ

स्वयं ही वहाँ उपस्थित होकर कुछ क्रिया कर देती हैं। उससे वह अच्छा हो जाता है।

एक बार हमारे टिकाटूली के मकान में माँ भोजन करने बैठी थीं। गुरुबन्धु भट्टाचार्य समीपवर्ती मकान में ही रहते थे। उनकी स्त्री माँ के निकट आती-जाती थीं। उनके लड़कों को कालाज्वर हुआ था। वे माँ के निकट उसके लिए खूब रोईं और उन्होंने माँ से विनती की। भोला-नाथ ने माँ का प्रसाद ले जाने को कहा। उन्होंने उनके कथनानुसार प्रसाद ले जा कर लड़के को खिलाया। कुछ दिनों के बाद ही लड़का चंगा हो गया। उसके बाद से वे खूब आना-जाना करतीं। एक दिन उन्होंने माँ को अपने घर भोज दिया। किन्तु कुछ समय के बाद उनका उक्त भाव चला गया, माँ के समीप आना-जाना भी बन्द हो गया। हम लोगों ने माँ से कहा। माँ बोलीं, "सभी अच्छे हैं, यदि कोई मेरी निन्दा भी करे तो भी तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। जिसका जितने दिन देना-लेना रहता है उसका उतने दिन आना-जाना होता है। किसी का कोई दोष नहीं है। और निन्दा,—जानो अङ्ग का भूषण है। इस मार्ग में आने पर निन्दा को शरीर का आभूषण बना देना पड़ता है। जैसे सधवा के हाथों का लोहा सौभाग्य सूचित करता है, वैसे ही इस मार्ग में भी निन्दा बड़ी सहायता करती है। इस मार्ग में आने पर निन्दा अवश्यम्भाविनी है। इससे कहती हूँ, निन्दा से न तो डरो और कुपित ही होओ।" माँ तो कहती हैं, किन्तु हम उसका पालन कहाँ कर सकते हैं?

(ख) गुरुबन्धु के लड़के का वृत्तान्त

और एक घटना घटी थी । हमारी ही एक आत्मीया अपने बीमार लड़के को लेकर हमारे टिकाटूली के मकान में आईं । लड़के की कालाज्वर से शोचनीय अवस्था थी । उन्होंने माँ का वृत्तान्त सुना था, पिताजी ने उनसे कहा, "मेरे मकान में दो प्रकार की चिकित्सा होती है—यदि डॉक्टरी चिकित्सा कराना हो तो उसकी व्यवस्था कर देता हूँ, और यदि विश्वास हो तो माँ के निकट छोड़ दो, यदि बचना होगा तो उसी से बच जायगा । दो-एक दिन विचार कर उन्होंने माँ का प्रसाद खिलाकर रखने का ही निश्चय किया । माँ भोग के लिए टिकाटूली के मकान में आई थीं । माँ का भोजन हो गया था । हमारी आत्मीया ने जा कर लड़के के लिए प्रसाद चाहा, माँ चुप रहीं । भोलानाथजी उठ गये । माँ सहसा उठते समय एक गास भात लेकर उस लड़के की माँ के हाथ में देकर ही उठ पड़ीं । इस तरह प्रसाद पाकर उन्होंने बड़ी श्रद्धा से लड़के को खिलाया । आश्चर्य की बात है कि लड़का धीरे-धीरे चंगा हो गया । कई वर्षों के बाद लड़के के पुनः अस्वस्थ होने पर वे फिर ढाका आईं । किन्तु उस समय माँ ढाका न थीं । लड़के की चिकित्सा चलने लगी । वे बड़ी गरीब थीं । वे ढाका में हमारे ही मकान में रहीं । कुछ दिन बाद माँ ढाका आईं । हम लोगों ने शाहबाग में माँ से लड़के का वृत्तान्त कहा । कहते ही माँ बोलीं, "घर भेज दो, वह लड़का बचेगा नहीं । यदि बच जाय तो भ[illegible]वान् की विशेष कृपा समझो ।" हम लोगों ने कहा, गर[illegible] । आदमी है यहाँ

(ग) एक कालाज्वर से पीड़ित लड़के का वृत्तान्त

चिकित्सा हो रही है, गाँव जा कर क्या करेगा।" कुछ दिनों की चिकित्सा के बाद उसका शरीर खूब अच्छा हो गया, हम लोगों ने सोचा भगवान् के विशेष अनुग्रह से बच गया है। किन्तु सहसा एक दिन स्कूल से आकर कै-दस्त होने लगे और दूसरे दिन लगभग ९ बजे के समय वह चल बसा। माँ उस समय ढाका में न थीं।

(घ) क्षय रोगी का वृत्तान्त

फिर एक दिन एक घटना और घटी। एक क्षय के रोगी को उसके आत्मीय जन माँ का नाम सुन कर गाँव से शाहबाग ले आये। माँ के निकट आत्मीयों ने प्रार्थना की कि माँ, हम शाहबाग से रोगी को चंगा किये बिना कदापि नहीं ले जायेंगे। नाच घर के निकट जो दो गोल कमरे थे, उनमें से एक में उस समय माँ सोती थीं, दूसरा कमरा उन लोगों को रहने के लिए दिया गया। कुछ दिनों के बाद एक दिन नाच घर में कीर्तन हो रहा था उसमें माँ की खूब भावावस्था हुई। उक्त अवस्था में कपड़ा ठीक नहीं रहता है यह समझ कर मैं कपड़े का आँचल कमर में खूब कस कर बाँध देती, सिर पर वस्त्र न रहता, नेत्र मुख की तो वह ज्योति क्या सुन्दर दिखाई देती, उसका भाषा द्वारा वर्णन करना असंभव है। जितनी देर तक उक्त भाव रहता, कपड़ा भी वैसा ही रहता। कीर्तन में शरीर की विविध प्रकार की क्रियाएँ हो रही थीं। कुछ देर के बाद भावावस्था में ही सर्वसाधारण की अगम्य भाषा में मधुर स्तोत्र आदि हुए। तदुपरान्त माँ स्थिर भाव से बैठ कर बोलीं, "उसे (अर्थात् उक्त क्षय-रोगी को) यहाँ ले आओ। वह रोगी के साथ पाँच-सात आदमी थे। वे

उठा कर उसे कीर्तन में ले आये। कीर्तन उस समय रुक गया था, माँ जरा घबराहंट के साथ बोलीं—"यहाँ पर उससे लोट-पोट लेने को कहो।" किन्तु आश्चर्य की बात है, वह आदमी स्वयं लेट नहीं सक रहा था, साथ के आदमी पकड़ कर लिटा दें सो भी नहीं कर रहे थे। न मालूम कैसे सब के सब अप्रतिभ हो पड़े थे। माँ ने दो-तीन बार कहा। रोगी ने स्वयं लेटने की कोशिश की, किन्तु लेट न सका। माँ चुप हो गईं। पीछे माँ ने कहा, "देखा, कहने पर भी नहीं हुआ, सब लोग मिल कर भी तो लिटा सकते थे। किन्तु वह नहीं हुआ, जो कुछ होना है वह होगा ही।" तदुपरान्त माँ ने उन्हें घर लौट जाने को कहा। वे रवाना हो गये, रास्ते में ही रोगी मर गया।

योगेश राय की घटना

एक दिन कीर्तन में एक विशेष घटना घटी। टिकाटूली के नृपेन्द्रचन्द्र घोष के साथ योगेशचन्द्र राय नाम के एक सज्जन कभी-कभी शाहबाग आते थे। वे ढाका में ही नौकरी करते थे और विवाह उन्होंने नहीं किया था। वे माँ के सम्बन्ध के अच्छे-अच्छे गाने गाते थे। शाहबाग में कीर्तन में विशेष सहयोग देते न थे, एक किनारे चुपचाप बैठे रहते थे। बहुत देर तक अकेले एकान्त में श्यामा संगीत या और कोई गाना गाते थे। एक दिन कीर्तन हो रहा था, माँ की भावावस्था प्रचुर मात्रा में हो रही थी। सारे नाच घर में घूम रही थीं—कभी उग्रमूर्ति, कभी अतिशान्त आनन्दमय मूर्ति, विविध प्रकार की क्रियाएँ—आसनादि—कर रही थीं। माँ घूमते-घूमते सहसा योगेश बाबू के कन्धे पर चढ़ कर खड़ी

हो गईं, वे स्वाभाविक रूप से ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद माँ उतर पड़ीं और घूमते-घूमते दूसरी ओर चली गईं। सभी योगेश बाबू के भाग्य की सराहना करने लगे। उनसे पूछा गया, माँ के कन्धे पर चढ़ कर खड़ी होने पर उन्हें कैसा लगा ? उन्होंने कहा, एक नन्हीं बच्ची के कन्धे पर चढ़ने पर जैसा प्रतीत होता है वैसा ही प्रतीत हुआ। तब तक माँ का घूँघट भली-भाँति उठा न था—बोलते समय बहुत लम्बा घूँघट काढ़ कर बोलती थीं। कुछ दिनों के बाद सुनने में आया कि योगेश बाबू संन्यासी हो कर कहीं बाहर चले गये हैं। मैंने माँ से आकर कहा, माँ बोलीं, "गया है, फिर आवेगा।" मेरी समझ में कुछ नहीं आया। एक वर्ष के बाद योगेश दादा लौट आये। उस समय सारी घटना सुनी। घटना यों है—एक दिन वे शाहबाग आये। माँ उस समय भी अपरिचित पुरुषों के साथ विशेष बातें नहीं करती थीं। भोलानाथजी की मार्फत माँ ने उन्हें यह आदेश दिया था, "एक वर्ष किसी तरह का सम्बल लिये बिना (अर्थात् अपने संग रुपये-पैसे लिये बिना) नाना स्थानों में घूम आओ। जाने के पहले अपनी माता के दर्शन कर सिर तथा दाढ़ी-मूँछ मुड़ा कर जाना, फिर इस एक वर्ष के बीच हजामत न बनाना। एक वर्ष के बाद आकर मेरे साथ भेंट करना। अवकाश लेकर जाना एवं तुम्हारा मासिक वेतन जिस तरह यहाँ जमा हो वैसा प्रबन्ध कर जाना।" उक्त आदेश पाकर वे चले गये एवं माँ के निर्देशानुसार काम करके पूरे एक वर्ष के बाद आकर शाहबाग में वे पुनः माँ के चरणों के निकट उपस्थित

हुए। उस दिन देखा, वे योगेश बाबू अब नहीं हैं, उस समय उनके लम्बे बाल और दाढ़ी थी। माँ ने उनसे अपनी इस अवस्था का एक फोटो उतरवा कर बाल और दाढ़ी मुड़वा डालने के लिए कहा एवं पहले की नौकरी सँभालने का आदेश दे कर बोलीं, "इस समय यहीं तक रहो, पीछे जैसा होगा देखा जायगा।" आगे कह दिया, "यदि इस एक वर्ष के भीतर कहीं मेरे साथ भेंट हो तो समीप में न आना।" आगे चल कर ये ही रमना आश्रम में अन्नपूर्णा मन्दिर के पुजारी हो नौकरी का त्याग कर आश्रम के ब्रह्मचारी हुए।

प्रायः प्रतिदिन ही शाहबाग में कीर्तन होता था, कभी कीर्तनकारियों का दल आकर 'पाला' गा जाता था। माँ नित्य नूतन लीला कर रही थीं। एक दिन भोजन करने के पूर्व माँ ने कहा, "खुकुनी, मुझे कपड़ा पहना दे तो।" यह कह कर हाथ जोड़ कर खड़ी हो गईं एवं मन्द-मन्द मुसकराने लगीं। भोलानाथजी बोले, "क्या तुमने अपने हाथ से कपड़ा पहनना भी बन्द कर दिया है ?" माँ ने कहा, "नहीं, आज उससे कह रही हूँ।" मैं महिलाओं के समान ठीक तरह से कपड़ा पहनना नहीं जानती हूँ इसी से माँ यह कह रही हैं ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। मैंने बहुत सोच-विचार कर पहना दिया, किन्तु देखा तो उल्टा हो गया था। माँ ने हँसते-हँसते कहा, "आज यह उल्टा ही पहन कर रहूँगी।" पिताजी ने कहा, वह न तो खिलाना जानती है, न कपड़ा पहनाना जानती है किन्तु इसके हाथ से ही तुम सब व्यवस्था करती हो।" माँ ने [illegible]से कहा, "जो

अपना नहीं जानता है मैं उसी से ग्रहण करती हूँ ।" यह बात इतने धीरे कही कि मेरे सिवा शायद किसी दूसरे ने नहीं सुनी । मैं माँ के पास ही खड़ी थी, इसलिए मैं सुन पाई । मैंने सोचा माँ कौन हैं इस बात से ज्ञात होता है, इस कथन से माँ ने अपने मुख से ही अपना स्वरूप प्रकट कर दिया । माँ अनेकों अवसरों पर कहतीं, "तुम लोगों के शुद्ध और पवित्र भाव से रहने पर ही मैं स्वस्थ रहूँगी, तुम लोगों का शुद्ध भाव ही मेरी पुष्टि करेगा । बाहर के खाने से कुछ न होगा । इस कथन से ही हमें आश्चर्य होता । हम सोचते, "सबका शुद्ध भाव ही मेरे शरीर का पोषण करेगा, कौन ऐसी बात कह सकता है ।"

काशी से जितेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ के दर्शन किये—कीर्तन में माँ की भावावस्था देखकर वे अचम्भे में पड़ गये । कई दिन बाद—संभवतः पूजा की छुट्टियों में—श्रीवीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ के दर्शन किये । उन्हें पहले से ही पिताजी के द्वारा माँ का वृत्तान्त ज्ञात था । वे भी माँ के दर्शन कर मुग्ध हुए । वे प्रतिदिन शाहबाग जाकर बहुत देर तक माँ के निकट रहते ।

भक्तजनों का आगमन

दिन में माँ बहुधा पड़ी रहतीं, रात्रि होते ही निद्रा रहित हो उठतीं । माँ अक्सर रात्रि में विशेष सोती न थीं । यदि हम लोग रहते तो हम लोगों के साथ वार्तालाप कर अपने इच्छानुसार घूम-घूम कर रात्रि काट देतीं । यदि कोई न भी रहता तो टहल कर या बैठे बैठे रात बिता

नाना प्रकार के प्रश्न और उनकी मीमांसा

डालतीं। रात में बहुत स्पष्टरूप से बातें करतीं। वीरेन्द्र दादा, अटल दादा आदि अनेक जटिल विषयों में प्रश्न करते, माँ सहज और सरल भाषा में उन प्रश्नों का उत्तर समझा देतीं, वे उत्तर से खूब सन्तुष्ट होते। किन्तु कभी-कभी विशेष बातें न होतीं, क्योंकि सब लोग जिन सब प्रश्नों को मन में सोच कर आते, माँ के निकट आते ही उन सबको भूल जाते। रात को ही बातें करने की सुविधा होती थी। माँ उसी समय विशेष स्पष्ट भाषा में सब कुछ कहतीं। स्मरण नहीं रहता है यह सोच कर कितने ही प्रश्न एक दिन जितेन्द्र दादा ने रात में जाकर माँ से पूछे। माँ ने अपनी स्वाभाविक भाषा में उनकी पूरी मीमांसा कर दी। रात्रि में वीरेन्द्र दादा, अटल दादा और हम कई लोग माँ के साथ बैठते थे, माँ आसन लगा कर बैठती थीं, कितनी ही सुन्दर-सुन्दर बातें कहती थीं। सब लोग मन्त्रमुग्ध होकर सुनते थे। एक दिन वीरेन्द्र दादा ने कहा, "अच्छा, माँ ये जो सब नित्य नये-नये लोग आ रहे हैं, इन सबको देख कर तुम्हारे मन में क्या आता है ?" माँ ने हँसते हुए तुरन्त ही जवाब दिया, "कोई भी नया नहीं है, सभी अति परिचित प्रतीत होते हैं।" और फिर दूसरे दिन पूछा गया, "सभी के मन का भाव क्या सदैव तुम्हारी दृष्टि में भासता है।" माँ ने कहा, "नहीं, सदा सबके मन का भाव नहीं भासता, तो भी जब जिधर दृष्टि जाती है, तुरन्त स्पष्ट रूप से देख लेती हूँ। जैसे क, ख अक्षरों को तो तुम सब लोग जानते हो, किन्तु सदा ही क्या वे तुम्हारी दृष्टि में भासते हैं ? किन्तु जिस समय जिसका स्मरण करते हो, तुरन्त ही

वे हृदय में भासित हो उठते हैं, बस वैसे ही समझो। यह भी एक दृष्टिकोण की बात है। सदा सबको देखकर भी न देखे हुए की तरह व्यवहार हो सकता है। खयाल का मतलब और क्या है ?" फिर एक दिन चर्चा चली,— "अवतार और साधक में क्या भेद है ? साधारण लोग उन्हें कैसे पहचानें ?" माँ कुछ देर तक शान्त भाव से पड़ी रहीं। माँ बातें करते-करते कुछ देर चुप होते ही या तो पड़ी रहतीं नहीं तो स्थिरता के साथ बैठी ही रहतीं। कभी-कभी माँ का बोल बाहर न निकलता। उस दिन भी कुछ देर पड़ी रह कर उठ बैठीं। बोलीं, "यदि वे अपना स्वयं परिचय न दें तो साधारण लोगों के निकट उन्हें पहचानने का उपाय नहीं है।" फिर, थोड़ी देर बाद बोलीं, "जो साधक हैं वे किसी एक नियम में या कई नियमों में अपने को बाँधे रखते हैं, किन्तु जो अवतार हैं वे किसी भी नियम के अधीन नहीं रहते। यद्यपि सब कुछ भली-भाँति उनके भीतर हो जाता है, किन्तु वे किसी में भी बद्ध नहीं रहते। ध्यान से देखने पर उसकी पहचान हो जाती है। हाँ, साधारण लोगों का पहचानना अवश्य मुश्किल है। यह कह कर कुछ देर बाद बातचीत के सिलसिले में माँ ने अपनी अवस्था की बात कही, "इस शरीर के अन्दर न जाने कितनी नियम-क्रियाएँ हो जा रही हैं, किन्तु कोई भी अधिक दिन नहीं रहती, कोई-कोई तो बहुत ही स्वल्प समय तक रहती है। जैसे कि तुम लोगों का पढ़ी हुई पुस्तक के परीक्षा के पूर्व एक बार पन्ना उलट जाने से ही काम चल जाता है।"

दुर्गापूजा आयी। पिताजी उन तीनों दिनों में शाहबाग में माँ की पूजा करने वाले थे। सप्तमी के दिन प्रातःकाल शाहबाग जाकर मैंने देखा कि माँ ने कमरे का दरवाजा बन्द किया है। भोलानाथजी ने कहा, "दिन में बाहर नहीं आवेगी, कमरे में किसी के भी प्रवेश का निषेध किया है। सन्ध्या के बाद बाहर निकलूँगी कहा है।" सारे दिन माँ के साथ भेंट नहीं होगी, यह जान कर हम लोगों की तो भीषण अवस्था हुई। किन्तु उपाय क्या था? भोलानाथजी को कमरे में जाने की अनुमति थी। वे पूजा की सम्पूर्ण साज-सामग्री लेकर कमरे में जाकर माँ की पूजा कर आये। सन्ध्या के बाद माँ ने दरवाजा खोला। सभी लोग माँ के पास जाकर बैठे। हम लोगों ने माँ से पूछा, "यह क्या नियम किया?" माँ ने कहा, "मैं तो कुछ भी नहीं करती हूँ, देखती हूँ कई दिन सूर्य का मुँह नहीं देखने देंगे।" यह कह कर हँसने लगीं। सारी रात माँ के समीप हम कई लोग बैठे रहे। भोर होते ही माँ ने आँखें ढँक लीं, भोलानाथजी से बोलीं, "इन लोगों से (हम लोगों से) बाहर जाने को कहो, मैं देख नहीं सक रही हूँ।" हम लोग उदास होकर चले आये। क्या भयंकर नियम हुआ, कितने दिन रहेगा कौन जाने, यह सोच कर हम लोग बहुत घबरा उठे। किन्तु उपाय क्या था? सप्तमी, अष्टमी और नवमी—तीनों दिन माँ उसी तरह रहीं। भोलानाथजी उन तीनों दिनों में कमरे में जाकर माँ की पूजा कर आये थे। रात्रि में सब लोगों का भोजन होता था। दशमी के दिन कुछ दिन चढ़ने के बाद से ही माँ सब छिपकर चुप्पे-चुप्पे

शारदीय पूजा (सं० १९८३)

बाहर निकल पोखरे में जाकर कूद पड़ीं, हम सब लोग खबर पाकर दौड़े गये, जाकर देखते हैं कि महा आनन्द से माँ तैर रही हैं। यह देख कर पिताजी और भोलानाथजी तथा अन्यान्य बहुत से लोग पोखरे में उतर पड़े। दशमी का स्नान होने लगा। माँ को किसी तरह भी जल से उठते न देख कर भोलानाथजी ने बार-बार निकलने को कहा, क्योंकि फिर क्या कर बैठें, क्या ठीक ? माँ छाती पर्यन्त जल में उतर कर आसन लगा बैठीं, किसी तरह भी नहीं उठ रही थीं। भोलानाथजी ने जबरदस्ती उठाना चाहा, किन्तु उठा न सके, माँ न जाने कैसी भावस्थ हो पड़ीं। माँ ने दोनों हाथ फैला कर जल में कूद पड़ना चाहा और बोलीं, "जल माता मुझे बुला रही हैं।" किसी तरह भी उठाई नहीं गईं। अन्त में सबने मिलकर माँ को उठाया। कपड़े बदला दिये गये। इतने में, माँ के जल में रहते-रहते ही वीरेन्द्र दादा भी अपने मकान से आ पहुँचे—वे पोखरे में उतर पड़े। माँ और हम सब बाहर निकल आये थे ; वे जल में खड़े होकर सन्ध्या कर रहे थे। वे सहसा एक भयङ्कर मूर्ति देख कर मारे भय के काँप उठे, किन्तु उन्होंने सन्ध्या करना छोड़ा नहीं। सन्ध्यावन्दनादि से निवृत्त होकर जब वे माँ को प्रणाम करने आये, माँ उस समय नाच घर में बैठी थीं। (उन दिनों वहीं पर कीर्तन होता था)। वीरेन्द्र दादा के माँ को प्रणाम करते ही माँ ने कहा, "क्या बाबा, डर गये थे ?" वीरेन्द्र दादा अचम्भे में पड़ गये।

चौथा अध्याय

देखते-देखते काली-पूजा आ पहुँची । सभी लोग माँ से इस बार भी काली-पूजा करने का अनुरोध कर रहे थे,

काली-पूजा का इतिहास (सं० १९८३)

किन्तु माँ राजी नहीं हो रही थीं । माँ ने भोलानाथजी से कह दिया था, "तुम भी अब इन सब कामों के लिए मुझसे आग्रह न करना । मैं कोई भी काम कर नहीं सक रही हूँ ।" माँ राजी नहीं हो रही थीं, इसलिए सब चुप हो गये । एक दिन माँ टिकांटूली के मकान में भोग में जा रही थीं । जिस समय लाट साहब की कोठी के निकट पोखरे के समीप गाड़ी पहुँची, उस समय माँ ने देखा एक सजीव काली-मूर्ति—मानो आकाश से माँ की गोद में कूदने के लिए तैयार है । काली के गले में लाल अढ़हुल की माला लटक रही थी । उनके पैरों के नीचे महादेवजी की मूर्ति न थी । माँ ने उस समय कुछ कहा नहीं (बाद में माँ के मुख से यह बात हम लोगों ने सुनी) । टिकाटूली के मकान में जाकर माँ भोजन करने बैठीं, सहसा हाथ उठा कर अन्यमनस्क हुईं[१] । (पीछे माँ ने कहा फिर वही मूर्ति दिखाई

---

१. हम लोग देखते हैं जिस समय माँ के इस प्रकार के विविध भाव होते हैं उस समय कभी कोई न कोई बात अस्पष्टरूप से कहतीं, कभी संभवतः सोई रहतीं । गंभीर रात्रि में चिल्ला कर कु[illegible] कहतीं, हम लोग कुछ न समझ पाते । कभी-कभी शब्द तो सुनते पर [illegible] कहा यह कुछ भी समझ

दी) । उस दिन माँ का हाथ उठाना देख कर भोलानाथजी और हम लोग माँ की ओर देखते रहे । थोड़ी देर बाद माँ ने हाथ नीचे कर लिया । कहा कुछ भी नहीं । गाड़ी में भी मालूम पड़ता है हाथ उठाया था । कुछ दिनों के बाद शाहबाग में रसोई घर में माँ रसोई बना रही थीं, इधर माँ के सोने के गोल कमरे में भूदेव बाबू आकर भोलानाथजी से माँ की काली-पूजा करने की बात पूछ रहे थे । भोलानाथजी ने उनसे कह दिया कि वे पूजा करने के लिए राजी नहीं हो रही हैं । इन सब बातचीतों के बाद सन्ध्या समय कीर्तन में सब एकत्र हुए । सभी को निश्चय हो गया कि काली-पूजा नहीं होगी । बहुत रात बीते हम लोग घर लौट आये । माँ और भोलानाथजी सो गये । उस समय माँ ने भोलानाथजी से पूछा "देखो, आज भूदेव बाबू ने आकर कुछ कहा क्या ?" माँ जहाँ पर रसोई बना रही थीं वहाँ से माँ का शयन-गृह बहुत दूर था । भूदेव बाबू को न तो माँ ने देखा और न किसी के मुख से उनके आने की बात ही सुनी ? माँ के मुँह से उक्त बात सुनकर भोलानाथजी ने कहा, "भूदेव बाबू ने आकर काली-पूजा के लिए बहुत अनुरोध किया ।" माँ बोलीं, "देखो, तुम काली-पूजा क्यों नहीं करते हो ?" इस बात पर भोलानाथजी को प्रतीत हुआ कि माँ काली-पूजा करेंगी । उन्होंने उसी वक्त बाहर सब लोगों को यह समाचार सुनाया कि माँ काली-पूजा करेंगी । बाउल बाबू, सुरेन्द्र बाबू उस समय तक शाहबाग ही थे, उन लोगों

न पाते । शरीर की [illegible]तियाँ भी इस तरह की कितनी ही देखते जो सभी साधारण लोगों की [illegible] नहीं होतीं ।

के साथ भोलानाथजी बातें कर रहे थे, इधर माँ लेटे-लेटे समाधिस्थ हो पड़ीं। काली-पूजा का केवल एक दिन शेष रह गया था, उसी रात को काली-मूर्ति के लिए जाना उचित था। कितनी बड़ी मूर्ति होगी यह प्रश्न उठा; भोलानाथजी ने जाकर माँ से पूछा। माँ तो स्तब्ध होकर लेटी थीं। कुछ भी बोल नहीं सक रही थीं। भोलानाथजी ने बहुत प्रयत्न से उठाया, किन्तु माँ मौन ही रहीं। अन्त में भोलानाथजी को सूझा कि माँ ने जो उस दिन टिकाटूली जाकर दो बार हाथ उठाया था, उसका अर्थ क्या है ? उन्होंने माँ को उठाकर बैठाया और माँ का हाथ ऊँचा कर माप लेकर देखा तो सवा दो हाथ ऊँचाई निकली, उन्हें प्रतीत हुआ कि यही मूर्ति की नाप है। वही नाप बतला दी गई। आगे चल कर माँ ने भोलानाथजी से तथा अन्य सब लोगों से वह घटना कही,—माँ बोलीं, भोलानाथजी ने जो समझा था, वह ठीक ही है। माँ ने कहा, "मूर्ति कितनी बड़ी है यही बात हाथ उठा कर दिखलाई थी।" मूर्ति का प्रबन्ध करने के लिए बाजार जाने पर सुनने में आया कि कारीगर ने एक ही मूर्ति तैयार की है, किन्तु उस समय तक उसे कोई ले नहीं गया। भक्तों ने मूर्ति को नाप कर देखा तो वह ठीक सवा दो हाथ की ही निकली। सबको आश्चर्य हुआ ! वही मूर्ति लाई गई। रंग देख कर माँ ने कहा, "ठीक यही रंग देखा था।" काली-पूजा का सम्पूर्ण आयोजन हुआ। कलकत्ते से उसी दिन वीरेन्द्र दादा, सुरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी की माता, आशु और उसकी माता—सब आ पहुँचे। कीर्तन का भी उत्तम प्रबन्ध हुआ। हम लोग कई थे। पूजा का आयोजन

कर रहे थे। सन्ध्या हो आई, माँ स्थिर धीर भाव से बैठी थीं। भोलानाथजी माँ को उठा कर पोखरे पर स्नान कराने को ले गये। माँ स्नान कर नूतन वस्त्र पहन आईं। शरीर का जम्पर पोखरे पर ही फेंक आईं। अनेक बार मैंने देखा है तालाब के भीतर जम्पर और साड़ियाँ माँ ने फेंक दी हैं। अनेक बार हम लोग देखते ही सन्ध्या समय माँ एकदम निश्चल पत्थर की मूर्ति के तुल्य बैठी रहतीं, नेत्रों के पलक तक न गिरते। उस दिन तो और भी कुछ विशेष अवस्था थी। किसी प्रकार पोखरे से आकर पूजागृह में जा बैठीं। सम्पूर्ण साज-सामग्री तैयार थी, भोलानाथजी माँ से पूजा करने के लिए कह रहे थे। कमरे में लोगों की अथाह भीड़ थी, तिल रखने को भी जगह न थी। कीर्तन के कमरे में भी वैसी ही भीड़ थी। कीर्तन हो रहा था। माँ ने भूमि पर बैठ कर ही पूजा आरंभ की। बाँयें हाथ से पूजा करने लगीं। थोड़ी देर तक पूजा करने के अनन्तर ही सहसा उठ खड़ी हुईं, एवं भोलानाथजी की ओर निहार कर बोलीं, "मैं बैठती हूँ, तुम पूजा करो।" यह कहते ही अट्टहास कर पलक भर में सबके ऊपर से घूम कर एकदम कालीमूर्ति से सट कर बैठ गईं। पहले भोलानाथजी और हम सबने समझा था कि माँ हट कर बैठेंगी। भोलानाथजी से कालीपूजा करने को कह रही थीं। भोलानाथजी भी कह उठे थे, "मैंने पहले ही कह दिया था कि मैं पूजा नहीं कर सकूँगा।" किन्तु बात पूरी होने के पहले ही उक्त अवस्था देख सब लोग दाँतों तले अँगुली दबाने लगे। एक मुहूर्त में माँ के शरीर के कपड़े भी हिर पड़े। चञ्चल जीभ बाहर निकल

गई, पिताजी 'माँ माँ' कह कर ऊँचे स्वर से पुकार उठे। भोलानाथजी पूजा के आसन पर बैठ कर दोनों हाथों से पुष्पाञ्जलि दे रहे थे। मुहूर्त में ही जीभ भीतर चली गई एवं माँ भूमि पर पट होकर लेट गईं। इतनी घटनाओं के घटने में अत्यन्त ही स्वल्प समय लगा। सबके कुछ सोचने या बोलने के पहले ही सब घटनाएँ घट गईं। वृन्दावन नाम के एक वकील थे, वे पूजा के कमरे में ही थे। माँ के घूम कर जाते समय वे निकट ही थे। थोड़ा ताप का उन्हें अनुभव हुआ था और बेहोश होकर वे गिर पड़े थे। इधर माँ मुँह के बल पट होकर पड़ी-पड़ी कह रही थीं, "सभी लोग नेत्र बन्द कर लो।" सभी ने नेत्र बन्द कर लिये। माँ उसी तरह पड़ी-पड़ी कह रही थीं, "महादेइया आँखें खोले हैं।" महादेइया बगीचे के माली की स्त्री थी, वह कमरे के बाहर कुछ दूर पर पेड़ के नीचे खड़ी थी। माँ कैसे देख रही थीं यह कौन जाने ? उससे कहने पर उसने भी नेत्र बन्द कर लिये। बहुत देर बाद भोलानाथजी के आदेश से सबने आँखें खोल कर देखा तो माँ काली-मूर्ति के समीप में ही बैठी थीं, क्या दिव्य आनन्दमयी मूर्ति थी मानो राजराजेश्वरी हों, फूलों से सारा शरीर भर गया था। भोलानाथजी फूल और बेल के पत्तों से माँ की पूजा कर रहे थे। कुछ देर बाद पूजा समाप्त हो गई। हवन आरम्भ होने का समय आया। माँ ने अत्यन्त अस्पष्ट

कालीपूजा का हवन

भाषा में धीरे से कहा, "आज की पूजा में हवन अनावश्यक है।" तदुपरान्त बोलीं, "उन्होंने आयोजन किया है, हो।"

हवन भी हुआ । वीरेन्द्र दादा ने भोलानाथजी से कहा, "आज हम सभी लोग माँ के चरणों में पुष्पाञ्जलि चढ़ाना चाहते हैं । उन्होंने अनुमति दे दी । उस दिन बहुत लोगों ने पुष्पाञ्जलि दी । बहुत देर बाद भोलानाथजी और माँ भोजन करने बैठे । उन सब अवस्थाओं को देख कर हम लोगों ने मन ही मन निश्चय किया कि आज से माँ को सदा उसी भाव से देखेंगे । किन्तु उपाय क्या था ? फिर जब माँ साधारण भाव से बातचीत करतीं, हँसी-ठट्टा करतीं तभी उसे सब भूल जाते । माँ का भोजन हो जाने पर सभी ने प्रसाद पाया । प्रायः सभी माँ को प्रणाम कर बिदा हुए । केवल हम कुछ लोग रह गये थे । अमावास्या और पूर्णिमा को भोग के दिन मैं शाहबाग ही रहती थी । माँ बैठी थीं, पिताजी, वीरेन्द्र दादा, अटल दादा, नन्दू और कमलाकान्त आदि समीप बैठे थे । भोलानाथजी भी विश्राम कर रहे थे । एकाएक माँ ने मुझसे कहा, "एक बर्तन में हवन की अग्नि कुछ उठा ला तो ।" मैं ले आई । माँ अग्नि के बर्तन को नचाते-नचाते बोलीं, "देखते क्या हो, इस यज्ञ की अग्नि को महायज्ञ में लगा दूँगी ।" तदनन्तर बोलीं, "अच्छा, इस अग्नि को लेकर कालीजी के कमरे में कौन बैठ सकता है ?" वीरेन्द्र दादा बोल उठे "ना माँ, मैं बैठ न सकूँगा, मेरा अभी तक संसार में कर्तव्य-ज्ञान है ।" फिर भी माँ ने कहा, "कौन बैठ सकता है ?" पिताजी मालूम पड़ता है झपकी ले रहे थे । उन्होंने जाग कर उक्त बात का तात्पर्य भली-भाँति समझा या नहीं मैं नहीं जानती । बोले "मैं बैठ सकता हूँ, भय किस बात का ?" काली के मन्दिर में बैठे रहने में

किसी को डर लगेगा कि नहीं ये ही सब बातें इससे पहले उन्होंने सुनी थीं; तदुपरान्त थोड़ी तन्द्रा-सी आ गई थी। माँ उक्त कथन सुनते ही बोलीं, "ठीक तो है, बाल-बच्चों से पूछो।" बच्चों ने कहा, "अच्छा तो है।" "बाबा कर सकें तो अच्छा ही है। उसी समय माँ ने पिताजी के हाथ में अग्नि का बर्तन दे दिया, और कालीजी के कमरे में जाकर उनसे बैठने को कहा। पिताजी उसी समय जाकर बैठ गये। हम सब लोगों से चले जाने को कहने पर हम सब चले गये। तदुपरान्त माँ एक कम्बल स्वयं ही पिताजी के थोड़ा विश्राम करने के लिए बिछा आईं। तभी से चार-पाँच महीने तक पिताजी इस तरह उसी कमरे में रहे। अग्नि की रक्षा करते थे। दोपहर में एक बार मेडिकल स्कूल जाते थे। अपराह्णोत्तर लौटते समय मकान में हो आते थे। मैं दूसरे दिन एक कम्बल ला कर उस कमरे में आसन लगा आई। कमलाकान्त उसी कमरे में रहता था। दिन-रात अग्नि की रखवाली होने लगी। हम ही कई लोग अग्निरक्षा में नियुक्त हुए। इधर दूसरे दिन काली-प्रतिमा का विसर्जन होने वाला था, महिलाएँ सब अपराह्ण के बाद आईं। निरञ्जन बाबू की स्त्री ने कहा, "माँ, प्रतिमा इतनी सुन्दर है कि इसका विसर्जन करने में मुझे क्लेश हो रहा है।" माँ ने तुरन्त कहा,

प्रतिमा-रक्षा

यदि तुम्हें कष्ट हो रहा है तो रहे, विसर्जन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम कोई उसे बुला तो लाये नहीं हैं; स्वयं ही आई है। जितने दिन रहना हो रहे।" इस तरह दूसरे के मुँह से कहला कर प्रतिमा रख [illegible]ी।

काली को प्रतिदिन लाल अढ़हुल की माला चढ़ाने का भार नवागत विक्रमपुरनिवासी कमलाकान्त नामक ब्रह्मचारी के ऊपर पड़ा। कमलाकान्त ने मैट्रिक पास किया था, विवाह आदि करता न था। उसके पिता-माता कोई न थे। वह ननिहाल में पला था। बीच में वह बहुत सख्त बीमार पड़ा था। माँ की कृपा से आरोग्य लाभ कर माँ के चरणों में ही रह गया। लड़का अत्यन्त कष्टसहिष्णु था।

कमलकान्त

(क) एक दिन की एक घटना का स्मरण हो आया है—एक दिन शाहबाग में जाकर मैंने देखा माँ बहुत अधिक खाँस रही थीं, खाँसी बंद ही नहीं हो रही थी। उस समय शीत की ऋतु थी, साँझ के समय माँ ने बाल्टी से जल डालने को कहा। जाड़े के मौसम में सन्ध्या के बाद ठंडे जल से खूब स्नान किया। कमरे में खटाई रखी थी, मुझसे खिला देने को कहा, खूब खाई और सो गईं। दूसरे दिन फिर खाँसी नहीं रही।

कई एक घटनाएँ

(ख) देवघर में रहते समय नन्दू के हाथ में कितने ही फोड़े निकल आये। वह अपने हाथ से खा नहीं सकता था, मैं खिला देती थी। कलकत्ता आने के बाद एक दिन उसके हाथ में बड़ी व्यथा हुई, माँ कहीं घूमने गई थीं। नन्दू को उस दिन रीस आ गई। वह माँ को अपनी जननी के तुल्य ही देखता और उसी तरह व्यवहार करता था। माँ भी उस पर सन्तान के तुल्य ही बर्ताव करती थीं। उसने रीस वश

कुछ खाया नहीं, माँ ने लौट आकर उससे बहुत कुछ कहा-सुना तब जाकर उसने खाया। करुणामयी माँ भक्त के लिए कितना कष्ट नहीं सहतीं। उस दिन उन्होंने स्वयं ही नन्दू का घाव धो दिया। तब से प्रतिदिन ही माँ घाव धो देती थीं, माँ ने कहा था, "सात दिनों के अन्दर यह अपने हाथ से भात खा सकेगा।" सातवें दिन हमारे घर माँ का भोग होने वाला था। भोग के पहले दिन रात्रि से ही नन्दू के पेट में दर्द होने के कारण रातभर उसे कै हुई। उसको उक्त दर्द पहले भी दो-एक बार हुआ था। उस अवस्था में वह चार-पाँच दिन केवल बार्ली और जल पी कर रहता था। दूसरे दिन माँ आईं, भोग लगा; माँ बोलीं, "नन्दू को बुला ला।" उसे उस समय भीषण मतली आ रही थी, वह रोगशय्या पर ही था। किन्तु माँ के आदेश से बुला लिया गया। माँ बोलीं, "आज तुम्हारे अपने हाथ से खाने की बात थी—खाओ, जितना खा सको खाओ।" यह कह कर समीप में बैठी रहीं। आश्चर्य की बात है कि जो कुछ भी मुँह में नहीं दे सक रहा था उसने घी, भात, मछली की तरकारी सब कुछ खाया। वह उसी दिन चंगा हो गया। उसका अपने हाथ से खाना शुरू हुआ।

(ग) एक दिन एक सज्जन अपनी एक अशक्त लड़की को डॉक्टर गुरुप्रसाद बाबू की सलाह से माँ को दिखाने लाये। भोलानाथजी के माँ से कुछ कहने के लिए विशेष अनुरोध करने पर माँ के मुँह से सहसा निकला, "बृहस्पति के दिन ले आवें।" भोलानाथजी ने वही कह दिया। तदनुसार वे बृहस्पति के दिन आ पहुँचे। माँ उस समय

भोग में पान देने के लिए सुपारी काट रही थीं। उस लड़की को माँ के पास सुला दिया गया। माँ ने एक टुकड़ा सुपारी लड़की की ओर जमीन पर फेंक कर उसे लेने को कहा। लड़की ने बड़े कष्ट से उसे लिया। माँ ने भोलानाथजी से कहा, "इस वक्त इन लोगों से जाने को कह दो।" वही हुआ। दूसरे दिन लड़की के पिता ने आकर कहा, "क्या आश्चर्य है, आज सड़क पर एक बाजा जा रहा था। मेरी रुग्ण लड़की पड़े-पड़े अपने भाई-बहनों का खेल देख रही थी। एकाएक बाजा सुन वह अपनी बीमारी की बात भूल कर भाई-बहनों के साथ बाहर चली गई। इस समय वह खूब चल-फिर रही है। माँ की अपार कृपा है।" तदनन्तर एक दिन लड़की के पिता शाहबाग आकर माँ को भोग दे गये।

(घ) एक बार एक घटना और हुई थी। ढाका गेण्डरिया में एक सज्जन का लड़का बहुत अस्वस्थ था, इसलिए वे शाहबाग आये। उनके शाहबाग पहुँचने के कुछ पहले तक माँ बाहर ही बैठी थीं। एकाएक उठ कर घूँघट काढ़ कर कमरे के भीतर चली गईं। मैंने सोचा क्या हुआ ? कौन आ रहा है ? कुछ देर बाद देखती हूँ कि गेण्डरिया से दो भद्र पुरुष आकर माँ को ले जाने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। रोगी मृतप्राय तथा तीन दिनों से बेहोश था। तब मुझे मालूम हुआ कि माँ को पहले ही यह खबर लग गई थी, इसलिए वे उठ कर चली गईं। भोलानाथजी ने जाकर माँ से कहा। मैं पहले ही कह चुकी हूँ, माँ इस समय फिर विशेष आपत्ति न करतीं। उस मकान में गईं।

जाते ही दरवाजे से घर में ज्यों ही प्रवेश किया, रोगी की स्त्री ने आकर पैर छू कर चरण-धूलि ली, माँ बाधा पाकर बैठ गईं। ऐसा होने पर बहुधा विपरीत फल होता है। उसके पश्चात् बहुत देर बाद माँ उठ कर रोगी की चौकी के निकट जा बैठीं। रोगी बेहोश था। जीभ बाहर निकली थी। उसे भली-भाँति सुलाया न था। माँ ने कहा, "भलीभाँति सुला दो।" यह कह कर स्वयं पकड़ने गईं। कर्मों का क्या फेर था, वे नये लोग थे, केवल माँ का नाम सुन कर आये थे। ज्यों ही माँ भलीभाँति सुलाने के लिए उद्यत हुईं त्यों ही आत्मीय लोगों में से कोई कह उठा, "हिलावें नहीं, डॉक्टर ने मना कर रखा है।" माँ ने उसी दम हाथ समेट लिया। दोनों ही बार बाधा पहुँची। किसी का कुछ दोष नहीं, वे ही कैसे जानते। माँ ने कहा, "जो होने को होता है वह इसी तरह हो जाता है।" कुछ देर बाद माँ उठ कर चली आईं। दूसरे दिन फिर माँ को लेने आये। माँ जाते समय पिताजी को और मुझे साथ ले गईं। रोगी की अवस्था ज्यों की त्यों थी। माँ वहाँ जाकर दरवाजे के पास जमीन पर बैठ गईं। भोलानाथजी को अत्यन्त दुःख हो रहा था। किन्तु माँ ने मना कर रखा था, इसलिए माँ से कुछ आग्रह नहीं कर सक रहे थे। पिताजी से जाकर उन्होंने कहा, "आप जाकर अपनी माँ से इस रोगी के लिए जरा अनुरोध कर दें। पिताजी ने भोलानाथजी के कथन पर माँ के निकट जाकर हाथ जोड़कर ज्यों ही माँ से कुछ कहा त्यों ही माँ पिताजी की ओर इस तरह देखने लगीं कि पिताजी के मुँह से फिर वचन नहीं निकला। कुछ देर बाद हम लोग चले

आये। दूसरे दिन शाम के वक्त शाहबाग फिर वहाँ से आदमी आया। माँ फिर नहीं गईं, कह दिया, "कल साँझ से पहले अब न आना।" दूसरे दिन अपराह्न के समय माँ शाहबाग में पहले जिस कमरे में सोती थीं, उस कमरे में बैठी थीं, मुझसे बोलीं, "रसोई घर में आग है, कुछ ले आ तो।" मैं एक बर्तन में रख कर कुछ अग्नि ले आई। माँ ज्यों ही हाथ डालने के लिए उद्यत हुईं पिताजी ने मुझे धमका कर आग हटा ले जाने को कहा। मैं क्या करती, मैंने माँ से कहा, "मैं दोनों (माँ तथा पिताजी) का ही आदेश पालन करने के लिए बाध्य हूँ। तुमने कहा था, इसलिए आग ले आई। पिताजी निषेध कर रहे हैं, इसलिए ले गई।" यह कह कर मैंने आग हटा दी। थोड़ी देर बाद एक सज्जन आये। माँ ने उनसे कहा, "तुम्हारे पास दियासलाई है ? एक तिनका जलाओ तो।" वह जानता न था, वह एक तिनका जला कर जब माँ के समीप ले गया तो माँ उसमें अपने हाथ की अँगुली लगा कर बैठी रहीं। उनसे बोलीं, "जब तक ठीक तरह से जलता है, पकड़े रहो।" उन्होंने वैसा ही किया। जितनी देर तक तिनका जला, माँ उसमें अँगुली रख कर स्थिरता के साथ बैठी रहीं। सन्ध्या के बाद ही खबर मिली कि गेण्डारिया का रोगी मर गया है। उसी दिन अपराह्न के बाद उसका संस्कार किया गया था। माँ जरा हँसते बोलीं, "इसीलिए तो थोड़ी देर पहले मैंने अपने इस शरीर को भी जरा जला लिया, सभी तो मेरे ही शरीर हैं।" हम लोगों को आश्चर्य हुआ।

कई दिन बाद माँ एक दिन टिकाटूली के मकान में कीर्तन में गई थीं। रात्रि में भी वहीं रहने वाली थीं। मुझे भयानक बुखार आया था। कीर्तन, भोग आदि सब हो गये थे। सब भक्त भी बिदा हो गये थे। रात्रि में सोना होगा ऐसा माँ का विशेष भाव न था। भोलानाथजी सो गये। माँ ने उनसे पूछा, "मैं क्या करूँ?" उन्होंने कहा, "खुकुनी को ज्वर आया है, उसी कमरे में जरा जाओ न।" माँ वहाँ से उठ कर जिस कमरे में मैं सोई थी उस कमरे में आकर जमीन पर बैठ गईं। माँ जमीन पर ही बैठतीं। आसन देने का नियम हम लोगों का भी न था, माँ आसन पर बैठती भी नहीं थीं। बहुत दिनों के बाद आसन पर बैठने का नियम हुआ है। एक आत्मीय महिला बैठ कर मुझे पङ्खा झल रही थीं। किन्तु रात्रि अधिक बीत जाने के कारण वे ऊँघने लगी थीं। माँ बैठे-बैठे वह देख रही थीं। कुछ देर बाद माँ ने उन्हें उठा दिया। कमरे में और कोई न था, गहरी रात थी, सभी लोग सोये थे। निकट ही बरामदे में जल रखा था, माँ ने स्वयं ही बाल्टी से जल लाकर भली-भाँति मेरा सिर धो दिया। तदनन्तर आँचल से सिर पोछ दिया। जल से जितनी ठंडी पड़नी चाहिये पड़ी हो चाहे न पड़ी हो, पर माँ की उस करुणा से मेरा हृदय भर उठा। तदुपरान्त माँ मेरे बिछौने पर बैठ कर एक हाथ से पङ्खा झलने लगीं और दूसरे हाथ से मेरा शरीर सहलाने लगीं। कुछ दिन पहले माँ ने एक दिन कहा था, "कोई मुझे अधिक छूना नहीं।" मैं सदा ही पीछे-पीछे रहती,

ज्वरावस्था में मेरे शरीर पर माँ का हाथ फेरना

इसलिए उक्त आदेश से मुझे भीषण दुःख हुआ था। एक दिन अत्यन्त कष्ट से मैंने माँ से कहा था, "इस प्रकार दूर-दूर रहना अत्यन्त क्लेशकारी है। मेरी इच्छा होती है कि मैं खूब बीमार पड़ूँ, उस समय तो तुम मेरे शरीर पर हाथ रखोगी। उस समय तो तुम्हारा स्पर्श हो सकेगा।" इस तरह की क्या-क्या बातें की थीं। उस समय माँ कह रही थीं, "क्यों इस वक्त तो शरीर पर हाथ फेर रही हूँ, अच्छा लग रहा है न ?" मुझे उस समय भीषण ज्वर-पीड़ा हो रही थी। फिर भी उक्त करुणा से मुझे जो आनन्द मिला, उसका वर्णन नहीं कर सकती। थोड़ा हँस कर मैंने माँ से कहा, "बहुत आराम और आनन्द मिल रहा है" यह कह कर मैंने माँ के चरणों में हाथ लगाया। भोर होते न होते ही माँ उठ गईं और मेज के ऊपर चादर ओढ़ कर सो गईं। यही उनका साधारणतः सोने का स्वभाव था। केवल भूमि पर ही अधिकतर पड़ी रहतीं, जाड़ा, गर्मी जल-कीचड़ कुछ भी न समझतीं, जहाँ-तहाँ पड़ी रहतीं।

सं० १९८३ की दुर्गापूजा के समय चटगाँव के शशिबाबू (श्रीयुत् शशिभूषणदास गुप्त) शाहबाग आये थे। माँ के दर्शन करने और उनका फोटो लेने की उनकी इच्छा थी। माँ उस दिन प्रातःकाल से ही छत के कमरे में जाकर सोई थीं। अटल दादा की बहू को बाहर बैठा रखा था। उनसे कह दिया था, "कोई भीतर मेरे पास न आवे।" इसी बीच में ज्योतिष दादा और शशिबाबू को साथ लेकर भोलानाथजी वहाँ उपस्थित हुए। माँ उस समय

माँ के फोटो में ज्योति का आभास—आश्विन, १९८३

समाधि अवस्था में थीं। देह से चारों ओर एक दिव्य ज्योति छिटक रही थी। समाधि से व्युत्थित होने के अनन्तर भी कुछ देर तक वह ज्योति विद्यमान थी। लेकिन वह उस समय संकुचित होकर ललाट पर सफेद बिन्दु के रूप में प्रकाशित हो रही थी। एकदम छिपी नहीं। माँ को पकड़ कर फोटो खींचने के लिए निर्दिष्ट स्थान पर बैठाया गया। वे उस समय भी भावावस्था में ही थीं—भलीभाँति नेत्र खोल नहीं सक रही थीं। शशिबाबू बहुत से प्लेटों को व्यवहार में लाये थे, किन्तु सबके सब बरबाद हो गये थे। अन्तिम फोटो अच्छा उतरा था। उसमें दो विशेषताएँ दिखलाई दीं। एक तो माँ के ललाट पर एक गोलाकार ज्योति का चिह्न उठा। दूसरी विशेषता माँ के पीछे ज्योतिष बाबू का चित्र उठा जब कि ज्योतिष बाबू फोटो खींचते समय माँ के पीछे न थे[1]।

पूर्वोक्त कालीपूजा के अनन्तर ही आशु की (टिकाटूली

---

१. माँ के मुख से मैंने सुना है, फोटों खींचते समय उनके मन में ज्योतिष बाबू की स्मृति जागी थी। उनके भीतर का उक्त भाव तीव्र होने के कारण स्पष्ट, घनीभूत और साकार होकर प्लेट पर प्रतिबिम्बित हुआ था। उस समय माँ एक विशेष अवस्था में थीं यह बात पहले ही कही जा चुकी है। इसके पहले भी एक बार फोटो खींचते समय भावावस्था में माँ का बायाँ हाथ एक बारगी ऊपर को उठ गया था। उस फोटो में भी पूर्ण चन्द्राकार चिह्न उठा था। बहुत पहले भी एक बार फोटो में सिन्दूर के बिन्दु के बीच में एक ज्योति बिन्दु के सदृश उठी थीं।

रामकृष्ण रोड के आशुतोष बन्द्योपाध्याय की) माँ ने कोई एक स्वप्न देख कर काली-पूजा की।

आशु की माँ की और वीरेन्द्र दादा की काली पूजा

कुछ दिनों के बाद वीरेन्द्र दादा ने भी एक स्वप्न देखा, उसपर उन्होंने भी काली-पूजा करने का निश्चय किया। सब आयो-जन हो गया। बलिदान का भी निश्चय हुआ। मगर खड्ग पर धार देते समय वीरेन्द्र दादा की अँगुली कट गई। खबर पाकर माँ ने कहा, "अच्छा हुआ, मैं भी सोच रही थी, थोड़ा सा रक्त आवश्यक था। एक बेल के पत्ते में थोड़ा रक्त रख देना।" वैसा ही किया गया। भोलानाथजी ने पूजा की। माँ सोई रहीं। एक आदमी ने एक लाल साड़ी माँ को दी थी उसे ही सिर के नीचे रखकर माँ पास ही में भूमि पर सोई थीं। पूजा हो गई। बलि का सम्पूर्ण इन्तजाम हो चुका था, भोलानाथजी बलि देने गये। ज्यों ही बलि देने को तैयार हुए, त्यों ही माँ एकाएक हड़बड़ाती हुई उठ कर दौड़ी गईं और बकरे के गले में हाथ रख कर बैठ गईं। उनका अस्तव्यस्त वेश और नेत्र मानो झकझका रहे थे। भोलानाथजी की ओर निहार कर माँ ने कहा, "बलि नहीं दे सकोगे।" सभी अवाक् थे, भोलानाथजी ने खड्ग नीचे कर लिया। माँ ने बकरे के शरीर पर हाथ फेर दिया। माँ क्या करती हैं, यह सभी देख रहे थे। उन्होंने आशु को बुलाया और उससे उनके सिर के नीचे जो लाल साड़ी थी, उसे पहन कर आने को कहा। उसके लाल साड़ी पहन कर आते ही उसके कपाल पर सिन्दूर का टीका लगा दिया। अनन्तर माँ ने आशु की माँ

से कहा, "तुम लड़के को छोड़ दे सकोगी ?" वे राजी हो गईं। बोलीं, "तुम यदि कहो तो छोड़ सकती हूँ।" तब माँ ने कहा, "केवल अकेले तुम्हारा ही तो लड़का नहीं है, लड़के के पिता (यतीन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय) क्यों छोड़ेंगे ?" यह कह कर जरा हँसते हुए आशु से बोलीं, "बकरे को गोद में रख कर मेरे साथ चल।" कहते ही माँ ने चलना आरंभ कर दिया, साथ-साथ हम भी कई लोग उजाला लेकर चले, आशु भी बकरे को गोद में लेकर चला। वर्तमान रमनाश्रम के पीछे की ओर मैदान में जो एक गोल पोखरा है, माँ ने उसके निकट जाकर बकरे को छोड़ देने को कहा और बकरे के सम्पूर्ण शरीर पर अपना पैर उठा कर फेर दिया, और शाहबाग की ओर लौट चलीं। बकरा माँ के पीछे-पीछे चला। माँ जाकर जहाँ बैठीं बकरा भी वहीं उनके पास ही बैठा। पूजा हो गई, सब लोग प्रसाद पाकर बिदा हुए। बकरा शाहबाग ही रह गया। तदनन्तर उक्त बकरा कीर्तन के समय माँ की गोद के निकट बैठा रहता। रात्रि में माँ की चौकी के नीचे जाकर सो रहता। अक्सर वह माँ के पीछे-पीछे ही रहता। एक दिन बहुत जाड़ा पड़ रहा था, माँ ने एक कम्बल बकरे के शरीर पर डाल कर उसे सुला दिया और बोलीं, "पूर्व जन्म में वह कम्बलधारी ही था, इस जन्म में भी शरीर पर कम्बल पड़ गया।" वीरेन्द्र दादा ने बहुत बार पूछा था, "यह बकरा कौन था ?" बातचीत के सिलसिले में एक दिन माँ ने कहा था, "संन्यासी था।" तदुपरान्त मैदान में घास चर कर बकरा खूब मोटा-ताजा हो उठा। एक बार माँ के ढाका के

बाहर जाने पर बकरा अहाता लाँघ कर कहीं चला गया ।

कुछ दिनों के बाद माँ ने काली की मूर्ति को गोल कमरे से दालान के कोने के कमरे में ले जाने को कहा । उक्त दालान में वे पहले रहतीं । माँ के आदेश से बहुत तड़के भोर में योगेश बाबू, सुरेन्द्र बाबू, विनय बाबू आदि स्नान कर मूर्ति को गोल कमरे से उठा ले गये । उसी दिन रात्रि में भीषण आँधी आई जिससे गोल कमरे का दरवाजा टूट गया और काली की मूर्ति जहाँ पर स्थापित थी वहीं पर गिर गया । उस समय सभी के समझ में यह आया कि माँ ने क्यों मूर्ति हटाई थी ।

कालीजी का स्थान-परिवर्तन

पहले-पहले कीर्तन में धूप नहीं जलाई जाती थी । एक दिन कीर्तन के समय खूब धूप की सुगन्धि प्रकट हुई । कीर्तन के बाद भी सारे बगीचे में धूप की गन्ध का सभी को अनुभव हुआ । उस वक्त एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि "इतनी धूप की सुगन्ध कहाँ से आई है ? धूप तो जलाई ही नहीं गई ।" इस पर जटू बोला, "क्यों, मैंने तो कीर्तन के समय खुकुनी दीदी को धूप जलाते देखा था ।" पर वास्तव में धूप जलाई नहीं गई थी । तभी से माँ ने आदेश दिया, "कीर्तन में प्रतिदिन ही धूप जलाई जाय ।"

कीर्तन में धूप की बात

माँ की अवस्था देखते तो दिन पर दिन मानो उनका काम करना बन्द होते जा रहा था । रसोई बनाते समय हाथ

माँ की अवस्था का परिवर्तन

टेढ़ा हो जाने लगा था। माँ कहतीं, "देख, गृहस्थी को मैं नहीं छोड़ रही हूँ, गृहस्थी ही मुझे छोड़ रही है।" घर का कामकाज, सेवा कुछ भी माँ ने स्वेच्छा से नहीं छोड़ा। किन्तु सबने मानो माँ को छोड़ दिया। भोलानाथजी की सेवा सब अपने हाथ से ही करतीं। असमर्थ होने पर भी भोलानाथजी के कहने पर बायें हाथ से ही बड़ी कठिनाई के साथ रसोई बना डालती थीं। एक दिन हमारे टिकाटूली के मकान में रात्रि में भोजनोपरान्त भोलानाथजी के खाट पर लेट कर माँ से कहा, "पैर दबा देना तो।" माँ पैरों के नीचे बैठ कर पैर दबाने लगीं। मगर हाथ मुड़ जाने लगा, दबा न सकीं। भोलानाथजी सोये थे। इसलिए उन्होंने उक्त अवस्था देखी नहीं, अतः वे बोले, "जरा जोर लगाओ न।" ज्यों ही उन्होंने ऐसा कहा, माँ तुरन्त ही बच्चे के समान ऊँचे स्वर से रोने लगीं एवं रोते-रोते बोलीं, "मैं नहीं कर सक रही हूँ यह तुम नहीं जानते हो।" तुरन्त ही भोलानाथजी उठ बैठे और बोले, "जरूरत नहीं है।" किन्तु सुने कौन ? रोते-रोते माँ समाधिस्थ हो पड़ीं। सारी रात उसी तरह बीती, दूसरे दिन सबेरे बहुत दिन चढ़ने पर माँ को उठाया गया। तदुपरान्त शाहबाग चली गईं। इस प्रकार प्रत्येक काम छोड़ती जा रही थीं। कभी शायद एक आध काम करने की चेष्टा करतीं तो वह सहसा हो जाता था, काजकाम करना प्रायः बन्द हो गया था। एक दिन बिना खाये ही कितने ही काम श्रान्ति-क्लान्तिविहीन होकर किये हैं, आज बहुत से कामों के रहते भी उनका उनकी

ओर ध्यान ही नहीं है, करने के लिए उद्यत होने पर ठीक-ठीक नहीं होता है। गिन कर केवल नौ भात (पके चावल) खातीं, तदुपरान्त तीन भात खाने का नियम भी बहुत दिन चला। आश्चर्य की बात है कि तीन भात से अधिक भात का एक कण गले के अन्दर जाने पर भी उसे बाहर फेंक देतीं, निगल ही न सकतीं। यह जो तीन भात खाने की बात कही है उससे अधिक कुछ भी नहीं खाती थीं।

कुछ दिनों के बाद पारुलदिया रायबहादुर के मकान में माँ और भोलानाथजी को ले गये—साथ में मैं गई। पहले की तरह प्रायः रोज ही मुझे ज्वर आ जाता था, मैं कोई औषध लेतीं न थी। माँ जल-भात, दही-भात जो खाने को कहतीं वही खाती थी। ज्वर में ही पारुलदिया गई। मैं विशेष सोती न थी, माँ के साथ ही साथ घूमती थी। पारुलदिया में माँ ने मुझसे और भोलानाथजी से कहा

ढाका—
पारुलदिया गमन

"चलो, हम पोखरे में स्नान कर आवें।" ज्वर में माँ के साथ स्नान कर आई। २-३ महीने का ज्वर स्नान करने के अनन्तर ही टूट गया, फिर नहीं आया। जाकर देखा तो कालीपूजा होने वाली थी, सब लोग माँ से पूजा करने के लिए अनुरोध कर रहे थे। माँ राजी नहीं हो रही थीं। पुरोहित का प्रबन्ध करने की चेष्टा की गई थी। किन्तु किसी घटना से पुरोहित मिला नहीं। अगत्या भोलानाथजी के कहने पर माँ पूजा करने के लिए राजी हुईं। माँ ने पूजा की; भोलानाथजी ने भी हवन आदि करके पूजा में सहायता पहुँचाई। उक्त घर के स्त्री-पुरुषों में बहुत से विलायत हो

आये थे, इसलिए उक्त घर में पूजा का कोई सिलसिला न था। माँ का सत्संग मिलने के कारण ही उस पूजा का आयोजन हुआ था।

भोर में पिताजी पारुलदिया जा पहुँचे। उसी दिन हम लोग वहाँ से रवाना होकर चले आये। माँ नाव से आईं, पिताजी भी साथ थे। पिताजी ने माँ से अनुरोध किया, "बहुत ही निकट हमारा मकान है, एकबार पूर्वजों की थाती पवित्र कर जाओ।" भोलानाथजी राजी हो गये, पिताजी माँ को अपने मकान राजदिया गाँव में ले गये, वहाँ भोग हुआ। भोग के अनन्तर ही माँ रवाना हुईं। पिताजी भी ढाका चले गये। भोलानाथजी, माँ और मैं—तीनों वहाँ से सीतानाथ कुशारीजी के मकान में (मरणी के मकान में) गये। राजदिया से थोड़ी दूर पर भोलानाथजी का मकान है, हम लोग वहाँ भी गये। मकान में उस समय कोई न था। माँ मकान में ठहरीं नहीं। भोलानाथजी और हम लोग देख आये। कुशारीजी माँ के प्रति देवी के तुल्य श्रद्धा रखते थे। माँ को पाकर उन्होंने अपने को कृतार्थ माना और माँ के समीप बैठ कर सप्तशती का पाठ किया। वहाँ पर भी कोई एक पूजा हुई। पूजा के पहले ही हम लोग ढाका चले आये। राजदिया से माँ एक भक्त के अनुरोध पर आउटसाही गाँव में भी गई थीं।

राजदिया तथा अन्यान्य गाँवों में गमन

कुछ दिनों के बाद रायबहादुर की माता के श्राद्ध के उपलक्ष्य में माँ को पुनः पारुलदिया ले गये। उस बार भी

पुनः पारुलदिया गमन—
रायबहादुर की माता का
श्राद्ध—अगहन, १९८३

मैं, भोलानाथजी और एक माली माँ के साथ गये। राय बहादुर ने नवीन डॉक्टरी दवाखाना तथा डॉक्टर के रहने के लिए मकान बनवाया था। उन्होंने उसी मकान में रहने के लिए माँ को स्थान दिया। हम तीन जनों की रसोई वहीं बनती थी। रायबहादुर ने माँ से कहा, "हमारे कुलगुरु नहीं हैं, मैं आपको ही अपना कुलगुरु समझता हूँ। इसलिए जननी का श्राद्ध करने के लिए बैठते समय आप सामने बैठी रहें, ऐसी मेरी अभिलाषा है।" वैसा ही हुआ। किन्तु जननी का श्राद्ध करते समय भी रायबहादुर पायजामा और शर्ट पहन कर ही बैठे। एक तो बुड्ढे थे, दूसरे सदा उन्हें पहन कर रहने का अभ्यास था। पुरोहित को भी पायजामा छोड़ने को कहने का साहस नहीं हुआ, उसी तरह कर्म करा रहे थे। किन्तु माँ ने वैसा देख कर पुरोहित से कहा, "इन सब कर्मों के समय क्या कुर्ता आदि पहना जाता है ?" पुरोहित ने कहा, कुर्ता पहिनना तो ठीक नहीं है, किन्तु ये नंगे बदन बैठ नहीं सकते, इसलिए कुछ नहीं कहा। रायबहादुर ने भी कहा, "मुझे सर्दी लग जाती है, इस भय से मैंने कपड़ा नहीं छोड़ा।" माँ ने तुरन्त कहा, "इन सब श्राद्ध के कामों में कुछ नहीं होता, सब खोल डालना ही ठीक है, कुछ नहीं होगा।" रायबहादुर ने कहा, "आप जो कहेंगी वही करूँगा।" यह कह कर सब कपड़े उतार कर धोती पहन कर तथा शरीर पर दुपट्टा ओढ़ कर ही बैठे। सन्ध्या के बाद सब काम सम्पन्न हो जाने पर

वे माँ से बोले, "दिन भर इस तरह खुले बदन मैं कभी नहीं रहता हूँ, थोड़ी देर भी यदि खुले बदन रहता हूँ तो बीमार पड़ जाता हूँ, किन्तु आज आपके कहने से मुझे कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि अधिक स्वस्थ हूँ।" माँ के आदेश से उस रात में कीर्तन का बन्दोबस्त हुआ। खूब कीर्तनादि हुआ। छोटी-छोटी लड़कियों से (रायबहादुर की पोतियों से) माँ ने कहा, "तुम लोगों को तो श्राद्ध में और कुछ करना नहीं है। तुम लोग आज सारी रात अखण्ड नाम-कीर्तन करो। कीर्तन के बाद ही उनका नामकीर्तन होगा, यह निश्चित हुआ। भ्रमर ही सबसे बड़ी थी, वही नामकीर्तन करने वाली थी। कीर्तन में माँ का खूब भाव हुआ। उन्होंने सारे मकान की प्रदक्षिणा की। माँ की क्या सुन्दर मूर्ति थी, केश अस्तव्यस्त हुए थे, कमर पर कपड़ा बाँधा था—नेत्रों में अपूर्व चितवन थी। जहाँ पर मिठाई बन रही थी, वहाँ जाकर हलवाइयों से भी माँ ने नामकीर्तन करवाया। मुसलमान एक ओर खड़े थे। उनके निकट जा कर अल्ला के नाम का स्वयं ही उच्चारण किया और उनसे करवाया। रायबहादुर और उनके पुत्र, पौत्र सभी नामोच्चारण करने लगे। इससे पूर्व उस मकान में किसी ने हरि का नाम तक सुना न था। उस दिन उक्त परिस्थिति देख कर सबको महान् आश्चर्य हो रहा थां। माँ के आदेश से रायबहादुर ने हाथ में धूपदानी लेकर कीर्तन के चारों ओर प्रदक्षिणा की। उस दिन वे न जाने किस एक शक्ति से उन सब कामों को करने के लिए बाध्य हो रहे थे। उससे पहले वे यह सब कुछ मानते न थे। कीर्तन में नाम बंद होते न होते ही माँ ने मेरा

मुँह जोर से दबा कर कान के निकट केवल इतना ही कहा—"नाम" और अधिक बोल न सकीं, उस समय भी माँ प्रकृतिस्थ नहीं हुई थीं। मैंने समझा माँ ने मुझसे मौनी हो कर नाम-जप करने को कहा। वही करने लगी। कीर्तन बन्द हुआ।

हम लोग माँ को साथ लेकर उनके रहने के लिए जो स्थान निर्दिष्ट था वहाँ गये। सभी लोग साथ-साथ जाकर पहुँचा गये। माँ की अवस्था देख कर सब लोग मुग्ध थे। मैं मौन होकर नाम-जप कर रही थीं। इधर लड़कियाँ खा-पीकर नाम-कीर्तन करने आईं। वे सब बहुत देर तक नाम-कीर्तन करने के उपरान्त सो पड़ीं। माँ ने मुझसे नाम-कीर्तन करने को कहा था। ऊँघने लगूँगी इस भय से मैं टहलते-टहलते नामकीर्तन करने लगी। बहुत तड़के ही उठ कर माँ ने नाम-कीर्तन करना आरंभ किया एवं भ्रमर तथा अन्यान्य लड़कियों को उठा दिया। कुछ नामकीर्तन हो कर बन्द हुआ। इधर ढाका में, न मालूम किस उपलक्ष्य में ठीक स्मरण नहीं है, कीर्तन शुरू हुआ था, शायद सोमवार या बृहस्पति से कीर्तन होने वाला था। पिताजी कालीपूजा के दिन से शाहबाग थे। माँ मुझे साथ ले आईं। कमलाकान्त को उनकी सेवा के लिए रख आई थीं। माँ के आदेश से ही पिताजी को टेलिग्राम किया गया कि माँ के ढाका लौट आने तक कीर्तन बन्द न हो। पिताजी मेडिकल कॉलेज के लड़कों तथा अन्यान्य लोगों के द्वारा कीर्तन चला रहे थे। कीर्तन के तीसरे दिन हम लोग माँ के साथ ढाका जा पहुँचे। सड़क से ही कीर्तन

सुनाई दे रहा था, माँ गाड़ी के भीतर ही समाधिस्थ हो पड़ीं। ज्यों ही गाड़ी कीर्तन के कमरे के सामने जाकर खड़ी हुई त्यों ही सब लोगों ने आनन्द से और भी ऊँचे स्वर से कीर्तन करना आरम्भ किया एवं गाना शुरू किया, "माँ हमारे घर में आईं, हरि बोलो हरि बोलो।" महान् आनन्द से वे नाच-नाच कर गाने लगे। इधर माँ को किसी तरह गाड़ी से उतारा गया। माँ कीर्तन के मध्य में जाकर लम्बी हो भूमि पर लोट पड़ीं। हमने देखा निर्मल बाबू काशी से रयानी-पूजा करने के लिए ढाका आये हैं[1]। दीदी, निर्मल बाबू, सभी उक्त दृश्य देख कर मारे आनन्द के मुग्ध होकर निहारते रहे। सभी के नेत्र सजल थे। बहुत देर बाद माँ

१. इसी अगहन के महीने में निर्मल बाबू ने (निर्मलचन्द्र चट्टोपाध्यायजी ने) माँ के पहले-पहल दर्शन किये थे। उन्होंने माघ के महीने में पिताजी के टिकाटूली के मकान में आकर रयानी-पूजा की। पूजा के अवसर पर माँ टिकाटूली के मकान में चार दिनों तक रहीं। वहाँ से शाहबाग वापस जाने के दिन सीढ़ी से उतरते समय पैर में चोट आने के कारण पैर के तलवे की हड्डी टूट गई। माँ सात दिन तक चौकी पर ही बैठी रहीं—उतरीं नहीं और खाया भी नहीं। इस पैर में चोट आने का रहस्य क्या रहा? उसके सम्बन्ध में पीछे एक दिन माँ ने प्रसंगतः कहा था,—"देख, उस पूजा के समय जब बकरे की बलि दी गई थी, उस समय बकरे का कान कट गया था। पूर्णरूप से गला कटने के पहले कान कट जाने पर बलि की अङ्गहानि हुई। उक्त दोष की निवृत्ति की कोई विधि पुरोहितजी बतला न सके। किन्तु जब पिताजी के मङ्गल के लिए पूजा हुई उस समय बलि में अङ्गहानि होने पर यह तो अशुभफलप्रद घटना हुई ऐसा विचार मेरे मन में आया। इसलिए इस शरीर में इस प्रकार चोट लग गई। ऐसा ही हो जाता, मैं तो अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती हूँ। जो इस शरीर पर निर्भर रहते, कभी उनके किसी प्रकार के अमङ्गल की आशङ्का होने पर इस शरीर के ऊपर ही कुछ न कुछ हो जाता।

कुछ सुस्थिर हुईं ।

एक दिन भोर में निर्मल बाबू शाहबाग गये । उसके पहले दिन रात्रि में हम सभी लोग माँ के निकट थे । माँ ने सबसे नाम-कीर्तन करने को कहा—साथ-साथ माँ ने भी बहुत देर तक नाम-कीर्तन किया । सारी रात नाम-कीर्तन में बीत गई । दूसरे दिन प्रातःकाल निर्मल

निर्मल बाबू को सरस्वती के रूप में मातृदर्शन

बाबू एकाएक शाहबाग के दरवाजे पर जाकर ज्यों ही खड़े हुए, माँ भी उठ कर दरवाजे पर जा खड़ी हुईं । उस समय माँ के चरणस्पर्श का निषेध था । किन्तु निर्मल बाबू दो अढ़हुल के फूल ले आये थे । उन्होंने अपने भक्ति-भाव में विभोर होकर एक अढहुल माँ के चरणों में और एक माँ के सिर पर चढ़ा दिया एवं चरणों में मस्तक टेक कर प्रणाम किया । साथ-साथ निर्मल बाबू की स्त्री तथा और भी दो-एक भक्तों ने प्रणाम किया । माँ ने कुछ नहीं कहा । माँ को इस प्रकार प्रणाम ग्रहण करते देख कर और भी दो-एक भक्त दौड़ कर प्रणाम करने गये, किन्तु माँ के उस स्थान से चली जाने के कारण पुनः उन्हें प्रणाम करने का साहस नहीं हुआ । माँ ने दोनों फूल हाथ में रख लिये । अनन्तर जब पूजा के फूल तोड़ने के लिए डलिया लेकर आदमी शाहबाग में गया तब माँ ने उस डलिया में उक्त एक निवेदित फूल डाल दिया एवं निर्मल बाबू से कहा, "तुम्हारा फूल मैंने पूजा के फूलों की डलिया में डाल दिया है ।" निर्मल बाबू ने भी उत्तर में कहा, "ठीक है तुम्हारी जहाँ इच्छा हो डालो ।" इस घटना के कुछ देर बाद माँ सिद्धेश्वरी चली

गईं। माँ के साथ-साथ बहुत से लोग पैदल सिद्धेश्वरी गये। वहाँ जाकर माँ सिद्धेश्वरी के आसन पर बैठीं। कुछ देर बाद धानाकोड के जमींदार की मोटर से माँ का शाहबाग आना हुआ। निर्मल बाबू एवं अन्यान्य भद्र पुरुष पैदल शाहबाग आ रहे थे। उस समय लगभग १० बजे होंगे। उस साफ सूर्य के प्रकाश में निर्मल बाबू ने देखा नाचघर के एक खम्भे के सहारे मानो सरस्वती-मूर्ति खड़ी है। कुछ निकट आते ही निर्मल बाबू को प्रतीत हुआ कि माँ ही उस मूर्ति के रूप में खड़ी हैं। निर्मल बाबू ने कहा कि इतना गौर वर्ण मैंने और कभी देखा नहीं। वे खूब स्थिर प्रकृति के मनुष्य थे, किन्तु उक्त घटना से उन्हें इतना आश्चर्य हुआ था कि उसी समय उन्होंने सब लोगों से वह घटना कह डाली।

सुनने में आया कि कुलदाकान्त बन्द्योपाध्याय नाम के एक भद्र पुरुष कीर्तन के आरम्भ से ही नहीं खा रहे हैं।

कुलदा वन्द्योपाध्याय का वृत्तान्त

उनका संकल्प था कि कीर्तन समाप्त होने एवं माँ के लौट आने पर जल-ग्रहण करूँगा। बहुत दिन पहले एक बार वे माँ के दर्शन कर गये थे फिर आये नहीं। इधर कुछ दिन पहले पुनः आये हैं। तीन दिन से आकर माँ के दर्शन किये बिना जल तक नहीं पी रहे हैं। उन्होंने आकर माँ को प्रणाम किया एवं माँ की अनुमति लेकर जल-पान किया। वे अत्यन्त निष्ठावान् तथा कष्टसहिष्णु पुरुष हैं। वे इस समय सर्वथा गृहत्याग कर आश्रमवासी हुए हैं। संवत् १९९२ के ज्येष्ठ महीने में योगेश दादा के उत्तरकाशी जाने

पर वे ही अन्नपूर्णामन्दिर के पूजन तथा होमादि कार्य में नियुक्त हुए। आश्रम बनने के बाद उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र को भी आश्रम में ब्रह्मचारी बना दिया। सिद्धेश्वरी आश्रम में ही लड़के का यज्ञोपवीत हुआ।

इस प्रकार माँ की लीला चलने लगी। पहले-पहले काली प्रतिमा की पूजा प्रतिदिन कुछ विशेष नहीं होती थी।

यज्ञाग्नि-रक्षा तथा कालीपूजा की व्यवस्था

कमलाकान्त माला चढ़ाया करता था और पिताजी प्रतिदिन गीता तथा दुर्गासप्तशती का पाठ किया करते थे। पिताजी जिस समय कालीमन्दिर में रहते थे उस समय नियमानुसार गीता और सप्तशती का पाठ करते थे एवं निज की सन्ध्या, पूजादि करते थे। माँ कहतीं, "यह तो पूजा हो रही है ?" पारुलदिया से मुझे मौनी बना लाने के बाद से दिन-रात कालीमन्दिर में यज्ञाग्नि की सन्निधि में एक व्यक्ति को मौनी होकर नामकीर्तन करना पड़ता था। कमलाकान्त को, मुझे और एक स्त्री को पारापारी से इस काम का भार सौंपा गया। दिनरात अग्निरक्षा और नामकीर्तन करना पड़ता। एक दिन रात को बारह बजे से तीन बजे तक कमलाकान्त ने अग्निरक्षा की थी। तीन बजे के उपरान्त मुझे रखवाली करनी थी, तीन बजे के समय पिताजी भी उठ कर अपने कृत्य में बैठे। मैंने ३ बजे उठ कर देखा तो कमलाकान्त की असावधानी से आग बुझ गई थी। मैंने दौड़ कर माँ को खबर दी। भोलानाथजी ने बड़ी कोशिश से माँ को जगाया, माँ ने सब समाचार सुन कर भोलानाथजी को और मुझे साथ लेकर दरवाजा बन्द कर

दिया। तदनन्तर माँ के कथनानुसार भोलानाथजी ने अग्नि प्रज्वलित की। किस प्रकार अग्नि जलाई गई यह बात प्रकाशित करने का हम लोगों को निषेध कर दिया। एक धूपदानी की अग्नि मेरे समीप रख कर माँ ने कहा, "सात दिन तक सर्वथा मौनी होकर तुम इस अग्नि की रक्षा करो। मैं वैसा ही करने लगी। सात दिन के बाद शाहबाग में तालाब के किनारे एक कुण्ड बनाकर माँ और भोलानाथजी ने उसमें अग्नि की स्थापना की। उसी समय से कुलदा दादा को उक्त अग्नि में कुछ कृत्य करने का आदेश हुआ। कभी-कभी उस अग्नि में चरु आदि का पाक होता था। कुलदा दादा उसे ही खा कर रहते थे। कालीपूजा और हवन का भार उस समय से शनैः-शनैः कुलदा दादा के ऊपर पड़ा[१]। किन-किन नियमों से वह करना पड़ता यह सब वे ही जानते थे सर्वसाधारण में उसका प्रकाश नहीं होता था। माँ जिस काम का भार जिसे सौंपतीं उस कार्य के विषय में उसी से कहतीं, सबके निकट सब बातें प्रकट नहीं की जातीं।

□□

---

१. वे प्रतिदिन काली-पूजा और हवन का उक्त काम पूर्ण कर गहरी रात को अकेले तीन-चार मील दूर घर लौट जाते थे। उपवास कर, फल खाकर एवं समयानुसार माँ की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं का पालन करते चलते थे।

पाँचवाँ अध्याय

महाकुम्भ-दर्शन के लिए हरिद्वार-यात्रा—फाल्गुन, १९८३

उस बार हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ था। निश्चय हुआ कि माँ और भोलानाथजी हम लोगों को लेकर कुम्भ-स्नान के लिए जायेंगे। इधर हवन और काली-पूजा का बन्दोबस्त हुआ। माँ के साथ हम लोगों ने संवत् १९८३ के फाल्गुन में हरिद्वार को प्रस्थान किया। पिताजी, मैं, कलकत्ते के राजेन्द्र कुशारी और उनकी स्त्री, मटरी बुआ, नानीजी, नानाजी—सभी उस अवसर पर तीर्थयात्रा के लिए बाहर निकले। कलकत्ता गये। भाग्यकुल के कुण्डुओं के एक खाली मकान में राजेन्द्र कुशारी ने माँ के रहने का प्रबन्ध किया था। हम लोगों के साथ लगभग १८-२० आदमी थे। इस कारण किसी के मकान में उतरना उचित प्रतीत नहीं हुआ। राजा जानकीनाथ राय के पुत्र योगेन्द्र बाबू माँ के दर्शन कर माँ के प्रति अत्यन्त श्रद्धान्वित हुए। एक दिन उन्होंने अपने निजी मकान में माँ को ले जाकर कीर्तन किया। माँ का खूब भाव हुआ। वहाँ बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। रायबहादुर भी उस समय कलकत्ता थे—उनके प्रयत्न से ढाका की नवाबजादी प्यारीबानू के मकान में भी कीर्तन हुआ। वे ही शाहबाग की मालिकिन हैं। रायबहादुर प्यारीबानू के ही मैनेजर थे। वहाँ भी माँ का खूब भाव हुआ, नवाबजादी ने अपने बाल-बच्चों

के साथ हरिनाम-कीर्तन किया । आगे भी बहुत दिन उस मकान में कीर्तन हुआ । वे माँ को अत्यन्त श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखती थीं । वहाँ भी बहुत लोग एकत्र हुए थे ।

सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय महाशय के मकान में भी माँ गईं; चण्डी बाबू, हर्ष बाबू, अनन्त बाबू आदि अनेक लोगों ने माँ के दर्शन किये ।

माँ के भाव में परिवर्तन

उस समय माँ की एक नवीन अवस्था हुई थी । वे नाव पर चढ़ नहीं सकती थीं, नौका पर चढ़ते ही जल की लहरों के साथ-साथ कैसी विलक्षण हो जाती थीं । जल में कूद पड़ना चाहती थीं, पकड़ कर रखना महा कठिन हो जाता था । माँ ने आगे चलकर कहा था, "जल इस तरह मुझे अपनी ओर आकृष्ट करता कि मानो शरीर जल के साथ मिल जाना चाहता, कुछ भी भेद-ज्ञान नहीं रहता था ।" फिर एक दूसरा भाव हुआ था—दुतल्ले पर चढ़ न सकती थीं चढ़ते ही समाधिस्थ हो पड़तीं । सीढ़ी पर पैर न रख सकतीं, शून्य में पैर रखने जातीं और गिर पड़तीं । उक्त भाव के वर्णन के सिलसिले में एक दिन माँ ने कहा था, "शरीर को शून्य आकृष्ट करता है । जैसे वायु शून्य के भीतर मिला है वैसे ही शरीर शून्य में मिल गया है ऐसा प्रतीत होता है । उस समय दूसरा कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, इस कारण सीढ़ी पर पैर नहीं रख सकती हूँ ।" उन्हें यदि दुतल्ले पर चढ़ाना अथवा उतारना होता तो पकड़ कर चढ़ाने या उतारना पड़ता था । माँ कहतीं, "सीढ़ी द्वारा

पैदल चढ़ना चाहिये या उतरना चाहिये ऐसा भाव ही नहीं रहता है। सब मानो शून्यमय है शरीर भी वैसा ही है।" क्या अद्भुत अवस्था थी।

काशी होते हुए हरिद्वार जाना था। काशी में कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में उतरना था। उनके पुत्र जितेन्द्र दादा उस समय कलकत्ता थे, उन्होंने काशी को लिख दिया था। पिताजी ने भी लिख दिया कि नीचे की मञ्जिल में माँ के लिए स्थान का प्रबन्ध किया जाय।

काशी—कुञ्ज बाबू के मकान में

निर्मल बाबू आदि माँ को देख गये थे। कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी एक आवश्यक टेलीग्राम पाकर एक दिन के लिए काशी से बाहर चले गये थे। स्टेशन पर उनकी स्त्री और सपरिवार निर्मल बाबू उपस्थित हो गले में गमछा डाल कर हाथ जोड़े खड़े थे। ज्यों ही गाड़ी पहुँची, माँ के दर्शन होते ही उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सब लोग माँ को मकान में ले गये। सब दरवाजों पर मङ्गलकलश और मालाएँ माँ के शुभागमन के उपलक्ष्य में रखी थीं। माँ और भोलानाथजी का भोजन हो जाने पर सब ने प्रसाद ग्रहण किया। उसी बार नेपाल दादा ने (नेपालचन्द्र चक्रवर्ती ने) माँ के सर्वप्रथम दर्शन किये। माँ को निर्मल बाबू की स्त्री और उनके एक गुरुभाई अपने गुरु श्रीयुत् जितेन्द्रनाथ ठाकुर के समीप एक दिन ले गये। माँ के साथ ठाकुर की कोई बात नहीं हुई। कुछ समय बैठकर माँ चली आईं। हम लोग सब साथ गये थे। काशी जा कर सुनने में आया कि माँ के आने के दो दिन पहले कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी को

सन्ध्या समय छत पर बैठे-बैठे अकस्मात् माँ दिखाई पड़ी थीं, मानो लाल वस्त्र पहन कर माँ सामने खड़ी हों। इससे पहले कभी उन्होंने माँ को देखा न था, जितेन्द्र दादा तथा निर्मल बाबू की स्त्री के मुख से केवल सुना भर था। इससे पहले माँ आने वाली हैं यह सोच कर वे कुछ विशेष उत्साहित नहीं हुए थे। फिर भी पिताजी माँ के अत्यन्त भक्त हुए हैं, यह उन्होंने सुना था, उन्होंने सोचा कि वे ही जब स्वयं लेकर आ रहे हैं एवं अन्यान्य अनेक लोगों के मुख से भी बड़ी प्रशंसा सुनी है, इसलिए इस बार माँ के दर्शन करूँगा। दर्शन के बाद ही माँ के लिए लाल रेशमी साड़ी ले आये एवं मङ्गलकलश दरवाजे पर स्थापित किये और मालाएँ सजाईं। उनके मन में ऐसा भाव जागा कि देवी आई हैं। रात्रि में माँ थोड़ी देर सो कर उठ बैठीं। भोलानाथजी सोये ही थे। माँ बैठे-बैठे भावावेश में काँपने लगीं। भोर में कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ के दर्शन किये। देखते ही उन्हें प्रतीत हुआ कि यही मूर्ति मैंने देखी थी। देखते ही भक्ति-भाव से विह्वल हो गये, विविध प्रकार के स्तोत्रपाठ करने लगे। लाल रेशमी साड़ी पहना दी और लाल अढ़हुल के फूलों से पूजा की। ढाका छोड़ कर आने के बाद से ही पैर छू कर प्रणाम करने की निषेधाज्ञा हटा दी थी। बहुत से लोग प्रणाम करने आते, माँ कुछ न कह कर केवल हाथ जोड़े रहतीं। इतने लोगों को रोकना असंभव था। विशेषतः माँ कहतीं, "पहले छूने नहीं दे सकती थी, अब देखती हूँ जो हाथ हैं वही पैर भी हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है। जब मैं हाथ पकड़ने में

निषेध नहीं करती हूँ तब पैर पकड़ने में ही बाधा देने का क्या कारण है ?" दूसरे दिन कीर्तन हुआ, माँ का भाव भी हुआ, किन्तु माँ ने लोट-पोट नहीं ली, सारे मकान में एक विचित्र ढंग से टहलने लगीं।

दूसरे दिन ही हम लोग हरिद्वार को रवाना हो गये एवं उसके दूसरे ही दिन तड़के हरिद्वार पहुँचे। निर्मल बाबू पहले ही हरिद्वार आकर स्टेशन पर उपस्थित थे। फाल्गुन का महीना था, सभी लोग कम्बल ओढ़ कर किसी प्रकार जाड़े से काँपते हुए धर्मशाला में पहुँचे। उस दिन कुम्भ का प्रथम नहान था। माँ और हम लोग धर्मशाला में खड़े हो कर साधुओं का जुलूस देखने लगे।

हरिद्वार में कुम्भ-स्नान और मथुरा, वृन्दावन होते हुए ढाका प्रत्यावर्तन

तदनन्तर हम सब लोग माँ के साथ ब्रह्मकुण्ड में जाकर स्नान कर आये। सात दिन धर्मशाला में रह कर हम लोग हृषीकेश कालीकम्बली वालों की धर्मशाला में गये। दो दिन वहाँ रह कर लछमनझूला आदि स्थानों के दर्शन कर लौटे और भीमगोड़ा में एक पञ्जाबी साधु के आश्रम में फूँस की कुटिया में ठहरे। जिस दिन हृषीकेश से लौटे उस दिन टेलिग्राम मिला कि सीतानाथ कुशारीजी की मृत्यु हो गई है। एक दूसरा भी टेलिग्राम आया कि ज्योतिष बाबू की अवस्था अत्यन्त खराब है। इससे पहले ही उनका शरीर अस्वस्थ हो पड़ा था। टी० बी० (क्षय) का पूर्वरूप मालूम पड़ता था। उक्त दो टेलिग्रामों को पाने के अनन्तर उस दिन रात्रि को ही माँ सबको साथ लेकर ढाका की ओर रवाना हुईं। भोलानाथजी के छोटे भाई यामिनी बाबू भी हम लोगों

के संग ही थे। जाते समय मार्ग में मथुरा, वृन्दावन, आगरा आदि तीर्थस्थानों के दर्शन कर आने का निश्चय था। माँ ने पिताजी को और मुझको एकान्त में ले जाकर (जाने के कुछ ही समय पहले) हरिद्वार तीन महीने रहने का आदेश दिया एवं जिन-जिन नियमों से खाना, पीना, रहना आवश्यक था वे भी बतला दिये। माँ चली जायँगी और हम साथ न जा सकेंगे, यह सोच कर अत्यन्त कष्ट हुआ, किन्तु माँ का आदेश पालन करने में भी जो एक अपूर्व आनन्द होता है, उसका भी हमें अनुभव हुआ। माँ के दर्शन होने के अनन्तर उसी दिन पहले-पहल माँ से विछोह हो रहा था। हृदय अत्यन्त घबरा उठा। सन्ध्या के पश्चात् माँ हम लोगों को सान्त्वना देकर तथा उसी आश्रम में रख कर सबको साथ लेकर रवाना हो गईं। हम लोगों का कुम्भस्नान के लिए कोई विशेष आकर्षण न था, माँ का संग ही प्रधान लक्ष्य था। माँ यह भी कह आईं, "यदि पिताजी अस्वस्थ हों तो तुरन्त काशी चली जाना, यहाँ रुकना नहीं।" बाद को मेरे सुनने में आया कि माँ ने टेलिग्राम पाते ही भोलानाथजी से कहा था, "देखो, मैंने देखा कि मानो मैं ज्योतिष बाबू को गोद में लेकर बैठी हूँ।" उसी समय भोलानाथजी ने कहा, "तब उनके प्राणों को कोई भय नहीं है।" लेकिन उस समय ऐसी अवस्था थी कि डॉक्टरों ने साफ जवाब दे दिया था। माँ विविध स्थानों में पर्यटन कर ढाका गईं। लगभग डेढ़ महीने के अनन्तर भोलानाथजी ने किसी कारणवश पत्र द्वारा सूचित किया कि माँ ने आप लोगों को ढाका ब्वले आने को कहा है। इधर पिताजी खूब अस्वस्थ हो गये थे,

इसलिए मैं विलम्ब न कर तुरन्त काशी चली गई । मार्ग में मुझे भी ज्वर हो आया । काशी में पिताजी के और मेरे कुछ स्वस्थ होते ही हम लोग ढाका जाकर माँ के चरणों में उपस्थित हुए । सुना कि ज्योतिष दादा भी पहले की अपेक्षा अच्छे हैं । वे रमना में शाहबाग के निकट ही एक मकान भाड़े में लेकर रहते थे । माँ प्रतिदिन एक बार वहाँ जाती थीं और रोज ही थोड़ा प्रसाद भेज दिया जाता था । एक दिन पिताजी ने माँ को टिकाटूली के मकान में ले जाकर अपने इष्टमन्त्र से उनके चरणों की पूजा की । माँ पूजा समाप्त होते ही उठ बैठीं । एक विचित्र भाव में विभोर हो गई । उसी भाव में बैठ कर ही माँ ने पिताजी से कहा, "आज से तुम्हारी फूल-बेलपत्तों की बाह्य पूजा समाप्त हुई ।" पिताजी ने पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम किया । कुछ देर बाद माँ उठकर खड़ी हुईं, शाहबाग चली जायँगी ऐसा प्रतीत हुआ । पीछे बोलीं, "मैंने सोचा था कि दुमंजिले के सड़क की ओर के बरामदे से ही नीचे उतर जाऊँ । (मगर उस ओर उतरने का कोई रास्ता न था) । कुछ दिन बाद एक दिन पिताजी से बोलीं, "अपने कुलगरु को चिट्ठी लिख दो, वे इस सम्बन्ध में क्या आदेश देते हैं यह जान लो ।" आश्चर्य की बात है कि बाह्य पूजा के त्याग की बात पर उन्होंने भी कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि प्रसन्नता-पूर्वक अनुमति दे दी । पिताजी के पैर में बहुत दर्द होता था, थोड़ा अधिक चलने पर नाड़ी की गति बिगड़ जाती थी । ट्रेन से भी अधिक चलना-फिरना नहीं कर सकते थे । माँ उनसे प्राणायाम की एक प्रक्रिया नियमानुसार कराने लगीं ।

माँ ने उनसे २४ घण्टे क्या उससे भी अधिक समय तक बैठने को कहा था, पिताजी ने भी माँ की कृपा से वैसा ही किया। माँ ने कहा था, "इस प्रकार दूसरे किसी से भी काम नहीं कराया है, तुम्हीं से कराया जा रहा है। जो जिस प्रकार से काम करने का अधिकारी होता है उससे उस तरह के काम की बात कही जाती है। सब तो एक प्रकार के नहीं हैं।" माँ के निर्देशानुसार काम करते-करते पिताजी बहुत देर तक बैठे रह सकते थे, किसी प्रकार का भी क्लेश नहीं होता था। पहले पैरों में गरम जल डालने पर भी (गर्मी के दिनों में भी) स्वास्थ्य खराब हो जाता था, पेट में भी कोई विशेष पाचन नहीं होता था। तालाब में स्नान करने पर तो युवावस्था में ही बीमार पड़ जाते थे, इस कारण स्नान बन्द था। अब इस वृद्धावस्था में तालाब में स्नान करते, माँ का प्रसाद सब खाते, पैदल भी खूब चल सकते, माँ की कृपा से सब कुछ सहन होने लगा। माँ को सभी अपने-अपने घर ले जाने लगे। धानकोड़ा के जमींदार दिनेश बाबू की स्त्री माँ को अनेक बार अपने घर ले जातीं और कीर्तन की व्यवस्था करतीं। अन्यान्य बहुत से मकानों में भी माँ जातीं। सभी भक्त उस समय उसी मकान में इकट्ठे होते। उयारी के नलिनी बाबू की स्त्री और उनके भाई की स्त्री (बेवी दीदी और सुनीति दीदी) कभी-कभी आतीं।

एक दिन माँ धानकोड़ा के मकान में जा रही थीं। मोटर से सड़क पर निकलते ही एक भद्र पुरुष घोड़ागाड़ी से माँ के दर्शन करने आ पहुँचे। उन्होंने ज्यों ही देखा कि माँ मोटर से बाहर चली

एकलक्ष्य होने का माहात्म्य

गई हैं त्यों ही हड़बड़ा कर कोचवान से कहा, "मोटर के पीछे-पीछे तेजी से गाड़ी चलाये जाओ।" यह ख्याल नहीं किया कि घोड़ागाड़ी मोटर के पीछे दौड़ कर क्या करेगी। वे केवल यही सोच रहे थे कि माँ चली गई हैं, उन्हें पकड़ना चाहिये। कुछ ही दूर पहुँचने पर माँ ने जब देखा कि घोड़ागाड़ी मोटर के पीछे दौड़ी आ रही है, तब कहा, "जरा मोटर रोको।" मोटर के रुकते ही गाड़ी मोटर के निकट जा पहुँची। उस भद्र पुरुष ने उतर कर माँ के चरणों की धूलि ली एवं माँ धानकोड़ा के मकान में जा रही हैं, यह समाचार पाकर वे भी कुछ ही देर बाद वहाँ जा पहुँचे। इस वृत्तान्त के सिलसिले में शाहबाग में भक्तों के प्रति माँ ने कहा था, "तुमने देखा तो, एकलक्ष्य होकर इस प्रकार दौड़ सकने पर घोड़ागाड़ी के लिए भी मोटर रुक गई। पीछे धीरे-धीरे सब समाचार जान कर कुछ ही देर बाद वह भी जाकर मिल सका। हम लोग मोटर से चले गये, वह घोड़गाड़ी से भी हम लोगों के साथ जा मिला। एकलक्ष्य होकर दौड़ सकने पर ही यह संभव हुआ।"

कीर्तन में बाउल बाबू और चिन्ताहरण बाबू की स्त्री का भाव

शाहबाग में कीर्तन में बाउल बाबू की स्त्री भी हमेशा ही आतीं, कीर्तन में उनका विशेष भाव होता। दीक्षा के दूसरे दिन कीर्तन में आने पर चिन्ताहरण बाबू की स्त्री की भी अस्वाभाविक अवस्था हुई थी। सन्ध्या के बाद कीर्तन में वे पस्त पड़ गईं, माँ का चरण पकड़ कर गिर ही गईं। उन्हें

उठाने में लगभग रात के दो बजे, तभी से कभी-कभी उनका इस तरह का भाव होता है।

एक बार माँ तेरह दिनों तक बिना जल पीये रहीं, पीछे एक दिन भोलानाथजी से जल देने को कहा, उन्होंने जल पिला दिया। फिर एक बार तेईस दिन तक मुँह में जल नहीं लिया। मुँह तक न धोतीं। तेईस दिनों के बाद एक दिन रात्रि में मैं, कमलाकान्त, अटलदादा और नन्दू माँ के निकट रात भर बैठे थे, माँ जमीन पर बैठी थीं और भोलानाथ जी सोये थे। रात्रि में ढाई या तीन बजे के समय माँ ने एक कलश जल लाने के लिए कहा। जल लाने पर भोलानाथजी को उठा कर बोलीं, "तुम लोग जो पाँच व्यक्ति कमरे में हो, मुझे यह एक घड़ा जल थोड़ा-थोड़ा करके पिला दो।" वैसे ही थोड़ा-थोड़ा करके मुँह में जल डाला गया। माँ ने यह जल तेईस दिनों के बाद पीया। बोलीं, "मैंने अनुभव किया कि जल पीये बिना कैसा लगता ? किन्तु देख रही हूँ कि जल का व्यवहार ही भूली जा रही हूँ। यदि एक बार भूल जाऊँ तो मेरे लिए तुम लोगों को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, इसलिए आवश्यकता न रहने पर भी जल पीया।" जल पीकर बैठी थीं, थोड़ी ही देर बाद झटपट उठकर दरवाजा खोलकर बाहर गईं (उस समय माँ गोल कमरे में रहती थीं) और दरवाजे के पास से पाँच कमल के फूल ले आईं। हँसते हुए बोलीं; "देखो, कोई ये पाँच कमल के फूल रख गया है। तुम पाँच व्यक्तियों ने जल

माँ का चिरकाल तक जल-त्याग—माँ को जल पिलाने का अद्भुत पुरस्कार

पिलाया है। पाँच ही कमल रख गया है। तुम लोग पाँच व्यक्ति इन्हें ले लो।" यह कह कर हर एक के हाथ एक-एक फूल दे दिया। इतनी गहरी रात्रि में कमल-फूल कौन रखेगा ? देखकर हम चकरा गये। मगर माँ के निकट सब कुछ संभव है, इसीलिए विशेष घटनाओं का भी मैं उस रूप में स्मरण नहीं रखती हूँ।

कई पुरानी घटनाएँ— बीच-बीच में अलौकिक शक्ति का प्रकाश

पहले की बातें कहते-कहते एक दिन माँ ने कहा था, "इस सिद्धेश्वरी में तीन महीने तक पड़ी रहना चाहती थी, किन्तु भोलानाथजी ने किसी तरह भी रहने नहीं दिया, उसमें बाधा डाली। उसके कारण भोलानाथजी खूब अस्वस्थ हुए थे।" ज्योतिष दादा बहुत अस्वस्थ थे; एक दिन दोपहर के समय उनके मकान में माँ और भोलानाथजी गये। माँ ने कहा, "इस सामने के पोखरे में डुबकी लगा आ तो।" संयोग की बात है कि उस समय घर में सब लोग सोये थे, ज्योतिष दादा उसी समय जाकर डुबकी लगा आये और कपड़े बदल कर बिछौने पर लेट गये। तब कुछ लोग जागे। भींगे कपड़े देखकर उन्हें यह घटना मालूम पड़ी। ज्योतिष दादा डर रहे थे कि यदि आज रक्त अधिक पड़ा तो सभी बकझक करेंगे एवं सोचेंगे कि स्नान से ही यह हुआ है। किन्तु उक्त स्नान से रोगी की रोगवृद्धि का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ा, बल्कि और दिनों की अपेक्षा उस दिन अच्छे ही रहे। इस प्रकार की छोटी-बड़ी कितनी ही घटनाएँ घटी हैं। ऐसा भी देखने में आया है कि हाथ में एक बार एक फूल या अन्य कोई वस्तु

माँ ने ली वह पाँच-छः दिनों तक हाथ में ही रही। पीछे वह फूल या वस्तु किसी को दे डाली। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि माँ रात्रि में बहुधा टहलती रहती थीं अथवा इच्छानुसार बैठी रहती थी। सारांश यह कि रात होने पर चटपटा भाव रहता था। बहुधा रात्रि के समय गाड़ी करके सब लोगों के घर-घर जातीं। किसी-किसी दिन ऐसा होता कि रात्रि में बिलकुल भी सुस्थिर न रहतीं। बिछौने पर सोये रहने पर भी विविध बातें करतीं, उन बातों का अर्थ कोई भी न समझता। कभी देखा है कि रात्रि में सोये-सोये कहतीं कि "इटली कहाँ है ? उस देश में किस जाति के लोग रहते हैं ?" दो-चार दिनों के बाद ही इटली का एक आदमी शाहबाग में माँ के साथ भेट करने के लिये आये। कभी-कभी अंग्रेजी के शब्द मुँह से निकलते, कभी अन्य विदेशी भाषाएँ निकलतीं, कभी-कभी भोलानाथजी से लिखवा भी रखतीं। रात्रि में सोये-सोये भी ऐसा होता। फिर, किसी दिन सो ही न सकतीं; अपनी इच्छानुसार रातभर चहल-कदमी करतीं। एक बार निरञ्जन बाबू के मकान में कीर्तन के अनन्तर भोग हुआ। उस दिन रात्रि में उसी मकान में रहीं। सारी रात टहलते-टहलते बिता डाली। बहुत लोगों के मन की बात अनेक बार बता देतीं। संभवतः कोई व्यक्ति कोई प्रश्न मन में रख कर बैठा है, माँ दूसरे से बातें कर रही हैं, बातें करते-करते उक्त प्रश्न का भी साफ उत्तर दे दिया। जो व्यक्ति प्रश्न करने के लिए बैठे थे, उन्हें फिर प्रश्न करने की जरूरत ही नहीं रही। ऐसा एक बार नहीं, अनेकों बार हुआ है। माँ की दूर दृष्टि का प्रमाण मुझे

अनेकों बार मिला है। मकान में दोपहर को मैंने कोई काम किया, अपराह्न में ज्यों ही माँ के समीप आई अक्सर माँ कहतीं, "दोपहर को मैं लेटी थी, देख रही थी तुम अमुक काम कर रही हो।" ठीक-ठीक बतला देतीं। और भी बहुतों को इस प्रकार की दूरदृष्टि का प्रमाण मिला है। मगर माँ यह सब बहुत ही कम प्रकट करतीं, कभी कोई बात बाहर प्रकट हो जाती, नहीं तो विशेष प्रकट नहीं करतीं। एक बार शाहबाग में मैंने माँ से पूछा था, "माँ, जिस समय हम लोग तुम्हारे लिए व्याकुल होते हैं उस समय क्या तुम्हें मालूम पड़ जाता है ?" माँ ने कहा था, "किस प्रकार समझती हूँ, जानती है ? जभी तुम लोगों का मेरी ओर ध्यान आकृष्ट होता है उस समय तुम लोगों को अपने निकट विविध प्रकार से देखती हूँ, उसी समय मुझे ज्ञात हो जाता है कि तुम लोग मेरा ही चिन्तन कर रहे हो।" यह कह कर बोलीं; "एक दिन रात में मशहरी के भीतर सोयी थी, मैंने देखा कि तुम धीरे-धीरे मशहरी उठाकर पैरों में हाथ लगा रही हो।" एक दिन सिद्धेश्वरी के आसन पर जाकर बैठी; कीर्तन होने वाला था, कमरे में बहुत लोग थे। एक नवीन अपरिचित आदमी खड़ा था, उसने माँ की ओर निहार कर कहा, "कहें तो, मैं क्यों आया हूँ ? मैं अपने मुँह से कहूँगा नहीं, मैंने मन ही मन प्रश्न किया है, जवाब दें, तो जानूँ।" माँ उसकी ओर तनिक दृष्टि डालकर बोलीं, "उत्तर दे चुकी हूँ, समझ लो, तुमने भी मन ही मन प्रश्न किया है, मैंने भी मन ही मन उत्तर दिया है, समझ लो।" यह कह कर उसकी ओर दृष्टि कर जरा हँस

दिया । वह आदमी फिर कुछ बोला नहीं । दूसरे दिन शाहबाग जाकर देखती हूँ कि वह आदमी माँ के कमरे के एक कोने में बैठकर रो रहा है । वह माँ को प्रणाम करना चाहता था और चाहता था क्षमा माँगना, किन्तु माँ गृहस्थी के विविध काम-काज कर रही थीं उस ओर मानो ध्यान ही न था । उस आदमी के मन में कैसा भाव हुआ, मैं नहीं जानती, वह रोते-रोते व्याकुल हो रहा था । पीछे क्या हुआ ठीक स्मरण नहीं है । एक बार किसी एक घटना के विषय में माँ राजी नहीं हो रही थीं, किन्तु भोलानाथजी आग्रह करते जा रहे थे । आखिर माँ ने उसे किया, लेकिन पन्द्रह दिनों तक कमरे के भीतर न जा सकीं । आँधी-वृष्टि में बाहर ही रहतीं । इस तरह की घटनाएँ और भी अनेक देखने में आई हैं; भोलानाथजी के आदेश का पालन करने के लिए ही कर डालतीं, किन्तु पीछे संभवत: शरीर में विपरीत क्रियाएँ होती रहतीं, भोलानाथजी भी डर जाते । इस कारण उन्हें भी आग्रह करने में भय होता कि न जाने फिर क्या उपद्रव हो । माँ बहुधा "जो होने वाला है होगा, वे जब कह रहे हैं किये जाऊँ ।" यह कह कर किये जातीं । माँ की दूर दृष्टि की एक दूसरी घटना याद आ गई है । एक दिन एक सज्जन भोग ले कर आये । माँ डेरे पर न थीं । माँ के शाहबाग लौट आने पर भोग बना, खाना-पीना पूरा होने में प्राय: सन्ध्या हो गई । योगेश बन्द्योपाध्यायजी ने सन्ध्या के बाद शाहबाग जाकर सुना कि भोग हो गया है । उन्होंनें माँ से कहा, "हमें प्रसाद नहीं मिला, इस समय मैं प्रसाद पाना चाहता हूँ ।" माँ ने और कुछ न कह कर मसाले पीसने को

कहा। इधर ज्योतिष दादा के घर उस दिन कोई एक बड़ी मछली दे गया था। उन्होंने नौकर से कहा, "कुछ शाहबाग दे आ।" कुछ मछली और अन्यान्य वस्तुएँ लेकर सन्ध्या समय नौकर शाहबाग आ पहुँचा। माँ हँस पड़ीं। मसाला तो पहले से ही पीस कर रखा था। रसोई बनी, योगेश बाबू तथा अन्यान्य बहुत से लोग प्रसाद पा गये। फिर किसी एक दिन माँ सब लोगों के साथ शाहबाग मैदान में बैठी थीं, एकाएक उठ कर कपड़े ठीक कर के बैठीं और बोलीं, "रायबहादुर आ रहे हैं।" सचमुच कुछ देर बाद ही रायबहादुर की मोटर का शब्द सुनाई पड़ा। मैं पहले ही कह चुकी हूँ, यह सब ऐश्वर्यप्रकाश बहुत ही कम होता।

माँ बहुतों से बार-बार कहतीं, "अपने को गुप्त पेटी बनाना चाहिये। इन सब भावों के विषय को प्रकाश में नहीं लाना चाहिये, गुप्त रखना चाहिये। बक्से के भर जाने के कारण यदि कुछ निकल पड़े तो निकले उस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। तुम अपने लक्ष्य पर चलते जाओ, जो थोड़ा-बहुत प्रकट हो पड़े, हो जाय, स्वयं कुछ प्रकट न करो।" माँ कहतीं, "वह जो थोड़ा-बहुत प्रकट हो पड़ता है यह भी इस पथ की एक अवस्थामात्र है। इस पथ पर चलते-चलते ऐसी एक भूमिका प्राप्त होती है, जिस समय अपने आप ही यह सब प्रकट हो जाता है। किन्तु साधक को उधर ध्यान नहीं देना चाहिये, वह यदि अपने यश की आकांक्षा से उन सबको प्रकट करने लगे तो तुरन्त ही वहाँ पर वह

माँ का उपदेश—अलौकिक भावों के विषय में संयम की आवश्यकता

रुक जायगा। और यदि मार्ग का उक्त तमाशा देखने के लिए खड़ा न रह कर अपने लक्ष्य की ओर चलता रहे तो देख पड़ेगा कि जो प्रकाश देखे थे वे पुनः दूसरी भूमिका में जाने के बाद बन्द हो गये हैं।"

एक घटना

संवत् १९८४ में एक दिन रात्रि के समय माँ गाड़ी से टिकाटूली के मकान में जा पहुँचीं। कुछ ही देर बाद फिर किसी दूसरे मकान में गईं। उस समय रात्रि बहुत बीत चुकी थी। माँ की अवस्था देख कर मुझे और पिताजी को न जाने कैसा सन्देह हुआ कि माँ कहीं जायँगी। इधर माँ कई मकानों में हो कर शाहबाग के निकट ही ज्योतिष दादा के समीप जा कर बोलीं, "रोज-रोज क्या प्रसाद भेजा जाय, आज ही थोड़ा अधिक प्रसाद कर रख लो।" यह कह कर कुछ फल प्रसाद रूप देकर दूसरी भी दो-चार बातें कह कर शाहबाग चली गईं। उन्हें भी कुछ सन्देह हुआ, इसलिए नौकर को शाहबाग भेज कर उन्होंने खबर ली, माँ और भोलानाथजी बैठे थे। इधर रात के लगभग २ बजे का समय होगा, पिताजी का मन स्थिर नहीं हो रहा था, वे टिकाटूली से उस रात के समय पैदल ही शाहबाग जा पहुँचे। फाटक का दरवाजा बन्द था। वे चहारदीवारी लाँघ कर भीतर गये, किन्तु चहारदीवारी के पास मैला पड़ा था। उस पर पैर पड़ गया। उसी अवस्था में वे माँ के निकट जा पहुँचे, देखा कि इतनी रात में माँ और भोलानाथजी बैठ कर कुछ वार्तालाप कर रहे हैं।" पिताजी को भी इतनी रात में देख कर माँ ने कहा, "यह क्या ? इतनी रात में

आया है ?" पिताजी ने कहा, "माँ, मन में न जाने कैसा सन्देह हुआ, इसलिए आया हूँ। हमें छोड़ कर कहीं जायँगी तो नहीं ?" माँ ने कहा, "जाने पर तो मालूम हो ही जायगा।" इस कथन से सन्देह गया नहीं। पिताजी मैले पर पैर पड़ने के कारण अपने को अपवित्र समझ रहे थे, इसलिए माँ ने उनसे घर लौट जाने को कहा। पिताजी भी घर आने की इच्छा न होते भी स्नान करूँगा यह सोच कर चले आये। उक्त घटना यदि न होती तो संभव है रात वहीं रहते[1]।

माँ का ढाका त्याग

इधर माँ ने सोचा आज ही प्रातःकाल नारायणगंज चली जाऊँ और वहाँ से अन्यत्र चली जाऊँगी। माँ ने यह भी सोचा था कि जाते समय यदि किसी के साथ भेंट हो जायगी तो नहीं जाऊँगी। ज्योतिष दादा के दरवाजे के पास से ही नारायणगंज को जाना पड़ता है। प्रतिदिन बहुत सबेरे ही दरवाजा खोलकर ज्योतिष दादा लेटे रहते, किन्तु उस दिन बहुत रात बीते माँ आई थीं, इसलिए जगा रहना पड़ा, अतः भोर में उन्हें नींद आ गई। जाते समय माँ की किसी से भी भेंट नहीं हुई। पिताजी रात में लगभग तीन या साढ़े तीन बजे मकान में लौटे। चार बजे के समय ही माँ भोलानाथजी को साथ लेकर बाहर चल पड़ीं। भोर में ही

---

१. एक बात यहाँ पर कह देना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। हरिद्वार से आने के बाद माँ ने पिताजी को और मुझे मकान में जा कर रहने का आदेश दिया था, इसलिए हम लोग घर ही रहते थे। फिर भी हम लोगों का अधिकांश समय शाहबाग में ही कटता था।

पिताजी दूसरी बार शाहबाग गये। जाकर देखा तो माँ चली गई थीं, कहाँ गईं कुछ खबर नहीं लगी। ज्योतिष दादा के मकान में जाकर रो पड़े। ज्योतिष दादा भी घबराये, किन्तु करें क्या! इधर माँ ने रात को पिताजी से कहा था, "जाने पर खबर पा जाओगे।" अपने इस वचन के पालन के लिए माँ ने नारायणगंज में एक आदमी से पिताजी को यह समाचार दे देने को कह दिया कि वे भोर की गाड़ी से नारायणगंज गये और वहाँ से अन्यत्र चले गये हैं। पीछे क्रमशः खबर मिली कि माँ राजसाही होती हुई कलकत्ता, वहाँ से देवघर और देवघर से विन्ध्याचल गई हैं। उस समय विन्ध्याचल में आश्रम न था। माँ एक बँगले में टिकीं। जितेन्द्र दादा माँ के साथ कलकत्ते से देवघर गये और वहाँ से उन्होंने माँ के विन्ध्याचल जाने की खबर काशी को दी। समाचार पाकर काशी से उनके पिता (श्रीयुत् कुञ्जमोहन मुखोपाध्याय) तथा माता एवं सपरिवार निर्मल बाबू ने विन्ध्याचल जाकर माँ के दर्शन किये। तदनन्तर माँ चुनार तथा अन्यान्य स्थानों में घूम-घाम कर फिर ढाका चली गईं।

माँ के लिए आश्रम निर्माण का प्रथम उद्योग

इसी बीच में ज्योतिष दादा और निरञ्जन बाबू आदि माँ के लिए एक बड़े आश्रम का निर्माण करने का प्रयत्न करने लगे। माँ ने उन लोगों से कहा, "आश्रम की तो मुझे कोई आवश्यकता नहीं है, पेड़ का तला ही मेरा आश्रम है। फिर भी यदि तुम लोगों को आवश्यकता हो तो बना सकते हो। किन्तु मेरी एक बात

है कि यदि तुम कुछ बनाओ तो इस रमना के काली-मन्दिर के पीछे की भूमि को (जहाँ वर्तमान आश्रम है) लेने की तुम लोग चेष्टा करना। आगे चलकर माँ ने कहा था कि इस स्थान में पहले बहुत से फलाहारी, पवनाहारी संन्यासी रहते थे। उन्हें रमना के काली-मन्दिर में उन लोगों की अशरीर आत्मा के दर्शन मिले थे। माँ ने कहा था इसीलिए उस स्थान को लेने के लिए ज्योतिष दादा और निरञ्जन बाबू ने बहुत कष्ट झेले थे। ज्योतिष दादा बीमारी की अवस्था में भी उक्त स्थान हस्तगत नहीं हुआ यह सोच कर दुःखी होते थे। पीछे स्वस्थ होने पर जब किसी प्रकार भी उक्त स्थान न ले सके तब एक दिन अन्तिम बात के लिए कालीबाड़ी के ठाकुर के निकट गये थे। उस समय उन्हें स्पष्टतया प्रतीत हुआ कि माँ साथ हैं। उसी दिन बात ठीक हो गई और जगह ले ली गई। माँ के हरिद्वार से लौटने के बाद ही सं० १९८४ के वैशाख महीने में शाहबाग में माँ का प्रथम जन्मोत्सव हुआ। उस बार केवल एक ही दिन (१९वीं वैशाख) कीर्तन, भोग आदि होकर जन्मोत्सव समाप्त हुआ।

माँ की कृपा से कुञ्ज बाबू के पंचम पुत्र का सर्पदंश से परित्राण

तदुपरान्त कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी अपनी छोटी लड़की का विवाह करने के लिए सपरिवार हमारे टिकाटूली के मकान में आये। माँ उस विवाह के समय उपस्थित थीं। जामाता का नाम श्यामाकान्त वन्द्योपाध्याय (जमशेदपुर) था। वे माँ के अत्यन्त भक्त थे और आगे चलकर भोलानाथजी से उन्होंने मन्त्रदीक्षा ली।

विवाह के बाद सब लोग कुछ दिन ढाका ही रहे और सदा माँ के समीप आते-जाते रहते थे। सावन के महीने में कुञ्ज बाबू के पञ्चम पुत्र मनु की सर्पदंश (साँप के डँसने) से मृत्यु जन्मपत्र में लिखी थी। उस बात का उल्लेख कर मनु की माँ ने माँ से कहा, "माँ, इस लड़के को यदि तुम्हारे निकट रख जाऊँ तो शायद इसकी रक्षा हो जाय।" माँ ने कहा, "कोई आवश्यक नहीं है, संग ही ले जाओ।" वे सब काशी चले गये। इसके कुछ ही दिन बाद संभवतः सावन के महीने में माँ भोलानाथजी को साथ लेकर बाहर गईं। कलकत्ते से खबर पाकर कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी और निर्मल बाबू सपरिवार काशी से माँ के दर्शन के लिए विन्ध्याचल गये। एक दिन सब लोग इकट्ठे होकर अष्टभुजा देवी के दर्शन करने गये। वहाँ से सप्तकुण्ड की ओर चले। मार्ग में एक जगह माँ सब को पीछे छोड़ कर जरा आगे बढ़ गईं। थोड़ी दूर जाकर पीछे हाथ कर माँ ने सब लोगों को आगे बढ़ने से रोका। भोलानाथ आदि सभी ने दौड़ते हुए जाकर देखा कि माँ से थोड़ी ही दूर पर एक गेहुँअन साँप निश्चल हो माँ की ओर देख रहा है। माँ ने उसके ऊपर पैर रखा था यह जानकर सभी घबड़ा उठे थे, काटा या नहीं पूछने लगे। माँ कुछ भी नहीं बोलीं, अपने इच्छानुसार तेजी से टहलने लगीं। मनु का छोटा भाई शंकर—उस समय उसकी अवस्था छः या सात वर्ष की होगा—एकाएक अपनी माँ से कह उठा, "माँ, भाईजी को साँप काटेगा ऐसा लिखा था, इसलिए माँ ने उसे ले लिया। बच्चे के मुँह से अकस्मात् यह बात सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ। जन्मपत्री की बात भी सभी को याद

थी । माँ जिस बँगले में रहती थीं वहाँ आ पहुँची । वहाँ पहुँच कर माँ भी जरा हँसते हुए मनु से बोलीं, "मनु, बात तो थी साँप तुम्हें काटेगा, पर काटा मुझे ।" माँ तो साधारणतः कुछ भी नहीं खातीं, किन्तु उस दिन जितनी खिचड़ी बनी थी वह सब माँ ने खा डाली । इधर माँ के पर्यटनार्थ बाहर निकलने के कुछ दिन बाद ही वायुपरिवर्तन के लिए ज्योतिष दादा भी विन्ध्याचल चले आये थे । उन्होंने नीचे मकान भाड़े में लिया था । माँ खाने-पीने के बाद पहाड़ के नीचे ज्योतिष दादा के मकान में घूमने चलीं । वहाँ ज्योतिष दादा ने सर्पदंश की खबर सुन कर घबड़ाते हुए किस पैर में काटा है यह जाने बिना ही दाहिने पैर में कितनी ही औषधियाँ ढाल दीं । माँ ने हँसते हुए कहा, "काटा बाँयें पैर में और औषधियाँ ढाली गईं दाहिने पैर में । बहुत अच्छी चिकित्सा हुई, पर औषधि की कोई आवश्यकता नहीं है ।" थोड़ी देर बाद ही पहाड़ पर बँगले में चली आईं । बच्चे इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे, माँ भी उन्हीं के साथ खेलने लगीं । पीछे एक जगह बैठने पर सभी ने देखा कि पैर के नीचे दो नीले गड्ढे हुए हैं । सभी ने पूछा, साँप के काटने पर कैसा प्रतीत हुआ था ? माँ ने कहा, "विशेष कुछ नहीं, यह पैर थोड़ा चसका था बस ।"

उसके पश्चात् ज्योतिष दादा चुनार गये । माँ भी दो-एक दिन के लिए चुनार गई थीं । सभी को प्रतीत हुआ कि माँ की कृपा से ज्योतिष दादा की जीवनरक्षा हुई । ज्योतिष दादा ने चुनार के पत्थर से माँ का चरणचिह्न तैयार कर ढाका के आश्रम में एक समाधि के ऊपर उसे

ज्योतिष बाबू का चुनार और गिरिडीह निवास

स्थापित किया। उसके ऊपर एक छोटा सा मन्दिर भी बना दिया है। उक्त चरणचिह्न की प्रतिदिन पूजा होती है। तदनन्तर ज्योतिष दादा गिरिडीह जाकर रहे।

माँ का ढाका लौटना

माँ घूम-फिर कर ढाका आईं। एक दिन माँ शाहबाग नाचघर में नगेन्द्र बाबू, निरञ्जन बाबू आदि के साथ बैठी थीं। अष्टभुजा पहाड़ के साँप की चर्चा छिड़ी, माँ के नेत्रों में आँसू भर आये। सबने जब उसका कारण पूछा तो माँ ने कहा, "उस साँप का विशेष ख्याल आ रहा है, मेरी उसके साथ भेंट होगी।" सभी ने पूछा, वह साँप कौन है ? किन्तु माँ ने उत्तर नहीं दिया। माँ बहुधा कहतीं, "सदा सब बातों का उत्तर नहीं होता, उत्तर निकलता ही नहीं, मालूम होता है उस समय भी उसके प्रकट होने का समय न था, इसलिए प्रकट न कर सकी।"

माँ का विद्याकूट पितृगृह गमन

कुछ दिनों के बाद माँ विद्याकूट पितगृह गईं। संग में भोलानाथजी, उनके छोटे भाई यामिनी बाबू, पिताजी, मैं, वीरेन्द्र दादा, नानाजी, नानीजी, माखन और माँ की छोटी बहन—सब लोग चले। विद्याकूट पहुँचे। वहाँ नानाजी के बहुत कुटुम्बी जन हैं, वे सब के सब तथा अन्यान्य ग्रामवासी माँ के दर्शन करने आये और माँ के बचपन का प्रसंग छेड़ कर उन्होंने बहुत आनन्द लूटा। माँ को सबके मकान में ले गये। आश्चर्य की बात है कि सभी नई अवस्था के लोग मुझे माँ की सहोदर बहन समझ कर कानाफूँसी करते थे। ढाका में भी बहुत लोग पहले-पहले

मुझे माँ की बहन समझते थे। बहुत लोग कहते कि माँ के साथ इसका चेहरा मिलता है। जागतिक कोई सम्बन्ध नहीं है कहने पर भी लोगों को विश्वास नहीं होता था, वे समझते कि यह अपना सम्बन्ध छिपा रही है। और मौसीजी साथ ही रहतीं लेकिन उनके सम्बन्ध में ये माँ की बहन हैं ऐसा किसी को अनुमान न होता। इस विषय को लेकर हम लोगों में खूब हँसी होती। विद्याकूट से नाटघर के शिवमन्दिर के दर्शन के लिए जाना हुआ।

खेओड़ा गमन—जन्मस्थान दर्शन

तदुपरान्त एक दिन नानाजी के ननिहाल माँ के जन्मस्थान—खेओड़ा गाँव देखने के लिए हम सब लोग चले। नौका से गये। इस समय वह मकान मुसलमानों ने खरीद लिया है। उसमें मुसलमान लोग निवास कर रहे हैं। उन मुसलमानों ने भी बचपन में माँ को देखा था। माँ उन लोगों के सम्बन्ध में कितनी ही बातें कहने लगीं। वे किसी को चाचा, किसी को नाना और किसी को मामा कह कर पुकारतीं। वे भी माँ के प्रति कितना अधिक प्रेम प्रदर्शित करते। नानाजी से सब लोगों ने माँ का जन्मस्थान दिखा देने को कहा। किन्तु मकान में इतना हेरफेर हो गया था कि नानाजी या नानीजी दोनों में से कोई भी स्थान बतला सके। माँ घूम-घूम कर पेड़ पौधे देख रही थीं, तथा सब पुरानी बातें कह रही थीं। किसी प्रकार भी जन्मस्थान का पता नहीं चल रहा है। यह देख कर मैंने माँ से कहा, "माँ, तुम्हीं दिखा दो न, इतना कष्ट झेल कर हम सब लोग आये हैं, जन्मस्थान के ही दर्शन नहीं हुए।" माँ ने कुछ

कहा नहीं। थोड़ी देर बाद माँ घर के पीछे की ओर एक जगह जा कर खड़ी हो गईं। उस जगह गोबर का टीले की तरह ढेर लगा था। माँ ने उस जगह खड़ी होते ही थोड़ी मिट्टी हाथ में ली और पुक्का फाड़ कर रोने लगीं। आगे चल कर माँ के मुँह से ही विदित हुआ कि वही जन्मस्थान है। अन्यान्य चिह्नों को देख कर नानीजी को भी स्मरण हो आया कि यही जन्मस्थान है। माँ को उस प्रकार पुक्का फाड़ कर रोते देख कर सभी घबड़ा गये। भोलानाथजी तो विशेषरूप से भयभीत हुए, उन्होंने सोचा कि न जाने फिर क्या कर बैठें। कुछ देर बाद माँ शान्त हुईं। नेत्रों का जल पोंछ कर उसी जगह खड़ी हो कर उन्होंने मुसलमानों को पुकारा। उनसे कहने लगीं, "देखो, इस जगह को पवित्र रखने पर तुम लोगों का मंगल होगा। इस जगह आकर तुम लोगों के विशुद्ध भाव से प्रार्थना करने से फल की आशा है। इस स्थान को कदापि अपवित्र न करना।" वे लोग सहमत हुए। पिताजी ने स्थान को अच्छी तरह रखने के निमित्त कुछ देना चाहा, किन्तु उन लोगों ने कुछ लिया नहीं, स्वयं ही स्थान को ठीक तरह रखेंगे कहा। वे यह सब देख कर भयभीत हुए थे। माँ बोलीं, "तुम लोगों को कोई भय नहीं, हम लोग अभी चले जा रहे हैं।" वहाँ की माँ के हाथ की मिट्टी हम लोग ले आये। तदनन्तर एक दूसरे मकान में जाना हुआ। वहाँ तनिक रुक कर हम लोग माँ के साथ फिर नौका द्वारा विद्याकूट को रवाना हुए। इतने अल्प समय में गाँव के किसी को भी विशेष खबर नहीं मिली। जब हम लोगों की नाव चल पड़ी, तब देखते हैं कि

बहुत से लोग दौड़े आ रहे हैं। किन्तु हम लोगों का रुकना हुआ नहीं। एक मकान के निकट जरा नाव रोकी गई, वे लोग दौड़े हुए आकर नाव के पास खड़े हो गये। उस मकान के ही एक भद्र पुरुष नानीजी को 'माँ' कहते थे, माँ के अनन्तर तीन भाई जब छः-छः मास के अन्दर मर गये तब वे ही नानीजी को सान्त्वना देते थे। माँ के प्रति भी वे अपनी बहन के समान ही प्रेम करते थे। उनका नाम था श्रीशचन्द्र, वे डिब्रूगढ़ में काम करते थे। माँ बहुधा दुर्गापूजा में उनके मकान में रहती थीं। माँ ने उनके चरित्र की अत्यन्त प्रशंसा की। श्रीश बाबू भी आकर नौका के निकट खड़े हुए। माँ की बचपन की सखी निर्मला देवी भी[१] आकर खड़ी हुईं। उन्होंने माँ को उतार लेना चाहा, किन्तु माँ राजी नहीं हुईं। थोड़ी देर रुक कर ही हम लोग विद्याकूट को रवाना हुए। दो-तीन घंटे में ही विद्याकूट पहुँच गये। मकान में माँ के एक चचेरे भाई की स्त्री थीं।

कई दिन विद्याकूट रह कर हम लोग ढाका को रवाना हुए। रवाना होते समय माँ अपने एक सम्बन्धी चाचा को पकड़ कर खूब रोने लगीं। हम लोग भी यह देख कर मारे आश्चर्य के सन्न हो गये कि किसी भी अङ्ग की त्रुटि नहीं, पीहर से जाने में रुलाई का अभिनय भी ठीक-ठीक कर रही हैं। देखा जाय तो रोने का कोई कारण नहीं था—माता, पिता, भाई, बहन—

विद्याकूट से ढाका को प्रस्थान

१. माँ का नाम निर्मला सुन्दरी है, उस लड़की का नाम भी निर्मला था। वे माँ की बचपन की सहेली थीं। माँ का 'आनन्दमयी' नाम ज्योतिष बाबू ने रखा है।

सब साथ थे। भोलानाथजी के घर में भी आत्मीय स्वजन सब बहुत तितर-बितर हो गये थे। तीन भाइयों में से किसी के साथ भी बहिनों की बहुत वर्षों से भेंट नहीं हुई थी। छोटे भाई पहले कालीप्रसन्न कुशारी के निकट रहते थे, तदुपरान्त मुक्तागाछा के जमींदार के निकट ही रहते। एक भाई बहुत वर्षों से लापता थे। जब तक बड़े भाई रेवती बाबू जीवित थे तब तक कुछ शृङ्खला बनी थी, उनकी मृत्यु के बाद सब तितर-बितर हो गये। सबसे छोटी बहन को तो माँ ने देखा तक नहीं। उन्नीस वर्ष के बाद माँ ने उन्हें शाहबाग बुलाया—वहीं पहले-पहल भेंट हुई। बुआजी (कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री) कहतीं, "हम लोगों का तो सब एक दम तितरबितर था, बहूरानी (माँ) ही सब को मिला रही हैं।" सब बहिनें और भाई ढाका में ही माँ के कारण इकट्ठा हुए थे। उस दिन माँ बच्ची बन कर पीहर से आते समय रो रही थीं। माँ ने यह भी कहा था कि पहले इन चाचाजी से बातें करने का भी मुझे साहस नहीं होता था। चाचाजी भी पीठ पर हाथ फेरते हुए माँ को शान्त कर रहे थे। फल यह हुआ कि माँ का रोना देखकर पास-पड़ोस के आत्मीय स्वजन, जो वहाँ उपस्थित थे, सभी रोने लगे। माँ नौका पर चढ़ीं। आँसू पोंछ रही थीं और हँस रही थीं। हम लोग माँ की यह लीला देखकर नौका में आकर खूब हँसे। वीरेन्द्र दादा ने कहा, "सब को रुलाये बिना माँ आने वाली न थीं, इसीलिए स्वयं रोकर सबको रुला आईं।"

हम लोग नाव से आ रहे थे, नवीनगढ़ पहुँच कर

स्टीमर पकड़ना था—नवीनगढ़ तक नौका से आना पड़ता है। माँ नौका पर एक किनारे की ओर बैठी थीं। एक छोर पर वीरेन्द्र दादा और एक छोर पर मैं बैठी थी। नदी के बीच में नाव तेजी से चल रही थी, एकाएक हमने देखा कि बहुत दूर से एक साँप तेजी से नौका की ओर चला आ रहा है। माँ की ओर निहार कर मैंने देखा कि माँ भी एकटक से साँप की ओर देख रही हैं, साँप भी माँ के बराबर ही आ रहा है। माँ बहुत पहले से ही निश्चल होकर बैठी थीं, प्रतीत होता है कि माँ बहुत पहले से ही साँप को देख रही थीं, किन्तु हम लोगों को कुछ निकट आने के बाद साँप दिखाई दिया। आश्चर्य है कि नाव इतनी तेज चल रही थी, किन्तु साँप इधर-उधर न जा कर एकदम माँ जिधर बैठी थीं उधर से ही आ रहा था। माँ किनारे पर बैठी थीं। थोड़ी देर में ही साँप उस ओर से ही नाव पर चढ़ने लगा। माँ चुप बैठी थीं, साँप भी लगभग शरीर से लगने वाला ही था कि यह देखकर हम लोग उछल उठे, माझी ने भी उसी समय साँप को चढ़ते देखकर हाथ के डाँड़े से साँप पर आघात किया। किन्तु साँप नाव के नीचे चला गया; पानी के उछल उठने से माँ का शरीर भींग गया। माँ स्नान कर उठीं, किन्तु तो भी एकदम चुप रहीं। हमने माँ से कपड़े बदलने को कहा, किन्तु माँ ने कपड़े बदले नहीं, माँ ने वे भींगे कपड़े शरीर पर ही सुखाये। उस समय हम लोगों ने सोचा—माँ ने कहा था, "अष्टभुजा के साँप की बात याद आने से आँखों में आँसू आये हैं। फिर उसके

नौका के मार्ग में सर्परूपी महापुरुष के दर्शन

साथ भेंट होगी।" वीरेन्द्र दादा बहुत बार माँ से पूछने लगे, "माँ, यह साँप के रूप में कौन आया था ?" माँ थोड़ी देर तक चुप रहीं। फिर कहने लगीं, "मैंने कई हाथ ऊपर शून्य में दो महापुरुष बैठे हुए देखे। एक गुरु था और दूसरा शिष्य। शिष्य खड़ा था।" तदनन्तर कुछ नहीं बोलीं। सब ने अनुमान लगाया कि शायद साँप कौन था, इस प्रश्न का ही यह जवाब हुआ हो। शायद कोई महापुरुष साँप के रूप में माँ के समीप आये हों। फिर एक बार माँ ने कहा था, "फिर दर्शन होंगे।" हम लोग ढाका लौट गये।

बहुत दिनों के बाद माँ एक बार निरञ्जन बाबू के मकान के कीर्तन में गई थीं। दूसरी मंजिल में जाकर एक कमरे में जमीन पर लेटी थीं। सहसा माँ को प्रतीत हुआ कि पैरों के निकट साँप है। किन्तु उस समय कुछ बोलीं नहीं। पीछे जब नीचे कीर्तन में जा रही थीं तब सीढ़ी से उतरते ही साँप के ऊपर पैर पड़ा, पीछे भोलानाथजी थे, उन्हें माँ ने हटा दिया। साँप को मारने के लिए सब लोग दौड़े आये। किन्तु माँ ने कहा, "यदि मार सको तो मारो।" सीढ़ी के बाद बड़ा बरामदा था, साफ-सुथरी जगह थी, सारे मकान में उजियाला था। किन्तु सीढ़ी से साँप कहाँ चला गया, कोई देख न पाया। माँ कीर्तन में जा बैठीं। इस तरह अनेक बार माँ ज्यों ही कहतीं, "साँप, साँप का ख्याल हो रहा है।" देखने में आता कि तुरन्त ही दो-चार दिनों के बीच में माँ साँप

निरञ्जन बाबू के मकान में माँ का सर्पदर्शन

देखतीं। साँप के साथ माँ का क्या सम्बन्ध है यह माँ ही जानें। रमना की जिस जगह को माँ ने लेने के लिए कहा था (वर्तमान आश्रम की भूमि), वहाँ भी बहुत बड़े साँप हैं। एक बार एक बहुत बड़ा सफेद साँप दिखाई दिया था। एक बार मैंने सुना था प्रतुल के हाथ जिस समय माँ दूध और केले भेजती थीं उस समय एक बार एक गड्ढे के मुँह पर माँ ने पैर रख खड़ी हो कर प्रतुल से कहा, "तुम यहाँ आकर दूध और केले दे जाना, कोई भय नहीं है।" ढाका बक्सी बाजार के सत्य बाबू और उनकी स्त्री भी बहुत दिनों से माँ के समीप आ रही थीं। उन्होंने भी कुछ दिन दूध और केले दिये थे।

कलकत्ता आते-जाते समय हर बार ही प्यारीबानू के यहाँ माँ को ले जाना होता और कीर्तन अदि भी होता था। प्यारीबानू की केवल एक लड़की और एकमात्र लड़का है—उनके विवाह के अवसर पर संवत् १९८४ में उन्होंने माँ को कलकत्ता बुलाया। पिताजी, मैं और माँ भोलानाथजी के साथ गईं। उन्होंने विवाह के समय माँ को उपस्थित रखा। वर और वधू माँ को प्रणाम कर विवाहमण्डप में गये। एक ही समय दो घरों में दो विवाह हुए। हुए। उन्होंने माँ को दोनों घरों के विवाहमण्डप के पास बैठा रखा। यद्यपि बाहरी दृष्टि से देखने पर प्यारीबानू के बाग में भोलानाथजी एक कर्मचारी-मात्र थे, किन्तु उस समय उन्हें उस दृष्टि से बिलकुल ही नहीं देखती थीं, बहुत अधिक श्रद्धा रखती थीं। विवाह के

प्यारीबानू के पुत्र और कन्या के विवाह में माँ का कलकत्ता गमन

पश्चात् भी उन्होंने कई दिनों तक माँ को कलकत्ता रखा। माँ को प्रतिदिन अपने मकान में बुलातीं। प्यारीबानू आदि का एक पारिवारिक झगड़ा था। एक दिन उन्होंने माँ से कहा, "मेरी सास कभी यहाँ नहीं आती हैं। इस बार आपकी कृपा से ही वे आई हैं। हम लोगों में एक भीषण कलह चल रहा है। हमारा विश्वास है कि यदि आप उपस्थित रहें तो सब मंगल हो जायगा। इसलिए कल आपको समीप में बैठा कर हम अपनी पारिवारिक अशान्ति की मीमांसा करेंगी।" वैसा ही हुआ—माँ को समीप में बैठा कर वे सब एकत्रित हो बैठीं एवं आश्चर्य की बात है कि उनके उतने दिनों का विवाद मिट गया। मैं भी साथ थी। उन्होंने माँ से कहा, "आपकी कृपा से ही यह मीमांसा हुई। आप हमारा बगीचा छोड़ कर कहीं भी नहीं जा सकेंगी।" सास ढाका में रहती थीं इस कारण वे ढाका जाती न थीं। उस समय यह निश्चय हुआ कि सब लोग ढाका जायँगे। माँ से वहाँ जाकर अपने साथ भेंट करने को कहा। मुसलमानों के बगीचे में काली-पूजन हो यह कोई कम साधारण बात नहीं है। केवल माँ के प्रति प्यारीबानू की श्रद्धा थी, इसी कारण वह हो सका था। हाँ, बीच में रायबहादुर योगेश बाबू भी थे। माँ के साथ हम लोग ढाका लौट आये।

प्यारीबानू के पुत्र और कन्या के विवाह के अवसर पर स्व० चित्तरञ्जनदासजी की बड़ी लड़की अपर्णा देवी निमन्त्रित होकर आई थीं। माँ के बदन पर लाल किनारे की साड़ी और कपाल पर बड़ा-सा सिन्दूर का टीका देख कर उन्हें

अपनी माँ के (वासन्ती देवी के) बहुत दिन पहले देखे हुए स्वप्न की स्मृति जाग पड़ी। वासन्ती देवी ने विधवा होने से पहले एक दिन स्वप्न देखा था कि एक स्त्री—जिनके बदन पर लाल पाड़ की साड़ी और कपाल पर बड़ा सिन्दूर का टीका था—उनसे कह रही थीं, "तुम सावधान होओ, तुम्हारे ऊपर भयानक विपत्ति आ रही है।" अपर्णा देवी को उक्त स्वप्न की बात याद आते ही उन्होंने वासन्ती देवी के निकट माँ का संवाद भेजा। एक दिन प्यारीबानू के मकान के कीर्तन में वासन्ती देवी माँ को देखने आईं। वे बहुत देर तक माँ की ओर निहारती रहीं। सबके पूछने पर उन्होंने कहा, "बहुत दिनों की बात है, मुझे ठीक स्मरण नहीं है, फिर भी यही मूर्ति मानो मैंने स्वप्न में देखी थी[१]। तदनन्तर अपर्णा देवी को आदेश देकर उन्होंने माँ को कीर्तन सुनवाया एवं स्वयं माँ को गोद में लिया। उक्त दास महोदय की बहिन उर्मिला देवी के साथ वासन्ती देवी फिर भी अनेक बार माँ के समीप आईं एवं अपने मकान में भी माँ को ले गईं। तीनों की माँ पर असीम श्रद्धा थी। अपर्णा देवी भी माँ को अपने घर ले गईं।

कुछ दिनों के बाद (सं० १९८४ वि० में ही) प्यारीबानू पुत्र और बहू तथा लड़की और जामाता के साथ ढाका सास के समीप आईं। एक दिन उन्होंने माँ

---

१. स्व० चित्तरञ्जनदासजी की मृत्यु के कुछ दिन पहले फोटो में दास महोदय के साथ उनकी स्त्री को देखकर माँ ने कहा था, इस महिला के ऊपर विपत्तियों का पहाड़ आ रहा है। ये शीघ्र ही विधवा हो जायँगी। उस समय भी माँ उनको पहचानती न थीं।

प्यारीबानू का ढाका आगमन

के हाथ की रसोई खाने के लिए कहा था, इसलिए उनसे खाने के लिए कहा गया। माँ ने अपने ही हाथ से अधिकांश रसोई बनाई। मैंने और मटरी बुआ ने साथ में सहायता की। उन्होंने बड़े आनन्द के साथ पेड़ के नीचे बैठ कर पत्तल बिछा कर भोजन किया। मैंने खाना परोसा। माँ समीप में ही बैठी रहीं। लड़के-लड़कियाँ सब कितने प्रकार की रसोई बनी है यह सुनने लगे। उन्होंने हँस कर कहा, "अपनी नानी के मकान में भी हम इतने प्रकार के भोजन नहीं करते हैं, यहाँ तो बहुत अधिक प्रकार के भोजन प्रस्तुत हैं।" सब लोगों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ खाया-पीया। मैं पहले कह चुकी हूँ कि माँ जब जो कुछ करती हैं वही मानो परिपूर्ण होता है। नवाब के घर के सब लोगों को खिला रही थीं, उस काम में भी कोई त्रुटि नहीं रही। नवाबजादी प्यारीबानू ने अपने हाथ से कालीप्रतिमा के गले में सोने का हार पहना दिया। कुछ दिनों के बाद वे सब कलकत्ता चले गये।

माँ का गोहाटी जाने का निश्चय हुआ। इधर कुम्भमेला में जाते समय मुन्सिफ दिनेशचन्द्र राय महाशय के साथ

कामाख्या-यात्रा (सं० १९८४ वि०)

कलकत्ते में माँ की भेंट हुई थी। वे उस समय सपरिवार कलकत्ते में ही थे। थोड़े दिन पहले उनका एक होनहार लड़का मर गया था। वह लड़का नन्दू के साथ प्रेसीडेन्सी कॉलेज में बी० ए० कक्षा में पढ़ता था। नन्दू ही दिनेश बाबू और उनकी स्त्री को माँ के साथ भेंट कराने के लिए ले

आया था। माँ के दर्शन कर उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली थी। उसके बाद एक छुट्टी में वे मातृ-संग-लाभ के लिए ढाका आकर भाड़े का मकान लेकर रहे थे। उस समय वे माँ को एक बार फिरोजपुर ले जाने के लिए अनुरोध करने लगे। गिरिजाशंकर जी का मकान वरिशाल के बाइसारी गाँव में है—वे भी एक बार माँ को अपने घर ले जाना चाहते थे। माँ हम सब लोगों को साथ लेकर संवत् १९८४ वि० में ही गोहाटी कामाख्या दर्शन के लिए चलीं। निश्चय हुआ कि गोहाटी से ढाका न आकर दार्जिलिंग से फिरोजपुर जायँगे और वाइसारी होते हुए लौटेंगे। मैं, पिताजी और माँ भोलानाथजी के साथ चलीं। वीरेन्द्र दादा भी गये। कामाख्या पहाड़ पर चढ़ते समय पहले-पहले तो माँ खूब जल्दी-जल्दी चढ़ीं, कुछ दूर जाते ही साँस की गति दूसरे ढंग की हो जाने के कारण फिर चढ़ न सकीं। हम लोग पकड़ कर किसी प्रकार उठा ले गये। ऊपर जाकर देखते हैं कि काशी से कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी आये हैं। निर्मल बाबू आये नहीं, किन्तु उनकी स्त्री आई हैं। दो-चार दिनों में ही कलकत्ते से नानाजी (नानाजी कलकत्ते में सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी के मकान में कुछ दिनों से रहते थे), सुरेन्द्र बाबू, चण्डी बाबू, चारु बाबू (रायबहादुर के कनिष्ठ पुत्र) आदि बहुत से लोग आ पहुँचे। खूब आनन्द रहा। कामाख्या देवी के दर्शन हुए। एक दिन रात्रि में माँ बाहर गईं, उन्होंने देखा—सम्पूर्ण पहाड़ मानो एक पवित्र सत्ता से चारों ओर परिव्याप्त है। उस पवित्र भाव का प्रभाव चारों ओर बिखर रहा है। मुकुटधारी कितने राम, कृष्ण तथा अन्यान्य स्त्री-देवता

दौड़ादौड़ी कर खेल रहे हैं, सभी की बाल्यावस्था है। और भी अनेक ऋषिमुनियों को माँ ने देखा, जिनकी लम्बी-लम्बी जटा और दाढ़ियाँ थीं और कोई बाल्यावस्था से पार नहीं हुए थे। उन सभी लोगों ने माँ को पाकर आनन्द मनाया। इतनी मूर्तियाँ थीं कि पहाड़ मानो दिखाई नहीं दे रहा था। माँ शीघ्रता से कमरे में चली आईं। उस समय माँ ने कुछ कहा नहीं, पीछे सब वृत्तान्त कहा। मैंने कहा, रामायण-महाभारत में बालखिल्य ऋषियों का वर्णन मिलता है, वे सभी बालक और महा तपस्वी थे। माँ ने कहा, "वे ही न हों, मैंने तो यह कथा कभी सुनी नहीं, सभी किन्तु उसी तरह के थे। देख, स्थान का उस समय क्या प्रभाव था। निर्मल बाबू की स्त्री मेरे साथ ही थी, उसने कुछ देखा नहीं, किन्तु उसके सम्पूर्ण शरीर में मारे भय के रोंगटे खड़े हो गये थे। वह भय का कारण न बतला सकी।" पूजा के समय भी अनेक बालक-बालिकाएँ माँ के समीप आई थीं। कामाख्या पहाड़ में एक दिन रात्रि के समय माँ और भोलानाथजी लेटे थे, हम सभी लोग बैठे थे; माँ पहले की बातें, अष्टग्राम की बातें, बाजितपुर की बातें, माँ किस प्रकार गृहस्थी चलाती थीं ये सब बातें भी कह रही थीं, पिताजी एक कमरे में सारी रात बैठ कर अपना जपादि कृत्य कर रहे थे। उस कमरे में माँ के साथ बातें करते-करते भोर हो गयी। कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी सहसा बोले, "आज मैंने मन में निश्चय किया था कि माँ से अपने जपतप की बात करूँगा, कुछ भी नहीं हुआ, व्यर्थ बातों में रात कट गई।" माँ तुरन्त बोल उठीं, "तुम लोग तो कितनी ही बातें कहते हो, मालूम पड़ता है उनमें समय

व्यर्थ नहीं जाता, मेरी गृहस्थी की कथा ही मालूम होता है व्यर्थ हुई।" सब को लगा कि माँ ने शिक्षा देने के लिए ही यह बात कही। माँ की प्रत्येक बात हम लोगों के लिए मन्त्र के तुल्य श्रद्धा की वस्तु है, उसे हम भूल जाते हैं यह सोचकर ही माँ ने हँसी-ठट्ठे में उसका स्मरण करा दिया। जिस बात को सुनने से मन पवित्र होता है, वह क्या व्यर्थ की बात हो सकती है ? विशेषकर माँ के पूर्व जीवन की बातें—पूर्व घटनाएँ—जो अतिपवित्र बातें हैं। काम की बात और व्यर्थ की बात किसे कहते हैं यह भी हम लोग नहीं जानते हैं। कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी उक्त बात का तात्पर्य समझ कर अत्यन्त लज्जित हुए और उन्हें अपनी गलती प्रतीत हुई। कामाख्या पहाड़ पर एक दिन भोलानाथजी माँ की पूजा करने वाले थे, सारा प्रबन्ध किया जा चुका था। माँ बैठीं थीं, भोलानाथजी पूजा कर रहे थे कि इतने में माँ एकाएक समाधिस्थ हो पड़ीं। बहुत देर तक उसी तरह बैठी रहीं। कपाल पर सिन्दूर के टीके के समीप कुछ स्थान खूब सफेद दिखाई दे रहा था। वहाँ पर उपस्थित सभी ने उसे देखा। उस समय तक कलकत्ते का दल वहाँ नहीं पहुँचा था। जिस कमरे में पूजा हुई उसके बाद विशाल बरामदा था, बरामदा खूब ऊँचा था। बरामदे के नीचे कुछ दूर पर बलि हुई। भोलानाथजी ने ही बलि दी। पिताजी ने संयोगवश बकरे को बलि के बाद इस तरह पकड़ा था कि रक्त से उनका स्नान हो उठा। समाधिभंग होने के बाद माँ ने कहा, "बलि के रक्त की बूँद मेरे शरीर में लगी हैं मुझे स्पष्टरूप से प्रतीत हुआ।" इस कथन से सभी को अचंभा हुआ, क्योंकि इतनी दूर से साधारणतया रक्त [illegible] ही नहीं

सकता है। भोग लग गया। पूजा के बाद कलकत्ते का दल आ पहुँचा। कुछ दिनों तक माँ ने पहाड़ ही पहाड़ खूब आनन्द से भ्रमण किया।

उसके अनन्तर माँ ने फिरोजपुर की ओर प्रस्थान किया। माँ के जाने में विलम्ब होने के कारण दीनेश बाबू ने टेलिग्राम से सूचित किया कि मैं नहीं रह सका, बदली होने के कारण चला जा रहा हूँ, किन्तु फिरोजपुर के सब लोगों को माँ दर्शन दे जायँ। ढाका के गिरिजा बाबू, सुबोध, सीतानाथ सब फिरोजपुर जाकर माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोग फिरोजपुर पहुँचे (१९८५ वि०)। स्टीमर से उतर कर थोड़ी दूर नाव से जाना पड़ता है। नाव के घाट पर पहुँचते न पहुँचते ही कीर्तन की अति मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी, माँ की भावावस्था हो पड़ी। नाव के घाट पर लगते ही बहुत से लोग कीर्तन करते-करते घाट पर आते दिखाई देने लगे। सब माला-चन्दन लेकर आ रहे थे, माँ को पकड़ कर उठाया गया और कमर में कपड़ा बाँध दिया गया। सब लोगों ने माला और चन्दन से माँ को सजाया। वे सभी को माला पहना और चन्दन लगा रहे थे। उस भावावस्था में माँ के नेत्र अर्धनिमीलित थे, शरीर मानो छोड़ दिया था। सिर के बाल खुले थे, शरीर और कमर पर कपड़ा लपेटा था, एक जम्पर बदन पर था। ऐसी अवस्था में वे हिलते-डुलते कीर्तन के साथ चलीं। माँ का वैसा रूप देखकर सब मानो मस्त हो उठे। सभी उस मूर्ति को देख रहे थे और आनन्द में विभोर होकर कीर्तन कर रहे थे। जहाँ पर माँ का रहने का स्थान बनाया गया था, वहाँ जाना हुआ। माँ वहाँ

फिरोजपुर में माँ

पहुँचते ही बैठ गईं। सब लोग घूम-घूम कर कीर्तन करने लगे, दीनेश बाबू के मुँह से सभी ने माँ की बातें सुनी थीं। थोड़ी देर बाद भोग हुआ। माँ कुछ भी खा न सकीं, भावावस्था में ही थीं। कीर्तन भी बन्द नहीं हो रहा था। माँ दो दिन वहाँ रहीं, कीर्तन प्रायः सदा ही चलता रहा। सुनने में आया कि फिरोजपुर के सभी लोग माँ के निकट आये, केवल एक बुढ़िया, जो चल नहीं सकती थी, बाकी रही। माँ को साथ लेकर सब लोग उसे दिखा लाये।

गिरिजा बाबू माँ को फिरोजपुर से अपने घर ले गये; वहाँ माँ की खूब भावावस्था हुई, कीर्तन भी खूब हुआ। सारे दिन कीर्तन होने के बाद रात्रि में थोड़ा बन्द होने पर भोग हुआ। बहुत लोगों ने प्रसाद पाया। गिरिजा बाबू की

वाइसारी में माँ

वृद्धा माता, स्त्री और बाल-बच्चे सब घरही पर थे। माँ के पहुँचने में देरी देखकर गिरिजा बाबू आदि माँ के आने के सम्बन्ध में निराश हो गये थे। एक दिन उनकी माँ ने भोर में उठकर कहा, "मैंने स्वप्न में देखा है कि काली और मनसा माता आ रही हैं, तू फिरोजपुर जा, निश्चय ही माँ आ रही हैं।" उनके फिरोजपुर जाने के बाद ही माँ आ पहुँचीं। तीन दिन गिरिजा बाबू के मकान में रहे। माँ का वहाँ भावावेश हुआ था, गिरिजा बाबू ने वहाँ पर माँ का एक आश्रम बना दिया। वहाँ से वीरेन्द्र बाबू (डॉक्टर) अपने मकान में माँ को ले गये। वहाँ भी कीर्तनादि खूब हुआ, बहुत लोगों ने प्रसाद पाया। गिरिजा बाबू के मकान में ही वीरेन्द्र महाराज ने आकर माँ का संग लिया।

वीरेन्द्र डॉक्टर के मकान से सोहागदल ग... में जाना

हुआ। एक गाँव से दूसरे गाँव में कुछ दूर नाव में और कुछ दूर पैदल ही गईं। साथ ही साथ बहुत लोग कीर्तन करते-करते जा रहे थे। कोई भी माँ को छोड़ना नहीं चाहता था।

सोहागदल गाँव

बच्चे, बूढ़े सब सम्मिलित होकर कीर्तन कर रहे थे, सब सोचते थे कि सदा कीर्तन करने पर माँ फिर जा न सकेंगी। माँ ने एक दिन पिताजी से कहा, "आज जायँगे, जाने का प्रबन्ध करो।" पिताजी ने नाव ठीक की, दोपहर में ही माँ सब लोगों को साथ लेकर बाहर निकल पड़ीं। माँ नाव में आते ही समाधिस्थ होकर पड़ी रहीं।

वहाँ से हम लोग कलकत्ता सलकिया में बुआजी के घर गये, वहाँ से माँ के साथ राजसाही गये, तदुपरान्त फिर कलकत्ता होते हुए ढाका जाना हुआ। हम लोग माँ को लेकर ढाका पहुँचे। इन सब गाँवों में माँ अनेक लोगों के मकानों में गईं। सभी लोग अपना मकान पवित्र करने के लिए माँ को अपने-अपने मकानों में ले गये। बहुत से मकानों में एक घिरे हुए स्थान में लक्ष्मी अथवा राधाकृष्ण का आसन रहता है वहाँ जाकर माँ ने उन आसनों से बतासा अथवा पान उठा कर खाये। माँ के ऊपर सभी की देवीबुद्धि थी, इसलिए आसन के पान या बतासा माँ को देने में किसी को हिचक प्रतीत नहीं हुई। इस प्रकार विविध लीलाएँ कर माँ ढाका पहुँचीं। देवघर से बाहर निकलने के बाद से ही माँ फिर एक बार में एक वर्ष भी ढाका नहीं रहती हैं।

सलकिया और राजसाही होते हुए ढाका लौटना

छठवाँ अध्याय

कुछ दिन माँ का खाने का यह नियम चला कि एक बार में हाथ में जितना आये उसे उठा कर अथवा रख कर दाहिने हाथ से खिला देना होगा। उसके सिवा और कुछ भी न खायेंगी। मैं वही करती। एक दिन कलकत्ते प्रमथ बाबू के मकान में भी इसी तरह खिलाया। कई दिनों तक किसी भी बर्तन में कुछ न खातीं। कमरे की फर्श को साफ-सुथरी कर माँ को खिलाना पड़ता। एक दिन भोलानाथजी के न जाने क्या कहने पर उन्होंने कहा, "काँसे के बर्तन में मैं नहीं खाऊँगी।" पीतल के बर्तन में भी नहीं खाऊँगी कहा। इसपर भोलानाथजी ने उपहास कर कहा, "किसी में भी नहीं खाएगी, तब क्या चाँदी के बर्तन में खाएगी ?" माँ ने भी जवाब दिया, "ठीक ही कहा है, यदि चाँदी का बर्तन हो तो उसमें खा सकती हूँ। किन्तु कह देती हूँ कि मेरे लिए न तो कोई चाँदी का पात्र तुम बनाना और न यह बात किसी से कह ही सकोगे।" आश्चर्य की बात है कि उक्त कथनोपकथन के दो-एक दिन में ही ज्योतिष दादा ने मकान से कुछ सन्देश (एक प्रकार की मिठाई) रख कर एक चाँदी की थाली में माँ के लिए भेज दिया गया। कुछ दिनों के बाद पिताजी ने भी एक चाँदी की थाली माँ को दी। उस समय इसपर खूब हँसी हुई। तब से कुछ समय

भोजन का नूतन नियम

तक माँ ने चाँदी के पात्र में भोजन कर फिर अन्यान्य पात्रों में करना आरंभ किया। काँसे के बर्तन में भूल से भी यदि कभी भोजन हो जाता तो भोजन बन्द हो जाता, अवस्था में भी एक विषम परिवर्तन हो पड़ता। बहुत दिनों के बाद यह नियम टूट गया।

प्रमथ बाबू ने स्वयं ही वर्णन किया है कि एक दिन उनके मन में माँ के सम्बन्ध में न जाने कैसा एक संशय जागा। उन्होंने सोचा, मैं जिस देवी का मन में ध्यान कर रहा हूँ, यदि माँ मुझे वही मूर्ति दिखा दें तो मेरा सन्देह निवृत्त हो जायगा। उन्होंने इस विषय में किसी से भी कुछ कहा नहीं। उसी दिन सन्ध्या के समय माँ, भोलानाथजी और प्रमथ बाबू सिद्धेश्वरी गये। माँ कभी-कभी वहाँ जातीं। माँ उस दिन भी वहाँ जाकर कालीमन्दिर के बरामदे में बैठीं। बहुत रात बीत गई थी, माँ के तो लौटने की कोई ठीक नहीं, भोलानाथजी बरामदे में लेटे-लेटे सो पड़े। प्रमथ बाबू बैठ कर जप कर रहे थे। उन दिनों माँ खूब लम्बा घूँघट काढ़े रहती थीं, मुँह अक्सर दिखाई नहीं पड़ता था। माँ उसी तरह बैठी थीं। बहुत देर बाद चारों ओर सन्नाटा छा गया। माँ एकाएक उठ खड़ी हुईं, सिर का कपड़ा गिर पड़ा, सिर उलट कर पीठ से जा मिला, सिर के बाल खुल गये, क्या हुआ मैं नहीं जानता। प्रमथ बाबू ने उस दिन छिन्नमस्ता मूर्ति देखने की बात सोची थी; वही माँ के शरीर में देख कर वे तो चकित रह गये एवं भूमि पर लोट कर उन्होंने माँ को प्रणाम किया। मुहूर्त के बाद ही माँ फिर सुस्थिर होकर बैठ गईं,

प्रमथ बाबू और उनके चपरासी को अलौकिक दिव्य रूप-प्रदर्शन

भोलानाथजी के जागने पर सब लोग शाहबाग चले आये। तदनन्तर प्रमथ बाबू अपने घर चले गये। उस दिन उनके साथ एक चपरासी था, उसने भी यह सब देखा था। उसने प्रमथ बाबू से कहा, "बाबूजी, मैंने माँ के स्वरूप में दश महाविद्याओं का रूप देखा।" प्रमथ बाबू ने उसे गले लगा कर कहा, "तुम मुझसे भी अधिक भाग्यवान् हो, क्योंकि मैंने केवल एक रूप देखा है और तुमने दस रूप देखे हैं। इस घटना की बात पिताजी ने प्रमथ बाबू के मुँह से ही सुनी थी।

माँ नित्यसिद्धा हैं— बालानन्द स्वामी का मत

देवघर के बालानन्द स्वामीजी ने भी एक दिन स्वयं ही पिताजी से कहा था, "जिनका संग पकड़े हो, छोड़ना मत। माँ तो साधिका नहीं हैं। ये नित्यसिद्धा हैं, किसी कर्म के निमित्त जन्म लिया है, उस कर्म की पूर्ति होने पर ही चली जायँगी। इन्हें किसी प्रकार का साधन-भजन करना नहीं है।" माँ के सम्बन्ध में इसी तरह की और भी बहुत सी बातें उन्होंने कही थीं, किन्तु माँ इस प्रकार साधारण ढंग से चलती हैं कि हम सभी बातें भूल जाते हैं। विशेष-विशेष एक से एक घटना देखने पर भी पीछे फिर सब विस्मृत हो जाती है।

सिद्धेश्वरी में माँ की गुप्त लीला

इसी बीच में एक बार शिवरात्रि के दिन दोपहर के समय माँ भोलानाथजी, पिताजी, वीरेन्द्र दादा, नन्दू, मरणी और मुझे साथ लेकर सिद्धेश्वरी गईं। माँ वहाँ जाकर उस गर्त में ही बैठीं, थोड़ी देर बाद उठ कर माँ ने भोलानाथजी से वहाँ पर बैठने को कहा। भोलानाथजी के

बैठने पर माँ जाकर उनकी एक जंघा पर बैठीं। और दूसरी जंघा के ऊपर मरणी को बैठाया। उसके पश्चात् पिताजी से माँ ने (अपनी) गोद में बैठने को कहा। पिताजी माँ की गोद में बैठे। पिताजी को उठा कर फिर वीरेन्द्र दादा से बैठने को कहा, वे भी बैठे। तदुपरान्त उन्हें उठा कर मुझसे बैठने को कहा एवं मुझे उठा कर नन्दू को बैठाया। उसके बाद सब उठ गये। गुप्त भाव से ही उक्त लीला हुई, दूसरे किसी के श्रुतिगोचर या दृष्टिगोचर नहीं हुई। कुछ समय वहाँ रह कर शाहबाग लौट आना हुआ।

माँ के शाहबाग रहते समय १९८४ वि० में हम लोगों के टिकाटूली के मकान में दुर्गापूजा हुई। वह पैतृक पूजा थी, इसलिए आत्मीय स्वजन सभी इकट्ठे हुए। माँ के भक्त भी बहुत से आये। कलकत्ते से बहुत लोग आये। सभी लोग टिकाटूली के मकान में इकट्ठा हुए। माँ और भोलानाथजी षष्ठी के दिन ही टिकाटूली के मकान में चले गये। काशी से कुञ्जमोहन मुखोपाध्याय सपरिवार गये थे। उनके मित्र और श्रीयुत् अरविन्द घोषजी के शिष्य मिर्जापुर के डॉक्टर श्रीयुत् उपेन्द्रनाथ पन्द्योपाध्यायजी भी माँ का नाम सुन कर कुञ्ज बाबू के साथ ही माँ के दर्शन करने सपत्नीक गये थे। जिन पुरोहितजी ने वासन्ती पूजा कराई थी, वे ही दुर्गापूजा कराने गये थे। उनके पैर में बड़ी व्यथा हुई थी। माँ ने कहा, "इस तरह से पूजा करना ठीक नहीं है। अपनी पूजा अपने ही तो करना उचित है। तुम स्वयं नहीं कर सकते हो इसी से पुरोहित [illegible] कराई जाती है। बाबा ही (पिताजी ही) पूजा

टिकाटूली के मकान में पिताजी की पैतृक दुर्गापूजा—सं० १९८४ वि०

करें ।'' सब भाइयों में पिताजी ही सबसे बड़े थे, इसलिए माँ के आदेश से वे ही पूजा करेंगे और पुरोहित मन्त्र बोल देंगे यह निश्चय हुआ। जीवन में ऐसा कभी किसी ने देखा न था। पिताजी पूजा करने बैठे। माँ उसी कमरे में एक छोर पर बैठी रहतीं। पिताजी माँ के चरणों की धूली और आदेश ले कर पूजा में बैठे। जितना देर तक पूजा होती उतनी देर तक माँ उसी कमरे में बैठी रहतीं। पिताजी पूजा करते और अन्यान्य सब लोग पूजा की सामग्री देते और जुटाते। श्रीयुत् सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी पिताजी के चचेरे भाई हैं, अतः वह उनकी भी पैतृक पूजा थी। वे सपरिवार आये थे। चारु बाबू, अनन्त बाबू और चण्डी बाबू भी आये थे। माँ इन पाँच जनों को पञ्च पाण्डव कहती थीं। एक दिन इन पाँच जनों ने माँ को शाहबाग ले जाकर पूजा की। दुर्गापूजा में बलि का भी प्रबन्ध किया गया था। सप्तमी के दिन बलि निर्विघ्न हो गई। तीन दिन तीन बलियाँ होती थीं, यही पूर्व पुरुषों का नियम था। अष्टमी के दिन पिताजी के कल्याण के लिए एक विशेष बलि बहुत दिनों से दी जाती थी। सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी भी बलि दे रहे थे। अष्टमी के दिन बकरे का उत्सर्ग करने के अनन्तर खड्ग लेकर जाते समय उन्होंने माँ को पहले एक बार प्रणाम किया, फिर खड्ग के उत्सर्ग के अनन्तर जब कि खड्ग ले कर बलि देने जा रहे थे उस समय खड्ग को जमीन पर रख कर माँ को प्रणाम कर बलि के कमरे में चले गये। जिस कमरे में पूजा हो रही थी उससे सटे हुए दूसरे कमरे में प्रतिमा के सामने बलि देने का प्रबन्ध किया गया था। इधर माँ प्रतिमा की ओर मुँह कर के पूजा के कमरे के

एक छोर पर बैठी थीं। माँ की पीठ की ओर बलि की कोठरी थी। माँ जहाँ पर बैठी थीं वहाँ से बलि का स्थान बिलकुल भी दिखाई नहीं देता था, जब कि विशेषकर माँ प्रतिमा की ओर मुँह करके बैठी थीं। किन्तु ज्यों ही वे खड्ग लेकर बलि देने के लिए गये त्यों ही माँ एकाएक उठ खड़ी हुईं। एकबारगी दो कमरों के बीच के दरवाजे पर जाकर माँ के खड़ी होते ही खड्ग बकरे के ऊपर गिरा एवं साथ ही साथ बकरा कटा नहीं जान कर सब महिलाएँ ऊँचे स्वर से माँ माँ कह कर चिल्ला उठीं। मकान में एक भीषण शोरगुल मच गया, क्योंकि यह अमङ्गल का चिह्न है, ऐसा सबका विश्वास है। किन्तु माँ जैसी स्थिर थीं वैसे ही स्थिर, धीर, शांत और आनन्दमयी मूर्ति में खड़ी रहीं। भोलानाथजी बहुत घबड़ा उठे, उन्होंने सोचा, "ऐसा आनन्द हो रहा है इसके बीच में यह घटना घटी।" वे उसी समय प्रतिमा के चरणों में अञ्जलि देकर सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी के हाथ से खड्ग लेकर बलि देने के लिए प्रस्तुत हुए। सुरेन्द्र मुखापाध्यायजी माँ की ओर निहारते हुए खड़े थे। भोलानाथजी ने वीरेन्द्र दादा से बकरा लाने को कहा, बकरा लाया गया, बलि हो गई। उसी समय पिताजी के मङ्गल के लिए भी बकरे की बलि दी जाने वाली थी। वह भी खूटा गाड़ दिया गया था। भोलानाथजी ने बलि देने के लिए खड्ग उठाया ही था कि इतने में माँ दौड़ती हुई जा कर बकरे के गले में हाथ डाल कर बैठ गईं। हँसती हुई बोलीं, "मेरा हाथ काटे बिना बकरे को नहीं काट सकोगे।" भोलानाथजी ने खड्ग नीचे कर [illegible]या। बकरा उठा दिया गया। माँ से पूछा गया

कि बकरे का क्या होगा ? माँ ने उसे भी रमना के मैदान में पहले की जगह ही ले जाकर छोड़ आने को कहा एवं इस बार भी बकरे के सारे शरीर पर पैर फेर दिया। एवं उसी समय आदेश दिया, "पिताजी के कल्याण के लिए प्रतिवर्ष जो एक विशेष बलि होती है वह अब न होगी।" आगे और बोलीं, "अपनी पैतृक बलि के सम्बन्ध में तुम लोग अपने गुरुदेव से पूछो, वे यदि कहें तो उसे भी बन्द कर सकते हो।" तभी से पिताजी के कल्याण के लिए जो बलि होती थी वह बन्द हो गई। किन्तु गुरुदेव के इच्छानुसार पैतृक बलि चली जा रही है। उस दिन जब कि पूजा देखने के लिए आये हुए पुरुष क्या स्त्री क्या, सभी इस प्रकार बलि के व्यापार से घबड़ा उठे थे और सभी माँ माँ पुकार रहे थे उस समय माँ में क्षण भर के लिए भी चञ्चलता नहीं दिखाई दी, मुख में तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ, मानो कुछ भी नहीं हुआ, ऐसा माँ का भाव रहा, यह देख कर जिनकी माँ के ऊपर उतनी भक्ति-श्रद्धा नहीं थी, वे भी स्तब्ध रह गये थे। उन्होंने भी स्वीकार किया था कि ऐसी स्थिरता हमने और कहीं भी नहीं देखी, वास्तव में ही यदि और कुछ न भी मानें तो भी केवल इन सभी अवस्थाओं में शान्त, स्थिर, आनन्दपूर्ण भाव के कारण ही वे जगत् के लिए पूजनीय हैं। मानव जाति इस भाव के प्रति मस्तक बिना नवाये नहीं रह सकती। इस प्रकार माँ ने दो बार दो बलियाँ बन्द कराईं। माँ ने कहा, "उत्सर्ग होने पर ही बलि हो जाती है।"

सिद्धेश्वरी के बड़े कमरे का निर्माण

सिद्धेश्वरी का मकान पुराना हो गया था। बहुत से लोग यह सोच रहे थे कि माँ के लिए एक आश्रम बनाना आवश्यक है। क्योंकि उक्त बाग में सदा सबके इकट्ठे होने में बाधा उपस्थित होती थी। प्यारीबानू आदि की तरफ से ही थोड़ी-बहुत गड़बड़ी सुनाई देने लगी थी। इस कारण सिद्धेश्वरी में एक अच्छा कमरा बनाने का प्रस्ताव हुआ। इससे पहले माँ की इच्छा के अनुसार जो कमरा बना था उसकी छाजन खर की थी और दीवार थी मिट्टी की। इस बार सबकी सम्मति से बड़ा कमरा बनाना ही स्थिर हुआ। पिताजी ने अगुवा बन कर उसका भार अपने ऊपर लिया और जितनी जमीन थी सबको लेकर एक बड़ा कमरा बनाया। पीछे उस कमरे का लगभग आधा व्यय अन्यान्य सबने मिल कर दिया। बाकी आधा पिताजी ने दिया। वही माँ का प्रथम आश्रम है। वह कमरा इस समय भी विद्यमान है। इस बार कमरा बनाते समय माँ ने उस निर्दिष्ट आसन के सम्बन्ध में कहा, "यह स्थान इतने दिनों तक एक गत के तुल्य था, किन्तु मैं देख रही हूँ कि इस स्थान की रक्षा कोई कर न सकेगा।" यह कह कर अपने शरीर की नाप से उस जगह जिस प्रकार की वेदी माँ को बनानी थी, वह बतला दी। उसी प्रकार की वेदी बना दी गई।

कुछ दिनों के बाद माँ फिर बाहर चली गईं। इस बार माँ तुम [illegible] को साथ नहीं ले जाऊँगी कह रही थीं। साथ

माँ का ढाका-त्याग—गिरिडीह, चुनार और विन्ध्याचल गमन

में भोलानाथजी, मरणी और नन्दू को लेकर बाहर जाने वाली थीं । हम लोग माँ के साथ ही साथ रहते थे इस कारण बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु माँ हमें समझा-बुझा कर रवाना हो गईं । कलकत्ता गईं, वहाँ काशी से सपरिवार श्रीयुत् कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ का संग पकड़ा । सब लोग गिरिडीह गये, वहाँ से परेशनाथ के दर्शन कर कुछ दिन वहाँ रह कर कलकत्ता आये । संभवतः कलकत्ते से ही श्रीयुत् कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी सपरिवार काशी चले गये । माँ सब संगी-साथियों को लेकर चुनार होती हुई मिर्जापुर गईं और वहाँ से विन्ध्याचल गईं । उस समय भी विन्ध्याचल में आश्रम बना न था । माँ मारवाड़ियों के बँगले में रहीं । रोज साँझ को पुजिमर के डॉक्टर श्रीयुत् उपेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्यायजी अष्टभुजा पहाड़ पर माँ के समीप आते थे । फिर प्रातःकाल चले जाते थे । माँ, भोलानाथजी और नन्दू सब मिलजुल कर रसोइ-वसोई करते, इसी प्रकार काम चलता । कुछ दिनों के बाद विन्ध्यवासिनी देवीजी के दर्शनों के लिए निर्मल बाबू सपरिवार विन्ध्याचल गये । वहाँ माँ का समाचार पाकर सपरिवार माँ के समीप अष्टभुजा पहाड़ पर उपस्थित हुए । कई दिनों के बाद नन्दू कलकत्ते चला गया । माँ कुछ दिन विन्ध्याचल रह कर सब लोगों को साथ लेकर कलकत्ता चली गईं । वहाँ पहुँच कर सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी के मकान में रहीं, खूब आनन्द होता था । माँ को साथ लेकर सुरेन्द्र बाबू, चण्डी बाबू आदि तारकेश्वर गये । बाद में एक बार माँ नवद्वीप भी

गईं । दो-एक दिन के लिए माँ और भोलानाथजी जयपुर और भरतपुर उसी समय हो आये ।

शाहबाग से यात्रार्थ बाहर निकलते समय प्रफुल्लबाबू की स्त्री ने परिहास में माँ से कहा था, "जल्दी से जल्दी आवें, यदि विलम्ब किया तो शाहबाग में घुसने न दूँगी—दरवाजा बन्द कर दूँगी ।" माँ ने भी हँसते हुए कहा, "यही न, अच्छी बात है ।" भोलानाथजी ने प्रफुल्ल बाबू की स्त्री को यह कहने से मना किया ।

बोलने में सावधानता की आवश्यकता, सं० १९८४

उन्होंने अवश्य अच्छे भाव से ही वह बात कही थी । किन्तु मुँह से जो निकल गया, वही हुआ । मालिकों ने शाहबाग कोर्ट ऑफ वार्ड के हाथ में दे दिया । भोलानाथजी, योगेश बाबू, भूदेव बाबू—सभी की नौकरी जाती रही । माँ का फिर शाहबाग में जाना नहीं हुआ । इसीलिए माँ बहुधा कहतीं, "बोलते समय सावधान होकर बोलना उचित है, कभी भली-बुरी सभी बातें सत्य हो जाती हैं ।" मुन्सिफ दीनेश बाबू टाङ्गाइल में थे, माँ इस बार वहाँ होती हुई ही गई थीं । इधर नवाब के घराने के मुसलमानों में विवाद चला । काली-मूर्ति बगीचे में ही थी, बगीचे में उस समय मटरी बुआ, नानाजी, नानीजी, माखन, अमूल्य आदि रहते थे । कुलदा दादा काली-पूजा कर जाते थे । कमलाकान्त उस समय बगीचे में ही रहता था, क्योंकि वह प्रतिदिन काली के गले में अढ़हुल की माला डालता था । एक दिन माला चढ़ाना भूल गया, माँ उसे जान गईं । चिट्ठी लिखकर उन्होंने खबर मँगाई तो विदित हुआ कि सचमुच ही उस

दिन माला चढ़ाने में भूल हुई थी ।

टिकाटूली में एक मकान किराये में लेकर कालीमूर्ति को वहाँ ले गये । जो लोग उस समय शाहबाग थे वे भी वहीं गये । वीरेन्द्र महाराज भी कुछ दिन शाहबाग में रहे थे, पीछे अन्यत्र चले गये । इतनी पुरानी मिट्टी की कालीमूर्ति थी, इसलिए सभी को भय हुआ कि उठाते ही कोई अवयव खिसक न पड़े । किन्तु दूसरा कोई चारा न था, मूर्ति अवश्य स्थानान्तरित करनी थी । योगेश बाबू, सुरेन्द्र बाबू आदि मूर्ति को उठाकर मोटर द्वारा टिकाटूली ले गये, किन्तु मूर्ति को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचा ।

कालीमूर्ति का स्थान-परिवर्तन, सं० १९८४ वि०

सिद्धेश्वरी का कमरा तैयार हो गया था । इस बार जन्मोत्सव वहीं होगा, ऐसा निश्चय हुआ एवं जन्मोत्सव का समय भी समीप आ पहुँचा । माँ कलकत्ते से टिकाटूली के भाड़े के मकान में सं०१९८५ के वैशाख महीने में आईं । ज्योतिष दादा भी संग ही आये थे । निरञ्जन बाबू की स्त्री बहुत अस्वस्थ थीं, अतिसार का कष्ट भोग रही थीं । माँ आते ही पहले उसी मकान में उतरीं, फिर भोजनोत्तर टिकाटूली आईं । शाहबाग कोर्ट ऑफ वार्ड में चला गया था, फलतः भोलानाथजी की नौकरी छूट गई थी । रायबहादुर योगेश बाबू की भी नौकरी छूट गई थी । उस समय उक्त नौकरी के लिए रायबहादुरजी

माँ का टिकाटूलीवाले भाड़े के मकान में गमन— वैशाख, १९८५

के सारे परिवार ने माँ के निकट बहुत अनुरोध किया था, किन्तु माँ ने कहा, "बिलकुल मत घबराओ, सभी मङ्गल के लिए है।" सचमुच अन्त में उन सभी को प्रतीत हुआ था कि माँ की कृपा से उक्त नौकरी का छूटना कितना मंगलकारी हुआ। माँ को प्यारीबानू और उनके जामाता इसके पश्चात् भी ले जाना चाहते थे, किन्तु योगेश बाबू को फिर वहाँ जाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसलिए माँ को जाने नहीं दिया गया। इस बार ढाका आने पर माँ ने देखा कि रायबहादुर के पुत्र प्रफुल्ल बाबू की स्त्री की अवस्था बहुत खराब है, उन्होंने अपने सिरहाने माँ का फोटो रखा था। टिकाटूलीवाले मकान में आने के थोड़ी देर बाद ही माँ को प्रफुल्ल बाबू की स्त्री को देखने ले जाना हुआ। माँ बहुत देर तक वहाँ रहीं। आते समय अपने शरीर की चादर उन्हें दे आईं। कुछ दिनों के बाद ही वे धीरे-धीरे स्वस्थ हो उठीं।

सं० १९८५ के वैशाख में सिद्धेश्वरी में माँ का जन्मोत्सव आरंभ हुआ[१]। काशी से कुञ्जमोहन मुखोपाध्याय

---

१. संवत् १९८३ के वैशाख में माँ एक दिन हमारे टिकाटूली के मकान में भोग के लिए गई थीं। बातचीत के सिलसिले में हमने माँ के मुँह से सुना, "वह दिन (१९वीं वैशाख) माँ के शरीर के आविर्भाव की तारीख है।" हम लोगों ने कहा, "आज यहाँ भोग होगा यह अच्छा ही हुआ।" उसके बादवाले वर्ष में (सं० १९८४ में) उक्त तारीख को ज्योतिष दादा आदि सबने प्रबन्ध कर शाहबाग में माँ का जन्मोत्सव किया था। यही जन्मोत्सव का पूर्व इतिहास है।

और निर्मल बाबू सपरिवार आये थे। विनय बाबू (मुन्सिफ) सपरिवार आये थे। माँ भोलानाथजी तथा और सबको साथ लेकर सिद्धेश्वरी गईं। इस बार से माँ की जन्मतिथि से तारीख तक जितने दिनों का अन्तर रहता है उतने दिनों तक अखण्ड नामकीर्तन चलेगा, यह निश्चय हुआ। एवं यह भी निश्चय हुआ कि जन्मतिथि को जन्म के समय भोलानाथजी ही माँ की पूजा करेंगे। १९ वैशाख से उत्सव आरंभ हुआ। कमरा बहुत बड़ा बना था, इस कारण कमरे के भीतर ही पालाकीर्तन भी हो रहा था। चिन्ताहरण वन्द्योपाध्याय तथा अन्यान्य बहुत से लोग निभाई-संन्यास, मानभञ्जन, माथुर आदि कीर्तन गाकर समागत सब लोगों को कभी हँसा रहे थे और कभी रुला रहे थे। निमाई-संन्यास सुनकर सब रोते-रोते बिहाल हुए। माँ स्थिरता के साथ एक ओर बैठकर गाना सुन रही थीं। उधर भोग के लिए रसोई-वसोई भी हो रही थी, बहुत से लोग प्रसाद पा रहे थे। जन्मतिथि के दिन रात को प्रायः दस बजे से ही माँ नानीजी की गोद में लेट गईं। रात्रि खुलते माँ के आविर्भाव के समय माँ अपने गले की माला से बहुत देर पहले एक फूल हाथ में लेकर बैठी थीं। इसी तरह लेट गयी किन्तु फूल हाथ में ही रहा। उस समय माँ नेत्र बन्द कर नानीजी की गोद में ही लेटी रहीं; इस अवस्था में रहते ही सभी ने देखा कि माँ का हाँथ धीरे-धीरे नानीजी के पैरों के निकट गया है, शरीर उसी तरह लेटा है, हाथ खुल गया और फूल [illegible]नीजी के

सिद्धेश्वरी में माँ का प्रथम जन्मोत्सव—वैशाख, संवत् १९८५ वि०

चरणों में गिर गया। फिर हाथ उठा न सकीं। इस तरह कुछ समय बिताने के बाद माँ को उठाकर पूजा के स्थान में ले जाया गया। माँ वहाँ जाकर भी लेटी रहीं।

भोलानाथजी षोडशोपचार से पूजा कर रहे थे, सभी लोग शुद्ध होकर अपूर्व दृश्य देख रहे थे। पूजा करते-करते भोर हो गयी। पूजा समाप्त हुई, कीर्तन भी उस दिन समाप्त होने वाला था। किन्तु माँ पड़ी थीं, इसलिए कीर्तन बन्द नहीं हो रहा था। बहुत देर के बाद बहुत प्रयत्नों से माँ को उठाया गया। माँ उठीं, कुछ देर के बाद माँ बहुत-कुछ स्वस्थ हुईं। हँसते-हँसते देख रही थीं। नानाजी भी कीर्तन कर रहे थे; माँ ने उन्हें बुलाया; उनके निकट आने पर माँ ने अपने गले की माला नानाजी को पहना दी और भूमि पर लेट कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। किन्तु चरणों पर जो लेटीं, फिर उठ न सकीं, बहुत प्रयत्नों से उठाया गया। माँ जब जो कुछ करतीं उसी में मानो सारा शरीर, मन और प्राण उडेल देतीं। नानाजी ने उस मालाको गले में पहन कर नाच-नाच कर गाना शुरू किया—"हरिनामेर माला निताई दिल आमार गले, हरिनाम-मन्त्र दिल स्नान कराये गङ्गाजले।" इत्यादि। उस उत्सव में एक दिन बाउल बाबू ने सम्पूर्ण अङ्गों के फूल के आभूषण मँगा कर माँ को सजाया। सिर पर फूलों का मुकुट लगाया, हाथ-पैरों में फूल के गहने, गले में फूल की माला। माँ क्या एक अद्भुत साजबाज से सजीं। कुछ देर के बाद माँ ने सब उतार दिये। हमने देखा है कि यदि कोई अधिक समय तक पैर छुये रहता या विशेष रूप से पूजा करता, अथवा इस

प्रकार सजाता तो माँ कुछ देर के बाद ही समाधिस्थ हो पड़तीं। इस प्रकार उत्सव की पूर्ति हुई। सब लोग टिकाटूली के भाड़े के मकान में चले गये। कालीमन्दिर की भैरवी ही उस कमरे में दियाबत्ती जलाती। एक घटना लिखना भूल गई हूँ—शाहबाग में रहते समय एक दिन कीर्तन हो रहा था, माँ की खूब भावावस्था हुई। किन्तु उस दिन माँ घूम-घूम कर मानो कीर्तन की प्रदक्षिणा कर रही हों, मुख और नेत्रों का भाव अस्वाभाविक रूप से दमक रहा था। मानो सम्पूर्ण चेहरे पर बिजली चमक रही हो। माँ एकाएक कीर्तन के कमरे से बाहर चली गईं, बड़ी तेजी से अँधेरे में ही बगीचा पार कर फकीर साहब की जो बड़ी कबर थी वहाँ जा खड़ी हुईं। एक भद्र मुसलमान भी उस दिन माँ के दर्शनों के लिए आये थे, वे उस समय भी वहीं थे। सब लोग उजाला लेकर दौड़ते हुए माँ के पीछे-पीछे गये। उक्त मुसलमान के समीप माँ ने उस अवस्था में ही उन्हें साथ ले जाने के लिए उनकी पीठ पर साधारण रूप से ज्यों ही स्पर्श किया, उन्होंने भी साथ-साथ जाकर कबर के दरवाजे खोल दिये। माँ ने भीतर जाकर चारों ओर पर्यटन किया एवं खूब ऊँचे स्वर से कुरान की सब आयतों की आवृत्ति करने लगीं। माँ का इतना ऊँचा स्वर कभी हम लोगों ने सुना न था, पर पहले दिये पौष संक्रान्ति के कीर्तन में "हरे मुरारे" भी खूब ही उच्च स्वर में माँ ने गाया था। कुरान की आयतों का खूब स्पष्ट रूप से उच्चारण कर रहीं थीं। मुसलमान सिर नवाकर खड़े थे। सब लोग स्तब्ध थे कि कहाँ माँ ने ये कुरान की आयतें सीखें। उनके

अनन्तर माँ जिस प्रकार मुसलमान नमाज पढ़ते हैं उसी तरह नमाज पढ़ने लगीं। किन्तु मुसलमान तो साधारणतः नियमरक्षा करने के अनुरूप ही एक बार उठते हैं, बैठते हैं, नमस्कार करते हैं, हाथ उठाते हैं। माँ भी वही सब कर रही थीं, किन्तु सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गों को ये सब क्रियाएँ करते समय उडेल दे रही थीं। मुसलमान भद्र पुरुष ने भी उस समय नमाज पढ़ी। किन्तु माँ ने मानो दिखला दिया कि ये सब क्रियाएँ किस प्रकार सारे शरीर, प्राण, और मन को उडेल कर करनी पड़ती हैं। पीछे माँ ने यह भी कुछ-कुछ समझा दिया था कि किस अंग का किस प्रकार परिचालन करना चाहिये। माँ ने कहा, "इसके अन्दर बहुत अच्छी बातें हैं। किन्तु साधारणतः उसे कोई जानता नहीं। सभी केवल नियमरक्षा के अनुसार ही किये जाते हैं।" इस कुरान की भाषा के सम्बन्ध में माँ ने कहा, "मैं तो स्वयं इच्छा करके कुछ कर नहीं सकती हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब भीतर से अपने आप बाहर निकल रहे हैं। भाषा, स्वर सब अपने आप ही हो जा रहे हैं। फिर इसका क्या अर्थ है एवं ये सब क्या हैं यह सब अन्दर से ही प्रकट हो जाता है। सदा तुम लोगों के समीप प्रकट नहीं होता। लेकिन जभी जो होता है, सभी का अर्थ भीतर उसी वक्त प्रकट हो जाता है।" तदुपरान्त माँ कबर से बाहर चली आईं। वहाँ से कीर्तन के कमरे में आईं, नैवेद्य बाँटा गया, मुसलमान भद्र पुरुष ने भी वह लूट का प्रसाद लिया। उन्होंने माँ को अपने हाथ से कुछ खिला देना चाहा, माँ के राजी होकर समीप में खड़ी होते ही उन्होंने माँ

के मुँह में बतासा डाल दिया । माँ ने भी उसे ग्रहण कर लिया । प्यारीबानू आदि ने यह बात सुनी, पीछे जब वे ढाका आये तब माँ को पूर्वोक्त कबर के पास ले गये एवं सभी उस प्रकार कुरान का पाठ करने का अनुरोध करने लगे । किन्तु सब के कहने पर भी कुरानपाठ हुआ नहीं । उस दिन किसी प्रकार भी माँ के मुँह से कोई आयत नहीं निकली । माँ बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहीं । माँ के सहसा उठ कर खड़ी होने पर थोड़ी देर के लिए न जाने क्या सब वचन माँ के मुँह से निकले । नवाबघराने के लोगों ने समझा कि माँ कुरान का कोई एक अंश कह रही हैं । किन्तु उस दिन पहले के समान वाणी नहीं निकली, बहुत ही स्वल्प वाणी बाहर निकली ।

माँ का टाङ्गाइल गमन

सिद्धेश्वरी में जन्मोत्सव होने के अनन्तर टाङ्गाइल दीनेश बाबू के समीप जाने की बात पहले से ही प्रायः निश्चित हो चुकी थी । माँ वहाँ गईं । संग में भोलानाथजी और ज्योतिष दादा गये । दो-एक दिन के बाद ही माँ वहाँ से ढाका लौट आईं । उस समय किसी कारणवश हम लोगों का वहाँ जाना नहीं हुआ । माँ के चली आने के साथ ही साथ दीनेश बाबू ने एक पत्र भेजा था, जिसमें हम लोगों के न जा सकने के कारण उन्होंने दुःख प्रकट किया था । उसमें उन्होंने लिखा था, यहाँ एक दिन कीर्तन हुआ था, माँ की खूब भावावस्था हुई थी । बहुत से लोग माँ की शरीर-रक्षा के हेतु प्रत्यत्न भी कर रहे थे, किन्तु माँ का शरीर पुनः-पुनः जमीन पर गिर पड़ा । ''माँ के तनिक प्रकृतिस्थ हो कर बैठने

पर हम सब ने माँ से पूछा, "माँ जिस समय तुम्हारी भावावस्था होती है, उस समय केवल खुकुनी ही तुम्हारी शरीररक्षा कर सकती है । आज खुकुनी नहीं है, किन्तु इतने लोगों के रहते भी तुम्हारे शरीर में पर्याप्त चोट आई है, इसका क्या कारण है ?" माँ ने धीरे से उत्तर दिया, "वह सबलोग नहीं जानेंगे ?" उस चिट्ठी को पाकर उसमें माँ की इस साधारण सी बात को पढ़ कर मानो मैं कृतार्थ हो गई ।

माँ के टाङ्गाइल जाने के अनन्तर ही जेठ के महीने में (सं० १९८५ वि०) ढाकेश्वरी के मन्दिर के निकट एक भाड़े का मकान लेकर उसमें कालीमूर्ति प्रतिष्ठापित की गई । यह तीसरी बार कालीमूर्ति का स्थान परिवर्तन किया गया । निश्चय हुआ कि माँ आकर वहीं रहेंगी । माँ आकर वहीं उतरीं । ऊपर एक कमरा था । उस मकान में कई दिन रहने के बाद ढाका के जमींदार सूर्यकान्त बाबू सपरिवार माँ के दर्शनों के लिए आये । वे उस समय पुत्रों के वियोग से अत्यन्त दुःखी थे । माँ के दर्शन और पूजा कर उन्हें बड़ी शान्ति मिली । माँ ने कहा, "मैं तुम्हारी बच्ची हूँ ।" उन्हें भी माँ को छाती से लगाकर बड़ा आनन्द मिला । कुछ दिन रह कर वे कलकत्ता लौट गये । इधर निरञ्जन बाबू की स्त्री की अवस्था भी अच्छी न थी । उन्हें इच्छा हुई कि हर रोज माँ के दर्शन करूँ । निरञ्जन बाबू रोजे ही माँ को एक बार अपने मकान में ले जाते । एक दिन माँ

कालीमूर्ति का उत्तमा-कुटीर में परिवर्तन और माँ का उत्तमा कुटीर में अवस्थान—जेष्ठ, १९८५

के साथ वीरेन्द्र दादा भी गये। निरञ्जन बाबू की स्त्री को देख कर वीरेन्द्र दादा का मन बहुत दुःखी हुआ। सन्ध्या के समय माँ आँखें बन्द कर बैठी थीं, ऊपर के कमरे में ही माँ बैठी थीं। कमरे में बहुत से लोग बैठे थे, सभी चुपचाप थे। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि माँ बहुधा सन्ध्या समय आकाश की ओर देखकर एकदम पत्थर की तरह स्थिर होकर बैठी रहतीं। उपस्थित सभी व्यक्ति स्थिरता के साथ बैठे रहते। उस दिन भी सब लोग चुप बैठे थे। वीरेन्द्र दादा आँखें बन्द कर मन ही मन माँ से निरञ्जन बाबू की स्त्री की रक्षा करने के लिए हार्दिक प्रार्थना कर रहे थे। क्योंकि अतिसार की बीमारी से वे अत्यन्त कष्ट भोग रही थीं। कुछ ही देर बाद माँ आँखें खोल कर इधर-उधर निहारती हुई बोल उठीं, "मुझे कौन पुकारता है ?" वीरेन्द्र दादा जान गये कि माँ ने हार्दिक प्रार्थना सुन ली है। उन्होंने तुरन्त हाथ जोड़ कर कहा, "माँ, मैं पुकार रहा था। निरञ्जन बाबू की स्त्री की रक्षा करो।" माँ उनकी ओर तनिक निहारते ही आँखें बन्द कर फिर पहले की तरह बैठ गईं। इसके कुछ दिन बाद ही निरञ्जन बाबू की स्त्री की मृत्यु हो गई। स्त्री की मृत्यु होने के कुछ महीने बाद ही निरञ्जन बाबू का भी देहान्त हो गया। माँ उस समय ढाका न थीं। उसी मकान में कीर्तन के समय एक दिन रामठाकुर को साथ लेकर मथुरामोहन चक्रवर्ती आदि कई व्यक्ति माँ के दर्शन करने आये। रामठाकुर के साथ माँ की कलकत्ते में पहली बार भेंट हुई थी। दर्शन करते ही रामठाकुरजी ने माँ को साष्टाङ्ग प्रणाम किया एवं बातचीत के सिलसिले में स[illegible] के सामने

उन्होंने माँ को "भगवती देवी" के रूप में प्रकाशित किया था । उत्तमा कुटीर में भी एक दिन काली-पूजा के दिन पूर्वोक्त कालीमूर्ति के ऊपर काली की पूजा हुई, किन्तु उस दिन भोलानाथजी ने पूजा की, माँ समीप में भूमि पर लेटी रहीं ।

माँ एक बार उसी समय चिन्ताहरण समाजदारजी के बुलावे पर बारिशाल शहर में गईं । कुछ दिन वहाँ रहीं, तदुपरान्त मुंशीगंज वापिस आकर वहाँ से विक्रमपुर के गाँव-गाँव में नाव द्वारा माँ ने पर्यटन किया । पहले माँ तन्तर गईं, वहाँ माँ की बुआ का मकान है । दो-तीन दिन वहाँ रहना हुआ—कीर्तनादि भी हुआ । तन्तर में एक दिन मैं माँ के पास बैठी थी, किसी बात पर एकाएक माँ ने अपनी साड़ी का एक किनारा फाड़ कर मेरी बाईं भुजा में बाँध दिया । कपड़े का टुकड़ा नहीं किया, बीच में थोड़ा सा फाड़ कर बाँध दिया । जो कपड़ा मैंने पहना था इसके साथ ही साथ बाँध दिया था इस कारण बड़ी असुविधा प्रतीत हो रही थी । अन्य लोग न देख सकें, इसलिए मैं उसे शरीर की चादर से ढक रखती थी । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि शायद इसे खोलने को माँ मना करें । माँ ने मुँह से कुछ कहा नहीं । दूसरे दिन हलदिया गाँव मे श्यामलदाओं के मकान में गये । प्रातःकाल कपड़े बदलने थे, बदन पर जम्फर था उक्त बंधन को खोले बिना जम्फर भी नहीं खोला जा सकता था । मैंने माँ से पूछा, "क्या करूँ ?" माँ ने कहा, "खोलना मत, सात दिनों के बाद खोलना ।" मुझे

बारिशाल और विक्रमपुर गमन

ही भोग की रसोई बनानी थी—माँ की रसोई बनानी थी—माँ को खिलाना था। मैंने माँ से कहा, "मैं पखाना जाऊँगी, तदनन्तर अपवित्र कपड़े बदले बिना तुम्हारे लिए भोग बनाऊँगी, तुम्हें खिलाऊँगी लोग क्या कहेंगे ?" माँ ने कहा, "किसी से भी कुछ न कह, तू इन्हीं कपड़ों से सब कुछ किये जा।" जीवन में इस तरह पहली बार एक कपड़े से रह कर पूजादि का काम करना पड़ा, किन्तु माँ के आदेश में परिवर्तन नहीं हुआ। केवल लोगों की दृष्टि बचाने के लिए एक चादर बदन पर ओढ़े रहती। फिर भी मालूम पड़ता है कि सभी लोग ताड़ गये। मैंने ही सब काम किये थे। उक्त मकान में खूब कीर्तन हुआ। उसके अनन्तर माँ भोलानाथजी की भतीजी के ससुराल बेंजगाओ गाँव में एवं भोलानाथजी के निजी मकान आठपाड़ा गईं। उस समय आठपाड़ा में भोलानाथजी की विधवा भाभी (रेवती बाबू की स्त्री) थीं। उस बार उन्होंने माँ से मकान के भीतर जाने के लिए खूब अनुरोध किया। किन्तु माँ निकट में ही एक दूसरे मकान में बैठ गईं। केवल विनीत भाव से कहने लगीं, "आपकी आज्ञा तो अनुल्लंघनीय है वह कभी अन्यथा नहीं हुई, किन्तु आज मैं नहीं कर सक रही हूँ, क्या करूँ आप ही बतावें।" उस बार पिताजी, मैं, राजेन्द्र कुशारी की स्त्री, अमूल्य आदि माँ के साथ थे। उस बार हम लोग मथुर बाबू के मकान छयगाँओ गाँव में भी गये और वहाँ दो-एक दिन रहे। उससे पहले भी एक बार माँ हम लोगों को लेकर उनके मकान में गई थीं। तदुपरान्त हम लोग पुनः दोकाछि स्व० सीतानाथ कुशारीजी के मकान में गये।

इस तरह घूमते-घूमते ढाका गये । जिस दिन ढाका पहुँचे उसी दिन कलकत्ते के कुण्डुओं के मकान से टेलिग्राम आया कि योगेन्द्र बाबू सख्त बीमार हैं, माँ को एक बार कलकत्ता आना होगा । फिर टेलिग्राम आया कि कलकत्ते में नन्दू बहुत बीमार है । पहले दिन मैं और पिताजी माँ से आज्ञा लेकर कलकत्ता चले गये । दूसरे दिन माँ कलकत्ते को रवाना हुईं और कुण्डुओं के मकान में ठहरीं । हम जिस दिन कलकत्ता पहुँचे उस दिन कपड़े के बंधन के खुलने का दिन था, मैंने बंधन खोल डाला । कुछ दिनों के बाद नन्दू और योगेन्द्र बाबू के कुछ अच्छे होने पर हम लोग माँ के साथ ढाका लौट आये । आगे चलकर माँ ने कहा था, "नन्दू को बीमारी होगी यह मैं जानती थी, नन्दू की ही जीवनरक्षा के लिए इस तरह कपड़ा बाँधा गया था ।" माँ कलकत्ते योगेन्द्र कुण्डुओं के मकान में पहले भी दो-तीन बार गई थीं । एक बार उन लोगों के खिलौनों से सजेसजाये एक कमरे में माँ को ले जाकर लड़कियों ने कहा, "माँ, तुम जिसे चाहो ले लो ।" अलमारी में विविध प्रकार के खिलौने सजाये थे, माँ उनमें से एक 'चूसनी' ले आईं, इस पर सब हँसने लगीं । उतने बड़े मकान में पहिली ही बार जाकर माँ इस तरह इधर-उधर चलतीं-फिरतीं कि मालूम होता मानो माँ को सभी मार्ग ज्ञात हैं । यह 'चूसनी' माँ ने नन्दू को दी । विक्रमपुर के गाँव-गाँव में प्रत्येक मकान में जाकर माँ ने खूब आनन्द किया । किसी के हँड़िया भरे लड्डू खोज-खोज कर सब लोगों में बाँट दिये तो किसी के मकान में आचार की हाँड़ी इसी तरह खाली कर दी । माँ के इस

व्यवहार से सभी को बड़ा आनन्द हुआ। फिर वे लक्ष्मी के आसन की वस्तुएँ स्वयं ढूँढ कर खा आयीं।

एक बार काशी के कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी ने मनु के 'जीवन-दान' के निमित्त माँ की पूजा का आयोजन किया और माँ को ले आने के लिए अनुरोध करते हुए चिट्ठी भेजी। निश्चय हुआ कि जाते समय टाङ्गाइल दीनेश बाबू के मकान में भी होते जायँगे। उस बार माँ की एक बुआ भी तीर्थयात्रा करने के निमित्त हम लोगों के साथ चलीं। माँ, भोलानाथजी, पिताजी, नन्दू, माँ की बुआ और मैं—सब लोग गये टाङ्गाइल गये, सपरिवार दीनेश बाबू ने खूब आनन्द के साथ कीर्तनादि कराया। वहाँ भी माँ का खूब भाव हुआ। एक दिन ऐसी अवस्था हुई कि भोलानाथजी और हम सब लोग डर गये। भोलानाथजी ने दूसरा कोई उपाय न देख जल मँगाया और माँ के मुख-नेत्र पर जल छिड़कते ही माँ जोर से बोल उठीं, "कौन जल छिड़कता है ? मुझे क्या फिट आया है ?" इस प्रकार यह बात आँखें मूँद कर ही कही कि भोलानाथजी हकबका कर बोले, "किंकर्तव्यविमूढ़ हो कर जल छिड़का है, तुम्हें उठाने के लिए।" तुरन्त ही माँ तनिक मुसका कर आँखें बन्द कर के ही बोलीं, "सरबत छिड़कर दिया है।" सचमुच माँ की अवस्था के कारण सब लोग इतने व्यस्त थे कि जल माँगते ही एक लड़की सरबत का बर्तन ही बिना जाने ले आई। अनेक क्षणों के बाद माँ उठीं। दूसरे दिन दीनेश बाबू की स्त्री ने माँ की पूजा की। सहसा माँ इस तरह से उठीं कि

टाङ्गाइल दीनेश बाबू के मकान में गमन

दूसरे कमरे से भोलानाथ आदि सब लोग दौड़े आकर उन्हें सान्त्वना देने लगे । किसी घटनावश भोलानाथजी के तनिक असन्तुष्ट होने से दीनेश बाबू भी सपरिवार दुःखित थे, इसी प्रकार रवाना हो कर आना हुआ । माँ को देखा है कि किसी प्रकार की गड़बड़ी होते ही कैसी हो जातीं । करुणामयी केवल यही चाहतीं कि सब लोग आनन्द से मिलजुल कर रहें, किन्तु सांसारिक व्यवहार में सर्वदा वैसा होता नहीं । ये माँ को कितने आनन्द से ले गये, पीछे आते समय सपरिवार दीनेश बाबू का मन खराब होते ही मालूम पड़ता है माँ के मन में भी आघात पहुँचा । अथवा अन्य कोई कारण था यह माँ ही जानें हम केवल अनुमान भर करते हैं । किन्तु व्यापार अत्यन्त विपरीत है । बहुत दूर तक नाव से आकर स्टीमर पकड़ना पड़ता है । नाव में आते ही माँ सो गईं । कुछ देर बाद शरीर कैसा हो पड़ा । माँ जल में कूद पड़ने के लिए रोते-रोते व्याकुल हो गईं । शरीर में उस समय ऐसी शक्ति आ गई कि हम तीन-चार व्यक्ति पकड़ने में असमर्थ हो रहे थे । भीषण अवस्था थी, आँखें लाल, मुख का भीषण भाव था । मालूम पड़ता था कि कहीं जीवन न त्याग दें । मैं तो वह अवस्था देख कर रोने लगी और माँ की प्रार्थना करने लगी । भोलानाथजी और पिताजी सभी बहुत घबड़ा उठे; बहुत देर बाद दाहिना हाथ लम्बा कर उसे जल की ओर बढ़ा कर सो पड़ीं । भोलानाथजी ने भी बहुत सान्त्वना दी । जल में जावेंगी ही यह सोच कर भोलानाथजी ने कहा, "क्या करने से शान्त होओगी, तुम शान्त होओ ।" इत्यादि, इत्यादि । बहुत देर

बाद दाहिने हाथ को उस तरह से उठा कर लेट गईं और धीरे से बोलीं, "लौट चलो।" उस समय करीब-करीब स्टीमर के निकट आ गये थे, भोलानाथजी ने यह कहा। किन्तु माँ आँखें बन्द किये ही रहीं। दो ही बार बोलीं, "लौट चलो।', तब नाव को लौटा कर दीनेश बाबू के घर जाना हुआ। खबर पाकर वे स्तब्ध रह गये। माँ को नाव से उतार कर घर ले गये। माँ बहुत देर तक लेटी रहीं, बाद को उठ बैठीं। भोलानाथजी से माँ ने न जाने क्या कह दिया जिससे भोलानाथजी शान्त हुए। माँ के लौट आने पर सपरिवार दीनेश बाबू का भी बहुत कुछ दुःख मिट गया था। भोलानाथजी को शांत देख कर वे लोग भी आनन्दित हुए। इस प्रकार झगड़ा मिटा कर माँ दूसरे दिन रवाना हुईं। नाव में जो माँ दाहिना हाथ लम्बा कर सो पड़ी थीं उसीसे मुझे प्रतीत होता है कि दाहिना हाथ बेकाम हो गया है उससे कुछ भी पकड़ नहीं सकतीं बहुत दिनों तक यंह अवस्था रही।[१] बाद को धीरे-धीरे फिर ठीक हो गया।

---

१. लगभग चार महीनें उक्त अवस्था रही। इस प्रकार से हाथ बेकाम क्यों हुआ था, यह बात किसी समय प्रसङ्गतः माँ ने इस प्रकार समझाई थी, "नन्दू ने पहले हमारे साथ जाना स्वीकार किया था, बाद को वह मुकुर गया था। इसके बाद टाङ्गाइल में जब शरीर विचित्र प्रकार का हो गया तब नन्दू अत्यन्त भयभीत होकर मेरे दाहिने हाथ को अपने हाथ से सहलाते-सहलाते बोला कि मैं आपके साथ जाऊँगा। किन्तु काशी को रवाना होते समय फिर जाने के लिए नट गया। वह तो लड़का है, इसलिए वह कभी कुछ और कभी कुछ कहता है। मेरा कैसा ख्याल हुआ कि इस दाहिने हाथ को सहलाते-सहलाते वह मेरे साथ जाने को राजी हुआ था। पीछे वह फिर अनिच्छा प्रकट करता है—वह तो जानता नहीं है, किन्तु उससे उसका भीषण अमङ्गल होगा। उस समय नन्दू गोद के बच्चे के तुल्य मेरे साथ-साथ रहता, वही फिर ख्याल आया और दाहिना हाथ बेकाम हो गया।

उसके लिए किसी तरह की चिन्ता या दवादारू का व्यवहार नहीं किया गया। एक बार इसी अवस्था में गोयालन्द से गाड़ी में चढ़ाते समय (गाड़ी बहुत ऊँची थी) मैंने माँ का हाथ पकड़ कर अनायास ही माँ को गाड़ी में चढ़ाया। उस समय मुझे स्मरण नहीं रहा, किन्तु कुछ देर बाद गाड़ी में बैठ कर माँ ने मुझसे कहा, "तुमने मुझे कैसे चढ़ाया ?" मैंने कहा, "क्यों बाँयाँ हाथ पकड़ कर मैंने ऊपर खींच लिया।" दाहिने हाथ से तो माँ कुछ भी नहीं पकड़ती हैं। माँ ने कहा, "कैसे ऊपर खींचा ? इतने बड़े शरीर को तुमने इतनी सरलता से ही अलग से उठा लिया, मैं तो कुछ पकड़ नहीं सकती हूँ।" तब जाकर मुझे स्मरण हुआ। इसमें भी मुझे माँ की कृपा या महिमा की उपलब्धि हुई। उठाते समय मुझे बिलकुल भी वजन प्रतीत नहीं हुआ, मानो एक हलकी सी वस्तु अनायास ही जरा पकड़ कर उठा ली हो। पीछे मुझे प्रतीत हुआ कि यह कदापि संभव नहीं है कि मैं अपनी शक्ति से माँ के शरीर को अलग से उतने ऊँचे पर बाँयाँ हाथ पकड़ कर उठा लूँ और माँ को चोट भी न आवे।

इसके अनन्तर ही काशी कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में जाना हुआ। काशी में खूब उत्सव हुआ। माँ समाधिस्थ भाव में पड़ी रहीं, भोलानाथजी ने माँ की पूजा की, उसके पश्चात् कीर्तनादि भी खूब हुए। माँ भावावस्था में दो-एक बच्चों की फूल बखेर कर पूजा करने लगीं। थोड़ा मुसकरा कर बोलीं, "पूजा कर रही

कुञ्ज बाबू के आह्वान पर काशी गमन

हूँ ।'' भावावस्था में अधिकांश समय लेटी रहीं । उसके पश्चात् माँ के उठने पर विविध प्रकार के प्रश्न पूछे गये । माँ उस अवस्था में जो बातें करतीं वह बहुत ही मीठी सुनाई देतीं । नेत्र और मुख पर एक प्रकार की अस्वाभाविक ज्योति उस समय भी खूब रहती थी, और रहती थी नन्हें बच्चे के समान तोतली बोली, मुख पर हँसी तथा एक अत्यन्त मनोहर शोभा । इस प्रकार बोलते-बोलते क्रमशः वचन भी स्पष्ट हो जाते और शरीर के अन्यान्य लक्षणों में भी परिवर्तन हो जाता । कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी ने उस अवसर पर बहुत लोगों को निमन्त्रित किया था एवं एक छोटी सी पुस्तक, जिसमें सर्पदंश का विवरण था, लिखकर सबको बाँटी थी । इस कारण बहुत लोग उपस्थित हुए थे । काशी के गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल माननीय पण्डितप्रवर गोपीनाथ कविराजजी ने इसी बार सर्वप्रथम माँ के दर्शन किये और माँ की बातें सुनकर मुग्ध हुए । वे माँ की बातें सुनकर तथा समागत सब लोगों के प्रश्नों का जो माँ साधारण भाषा में उत्तर दे रही थीं उसे सुनकर केवल यही कहते, "अपूर्व है, ऐसा पहले कभी सुना नहीं ।" गोपी बाबू प्रायः ही एक पंखा हाथ में लेकर माँ के समीप बैठकर हवा करते और माँ के श्रीमुख की बातें सुनते । इसके बाद से ही माँ जब-जब काशी जातीं, वे आकर माँ के दर्शन करते । माँ के मुख से जो स्तोत्रादि निकलते उनका किसी को भी कुछ अर्थ न लगता, उन्हींने दो-चार का अर्थ जान कर कहा था, "यह वास्तविक देवभाषा है, मर्त्यलोक के संस्कारों के साथ इसे समझना असंभव है ।"

वे बहुत-सी भाषाओं और शास्त्रों के परिज्ञाता हैं। अनेक पण्डित और बड़े-बड़े लोग माँ के दर्शनों के लिए आये थे। प्रतिदिन अपराह्न के बाद एक बहुत बड़ी जगह पर माँ को बैठा दिया जाता। सब लोग वहाँ माँ के दर्शन करते और माँ के साथ बातें कर सकते। रात्रि को लगभग दस बजे के समय माँ को उठाकर छत पर ले जाया जाता। वहाँ उस समय एक-एक व्यक्ति एकान्त में माँ के साथ बातें करने जाते। इस तरह लगभग तीन बज जाते। उस समय छत की ही कोठरी में माँ का बिछौना बिछाया गया था, माँ जरा लेट जातीं। फिर रात्रि में चार या साढ़े चार बजते ही अनेक लोग पूजा की सामग्री लेकर माँ के चरणों में उपस्थित होते। माँ सोई रहतीं उसी अवस्था में बिछौने पर ही अनेक लोग फूल, चन्दन, गङ्गाजल माँ के चरणों पर चढ़ाकर पूजा कर जाते। सबेरा होते-होते ही घर दर्शनार्थी लोगों की भीड़ से ठसाठस भर जाता। खड़े होने की भी जगह न रहती। मकान के मालिकों से कोई पूछता तक न था, एकदम सबके सब कमरे के भीतर ही आ घुसते। दूसरी मंजिल और तीसरी मंजिल सब भर जातीं। माँ भी प्रायः सदा भावावस्था में ही बैठी रहतीं अथवा लेटी रहतीं। खाना प्रायः बन्द हो गया। लोगों की इतनी भीड़ होती कि मुँह धुलाने के लिए भी ले जाना मुश्किल हो जाता। कोई माँ को थोड़ी देर के लिए भी छोड़ना नहीं चाहता। सबके इस प्रकार के भाव से माँ भी भावस्थ ही रहतीं। स्वामी शङ्करानन्द और योगेन्द्र राय सभी को इसी बार ही माँ के दर्शन प्राप्त हुए। योगेन्द्र राय ने माँ को बहुत

से कीर्तन सुनाये, माँ ने भी अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। अपराह्ण के बाद सभा-सी लगाकर सब लोग माँ के साथ बैठते और माँ की बातें सुनते। उससे पहले और कभी भी इस प्रकार सभा करके बैठाना नहीं हुआ। माँ ने भी ऐसे बड़े-बड़े प्रश्नों की मीमांसा इतने लोगों में बैठकर पहले कभी नहीं की। और माँ लिखना-पढ़ना अत्यन्त साधारण ही जानती हैं। विवाह के बाद कोई पुस्तक पढ़ने के लिए देने पर माँ उसे पढ़ न सकती थीं। अष्टग्राम में इस अवस्था के आरंभ होने के बाद माँ को यदि कोई सद्ग्रन्थ पढ़ने को दिया जाता तो माँ उसे थोड़ा पढ़ते न पढ़ते न मालूम कैसी भावस्थ हो पड़तीं, इस कारण फिर पढ़ना होता नहीं, किसी के भी मुँह से उन सब पुस्तकों को यदि सुनतीं तो भी भावस्थ हो जाती थीं, फलतः ग्रन्थगत विद्या बिलकुल भी माँ को प्राप्त नहीं हुई थी। मैं कह चुकी हूँ कि माँ बातें भी कम ही करतीं। केवल भाव में ही विभोर रहतीं। यही सर्वप्रथम माँ की इतनी बातें प्रकाश में आई थीं। इसके उपरान्त कलकत्ता तथा अन्यान्य स्थानों में सब लोग माँ को साथ ले बैठ कर इस तरह प्रश्नादि करते और माँ की साधारण भाषा में कितने अमूल्य उपदेश सुनकर आनन्द-लाभ करते। माँ के भी मुँह से दिन पर दिन नई-नई बातें निकलने लगीं। कीर्तन बन्द रख कर बहुत देर तक सब लोग माँ की बातें सुनते। माँ का घूँघट भी उस समय पहले की अपेक्षा छोटा हो गया था, वे सबके साथ खुलेआम विविध विषयों पर आलोचना करतीं। पहले भावस्थ होकर सर्वदा पड़ी रहती थीं, इधर वह भी घटने लगा। माँ मानो

दिन पर दिन सबके साथ मिलने-जुलने लग गईं। वह भी खूब धीरे-धीरे और सुश्रृङ्खलता के साथ होने लगा। इस सबके बीच में इतने हिलमिल जाने का पता किसी को भी न लगा। और तो और, भोलानाथजी भी इसका पता न पा सके कि किस प्रकार माँ का परिवर्तन होता जा रहा है। एक दिन किसी कारण जरा असन्तुष्ट हो कर उन्होंने इन सब बातों के लिए माँ से प्रश्न कर दिया था। माँ ने तनिक मुसकरा कर उत्तर दिया, "देखो, तुम कुछ कह नहीं सकते। मैं पहले तुम्हारे ही घर के कोने में रहती थी। तुम्हारे आदेश के बिना किसी के साथ बातें तक नहीं करती थी। मैं बाहर होना पसन्द नहीं करती थी फिर भी तुमने जोर देकर मुझे सबके सामने बाहर कराया है एवं सबके साथ धर्मविषय में मीमांसा करने के लिए पुनः-पुनः प्रेरित किया है। तुम्हारे आदेश से ही मैं सबके सन्मुख बाहर आई हूँ और वार्तालाप किया है, आज सबकी ही हो पड़ी हूँ। अब कहने से क्या होगा ?" थोड़ा हँस कर आगे बोलीं, "तुम्हारे हाथ के घड़े में ही जल था, तुम्हीं ने उसे मिट्टी पर उड़ेल दिया, अब फिर उसे समेट कर घड़े में भरने का कोई उपाय नहीं है। यद्यपि थोड़ा सा उठाओ भी तो वह भी मिट्टी से सन जायगा।"

बाजितपुर की उषा दीदी के निकट माँ की भविष्यवाणी

बहुत पहले की एक बात याद आ गई है। बाजितपुर के जानकी बाबू की स्त्री को माँ उषा दीदी कहतीं। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि उनके साथ माँ का अत्यन्त स्नेह था। वे जिस समय ढाका आईं उस समय मैंने उनके मुँह से सुना कि माँ की जब बाजितपुर में

यह अवस्था आरंभ हुई तब उषा दीदी की सास उषा दीदी को माँ के समीप जाने नहीं देती थीं, क्योंकि बहुतों का विश्वास था कि माँ को भूत लगा है। किन्तु उषा दीदी माँ को देखे बिना रह ही नहीं सकती थीं, इसलिए लुकछिप कर माँ के समीप जातीं। उनका न जाने कैसा विश्वास था कि माँ का यह सब जो हो रहा है वह अच्छा ही हो रहा है। माँ के प्रति उनकी भक्ति जागी थी। एक बार वे एक लड़के को, अस्वस्थ होने के कारण, माँ के समीप ले आयी। मन में विश्वास था कि माँ के छूते ही अच्छा हो जायगा। सचमुच माँ ने कुछ किया और लड़का अच्छा हो गया। पहले ही लिख चुकी हूँ कि माँ की इस प्रकार की क्रिया पहले से ही हो जाती जिससे रोगी को आराम हो जाता। माँ कहतीं कि मैं इच्छापूर्वक कुछ नहीं करती। जैसे आसन आदि अपने आप ही हो जाते, यह भी वैसे ही हो जाता। इसके बाद तो उषा दीदी की भक्ति और भी बढ़ गई। एक दिन माँ की अवस्था देखकर उन्होंने कहा था, "मेरी तुम्हें माँ कहने की इच्छा होती है। मेरा तुम्हारे प्रति भगिनीभाव नहीं होता, मातृभाव हो रहा है।" माँ भावस्थ हुई थीं, जरा थमकर माँ ने उत्तर दिया था, "तुम्हीं क्यों, एक दिन जगत् के बहुत से लोग इस शरीर को माँ कहेंगे।"

यह जो माँ का काशी आना हुआ वह उस कथन के लगभग तीन वर्ष बाद ही हुआ होगा। इस तरह बाहर सभा में माँ पहले बैठी नहीं। माँ कितनी ही बातें कहती थीं, सब लोग सुनते थे। कुछ लोग प्रश्न करते थे। एक दिन उसके

बीच में किसी बात पर माँ ने आत्मप्रकाश किया, किन्तु इतने अस्पष्ट रूप में किया कि सब लोग उसे समझ न सके । एक दिन रात्रि में प्रायः सभी चले गये थे, माँ और मकान के लोग तथा बाहर के दो-चार व्यक्ति

काशी में माँ की अवस्थिति

छत पर बैठे थे । रात के २ या ३ बजे होंगे । सहसा माँ बोल उठीं, "मृत्यु आ रही है ।" किसकी मृत्यु यह कुछ भी समझ में नहीं आया । सभी लोग चिन्तामग्न हो पड़े, किन्तु उसके बाद कोई भी बात माँ के मुँह से नहीं निकलीं । मनु की माँ (कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी की स्त्री) गृहिणी थीं, इसलिए उन्हीं को अधिक चिन्ता हुई । उन्होंने कहा, "माँ, मृत्यु भले ही मेरे ऊपर आवे, पर और सब कुशली रहें ।" माँ उनकी ओर निहार कर तनिक हँसीं, माँ के सत्संग के आनन्द में किसी को भी उस बात को सोचने तक का समय नहीं मिला । दिन-रात उत्सव चल रहा था । पूर्णिमा के दिन निश्चय हुआ कि उसी दिन माँ चली जायेंगी । उसके पहले दिन रात को मनु की माँ ने मुझ से कहा, "लोगों की भीड़-भाड़ में, माँ को एक दिन इच्छानुसार खिला भी न सकी । मुझे एक दिन इच्छा हुई थी भाते भात[1] बनाकर बालबच्चों को जैसे रसोई घर में ही बैठकर खिला देती हूँ वैसे ही रसोई घर में ही बैठकर गरम-गरम बड़े-बड़े ग्रासों से माँ को खिलाऊँ । तदुपरान्त वह प्रसाद सब लोग पावें । किन्तु इस होहल्ले में कुछ भी नहीं हो सका । माँ भी जिस अवस्था में

---

१. आलू आदि दो-एक तरकारियों के साथ पकाया गया भात ।

हैं, कुछ खा नहीं रही हैं ।'' इत्यादि इत्यादि । दूसरे दिन अपराह्न के बाद हम लोग माँ को साथ लेकर कलकत्ता को रवाना होने वाले थे । प्रात:काल माँ को जरा फुरसत में देखकर मैं मुँह धुलाने के लिए ले गई । स्नानागार का दरवाजा बन्द कर मैं मुँह धुला रही थी और धोती बदलवा रही थी । इस बीच में माँ ने मुझ से कहा, "देख, आज तो चले जायेंगे । आज पूर्णिमा है, कोई दिन में खाते भी नहीं हैं, (शाहबाग से ही अमावास्या और पूर्णिमा को यह नियम चला आ रहा था ।) किन्तु मुझे आज भाते भात खाने की इच्छा हो रही है ।'' पहले दिन रात्रि में ही मनु की माँ ने जो माँ को खिलाने की बात कही थी, उसकी उस समय एकाएक मुझे याद आ गई । मैं अचम्भे में पड़ गई । माँ से उसी समय मैंने कहा, "माँ, कल ही मनु की माँ ने तुम्हें भाते भात बनाकर खिलाने की बात कही थी ।'' माँ ने कहा, "तुमने तो मुझ से पहले कहा नहीं ।'' मैंने कहा, "तुम्हीं ने जब कहा है तब बनाने को कह आती हूँ ।'' माँ ने कहा, "अच्छा, कह आ, किन्तु तुम लोगों में से कोई दिन में खा नहीं सकेगा, केवल मैं ही खाऊँगी । मैंने तो कितने ही दिनों से खाया नहीं है, इसलिए मेरे साथ तुम लोगों की तुलना नहीं है ।'' मैंने हँसते हुए कहा, "वैसा ही होगा ।'' तब माँ बाहर निकल आईं, सब लोगों के निकट जा बैठीं । मैं दौड़ी हुई गई और मनु की माँ से भाते भात की बात कह आई । सभी अचम्भे में पड़कर खूब आनन्दित हुए । उसी समय रसोई बनी । मनु की माँ रसोई-घर में बैठकर ही बड़े-बड़े ग्रासों से माँ को खिला देने लगीं । माँ

खूब खाने लगीं। इतने दिनों से कुछ भी मुँह में नहीं ले रही थीं। उस दिन मनु की माँ की इच्छा पूरी कर रही थीं। खिलाते-खिलाते बातचीत के प्रसंग में मनु की माँ ने कहा, "माँ, मालूम होता है पूर्वजों में से किन्हीं ने महातपस्या करके तुम्हें सन्तुष्ट किया था, उस पुण्य के फल से सारा परिवार सम्मिलित होकर इस प्रकार तुम्हारे दर्शन कर सक रहा है।" माँ ने तनिक मुसकुरा कर खाते ही कहा, "चौदह पीढ़ी पहले।" तुरन्त मनु की माँ ने सबको बुलाकर यह बात सुनाई। तदुपरान्त माँ ने कहा, "देख, ऐसा ही होता है। भोलानाथजी आदि के भी ऐसा है। सात-सात पीढ़ी के बाद सिद्ध पुरुष होते हैं।" सभी लोग मुग्ध होकर ये सब बातें सुन रहे थे। पिताजी और कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी ने यह बात सुन कर अपने को अत्यन्त ही कृतार्थ माना, क्योंकि वे दो सहोदर थे। उन्हीं के एक पूर्वज ने साधना द्वारा माँ को प्रसन्न किया था, उसी के फलस्वरूप वे इस तरह माँ के दर्शन पा रहे थे। उन दोनों के पुत्र, कन्या, जामाता लगभग सभी माँ के चरणों में उपस्थित हुए थे। इस के कुछ देर के बाद ही सिद्धेश्वरी-स्थान की कथा छिड़ी। माँ ने कहा, "उस स्थान का शङ्कराचार्यजी के साथ सम्बन्ध है।" फिर माँ ने कुछ नहीं कहा। योगेन्द्र राय से माँ ने कहा, "तुमने तो कीर्तन सुनाते-सुनाते पेट भर दिया है।" माँ पूर्णिमा के दिन सबको साथ लेकर कलकत्ते को रवाना हुईं। सभी ने स्टेशन पर जाकर माँ को गाड़ी में बैठा दिया। सबको रुला कर माँ रवाना हुईं।

हम लोग कलकत्ता सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के

मकान में गये। उसके बाद उत्तमाकुटीर में जाना हुआ। माँ के काशी से आने के कुछ ही दिन बाद कुञ्जमोहन मुखोपाध्यायजी ने माँ को सूचित किया कि उनकी स्त्री को कॉलरा हुआ है।

माँ का ढाका प्रत्यागमन

दूसरे टेलिग्राम द्वारा उन्होंने सूचित किया कि उनकी मृत्यु हो गयी है। माँ ने क्यों काशी में 'मृत्यु आ रही है' कहा था, उसका मर्म तब हम लोगों की समझ में आया।

उत्तमाकुटीर से ही कुछ दिनों के बाद प्रफुल्ल घोषजी (रायबहादुर के पुत्र) माँ को कुमिल्ला ले गये। वे उस समय कुमिल्ला में रहते थे। कुमिल्ला में अपार भीड़ हुई। माँ को कमरे में रख दिया गया, दर्शनार्थी लोगों ने दरवाजा तोड़ कर कमरे में घुसने का उद्योग किया। अन्त में माँ को मैदान में बैठाया गया।

कुमिल्ला गमन

कुछ दिन वहाँ रह कर माँ कलकत्ता गयीं। उस बार कलकत्ता पहुँच कर वे चारु घोषजी के मकान में रहीं। रायबहादुर और उनकी स्त्री भी वहीं थीं। खूब आनन्द चल रहा था। भ्रमर भी वहीं थी और माँ को गाने गाकर सुनाती थी। एक दिन माँ जलपान करने बैठी थीं, एकाएक रायबहादुरजी ने जाकर कहा, "माँ को थोड़ा खिला देने की मेरी इच्छा हो रही है—किन्तु मेरा तो खाने-पीने का कुछ विचार नहीं है। माँ क्या मेरे हाथ से खायँगी ?" माँ ने कहा, "अच्छा तो

कलकत्ते में अवस्थान—राय बहादुर के जीवन पर माँ का प्रभाव

है, कुछ खिला दो।" मैं खिला दे रही थी, रायबहादुरजी ने माँ को थोड़ा फल और मिठाई खिला दी। माँ ने उसी समय कहा, "आज से जब जो कुछ खाओ, देवता को निवेदन करके खाना।" उन्होंने कहा, "मैं तो सब कुछ खाता हूँ, कोई विचार नहीं करता, अखाद्य वस्तु भी खाता हूँ।" माँ ने कहा, "जब जो कुछ भी खाओ उसी को मन ही मन देवता के अर्पण कर खाना।" वे सहमत हुए। इसके फलस्वरूप क्रमशः-क्रमशः उनके भोजन में परिवर्तन हो आया। माँ ने उनसे हरिनामकीर्तन करने के लिए कहा था, उन्होंने वही किया। वृद्ध रायबहादुर अन्त में स्वयं ही महा आनन्द से कहते थे, "माँ की कृपा से मेरी नाम-जप में अभिरुचि हुई है। तदनन्तर वे खूब नाम-कीर्तन सुनते और नामकीर्तन करते। माँ के आश्रम में रोज एक बार आकर माँ को प्रणाम कर जाते। माँ के प्रति उनकी अत्यन्त ही श्रद्धा जाग उठी। उनके जीवन का परिवर्तन भी माँ की असीम कृपा का परिचय है।

ढाका प्रत्यागमन—माँ की शारीरिक अवस्था में परिवर्तन

कुछ दिन कलकत्ता रहकर माँ फिर ढाका लौट गईं। कुछ दिनों से माँ की एक भीषण शारीरिक अवस्था होती थी। पहले ही लिखा जा चुका है कि माँ की साँस भयानक जोर से चलती रहती। माँ चाहे बैठी रहतीं या सोई रहतीं, एकाएक इस तरह साँस आरंभ हो जाती। उसी में कभी लेटतीं और कभी बैठतीं। उस अवस्था में मैं अक्सर मेरुदण्ड या हाथ-पैर मल देती, किन्तु उस समय मेरा मलना माँ को कुछ भी मालूम नहीं होता था।

भोलानाथजी प्राणपण से मलते। तब माँ कहतीं, "थोड़ा-सा मालूम पड़ रहा है।" सारा शरीर मानो स्तब्ध हो जाता। कलकत्ते में सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में और अन्यान्य स्थानों में भी इस तरह की अवस्था हुई थी। जितेन्द्र दादा, नवतरु दादा हाथ-पैर मलते-मलते थक जाते थे, किन्तु माँ को विशेष कुछ भी मालूम नहीं होता था। बहुत देर तक ऐसा भाव रहता। फिर धीरे-धीरे घट जाता।

माँ की बाहर जाने की सूचना

एक दिन माँ ने मुझसे उत्तमाकुटीर में ही एकान्त में कहा, "देख, मैं क्या करती हूँ कुछ ठीक नहीं है। यदि मैं ढाका से बाहर चली जाऊँ तो जिस दिन बाहर जाऊँ उस दिन से ही तुम मौनी रहना, मैं जब तक लौट कर न आऊँ तब तक बोलना मत।" आगे यह भी कह दिया कि "यह बात इस समय किसी से भी न कहना।" मैं सदा ही सशङ्क रहती कि कब माँ बाहर चली जायँ। उस बार माँ हम लोगों को साथ नहीं ले जायँगी, यह भी हमें विदित हो गया था। किन्तु बाद को सुनने में आया था कि माँ जिस प्रकार बाहर जाना चाहती थीं, भोलानाथजी उस पर सहमत नहीं हुए, इसलिए माँ उस समय बाहर न जा सकीं। बहुत दिनों के बाद रमना के नूतन आश्रम में आकर केवल चौबीस घन्टे वहाँ रहकर ही माँ भोलानाथजी को ढाका छोड़कर अपने पिताजी को साथ लेकर बाहर चली गईं।

एक दिन उत्तमाकुटीर में जाकर मैंने देखा कि माँ ने पैर में एक जगह जलाकर एक घाव कर डाला है। सुनने

माँ के शरीर पर अग्नि का असर—अग्नि की तापशून्यता

में यह आया कि उसी दिन या उसके पहले दिन ज्योतिष दादा ने बातचीत के दौरान में माँ से कहा था, "आपके शरीर पर यदि अग्नि रखी जाय तो आपको उसकी प्रतीति होती है या नहीं ?" माँ ने भी अग्नि रखने पर मुझे प्रतीति होती है या नहीं यह जानने के लिए दोपहर के समय खाना-पीना हो जाने पर अकेले ही रसोई घर में जाकर चूल्हे से एक जलता हुआ अंगार उठा कर पैर पर रखा। उस समय बाल जलने की गन्ध पाकर एक व्यक्ति ने रसोई घर में जाकर देखा कि माँ पैर पर एक जला हुआ कोयला रख कर बैठी हैं। पैर के रोमों के जलने के कारण गन्ध बाहर फैली। उन्हें देखते ही माँ कोयला फेंक कर उठ आईं। माँ ने हम लोगों को देखकर हँसते-हँसते यह वृत्तान्त सुनाया और बोलीं, "मैंने देखा कि कैसा लगता हैं, किन्तु सच कहती हूँ कि मुझे तनिक भी प्रतीत नहीं हुई।" हम लोगों ने कहा, 'यदि कुछ भी ताप प्रतीत नहीं हुआ तो घाव कैसे हो गया ? यदि घाव न होता तो तभी यह बात संभव हो सकती।" माँ ने हँसते-हँसते कहा, "यदि घाव न होता तो आग रखी गई थी इसका क्या प्रमाण होता। अग्नि का काम तो अग्नि करती ही है।" फिर अन्यमनस्कता से उस फफोले को हाथ से मलते-मलते माँ ने बहुत बड़ा कर दिया। अनेक दिनों के बाद घाव सूखा। पैर में इस समय भी उसका चिह्न है। हाथ के पृष्ठभाग पर उसके पहले एक बार माँ ने अग्नि रखी थी एवं एक बार छूरी से थोड़ा काट डाला था। वे दोनों चिह्न हाथ के पृष्ठभाग पर विद्यमान हैं।

उत्तमाकुटीर में एक बार नानीजी बहुत बीमार पड़ीं। एक छोटी उम्र का लड़का डॉक्टरी पास कर स्कूल से बाहर निकला था, उसका नाम था रमणीमोहन। माँ ने उसका नाम रखा था कालिदास। कालिदास माँ का बड़ा भक्त था और नानीजी की खूब सेवाशुश्रूषा करता था। नानीजी की अवस्था जिस समय अत्यन्त खराब थी, उस समय माँ ने सहसा उस कमरे में जाना ही बन्द कर दिया। उस कमरे के सामने से बाहर कहीं चली जातीं, किन्तु कमरे में घुसती न थीं, लगभग सात दिनों तक उस कमरे में गईं ही नहीं। उन सात दिनों तक अवस्था भी बहुत खराब रही। आठवें दिन माँ नानीजी के कमरे में गईं। और उनके बिछौने के एक छोर पर जाकर लेटी रहीं। तदुपरान्त धीरे-धीरे नानीजी चंगी हो गईं।

नानीजी की अस्वस्थता

एक बार मेडिकल स्कूल का दूसरा लड़का माँ के समीप आया। माँ ने पूछा, "गाड़ी से आये हो ?" उसने कहा, "नहीं, पैदल ही आया हूँ। मैं गाड़ी में विशेष नहीं बैठता। घोड़े को कष्ट देना भी तो पाप है।" माँ ने कहा, "देख, उसमें पाप नहीं होता है। क्योंकि तुमने जैसे कई एक कर्मों के लिए जन्म ग्रहण किया है, तुम यदि उन्हें न करो तो तुम्हारे कर्मों का क्षय नहीं होगा। इस कारण यदि कोई उस काम में सुविधा कर दे तो उससे तुम्हारा उपकार ही होगा वैसे ही इन घोड़े आदि ने कर्मक्षय करने के लिए ही जन्म ग्रहण किया है। घोड़ा तो डॉक्टरी पढ़ कर कर्मक्षय कर नहीं सकेगा, इसी तरह गाड़ी खींच कर उसे

कर्मक्षय करना पड़ेगा। इसलिए उस काम की सुविधा मनुष्यों को देनी चाहिये। जिसका जो काम है, उसे करते जाने की आवश्यकता है।"

उत्तमाकुटीर में रहते समय ही सहसा एक दिन सं० १९८५ के अगहन या पौष महीने में माँ खा-पीकर भोलानाथजी को साथ लेकर ढाकेश्वरी के मन्दिर में जा पहुँचीं। थोड़ी देर बाद माँ ने कहा, "एक गाड़ी ले आओ, सिद्धेश्वरी जायँगे।" कुछ वस्तु लाने के लिए भोलानाथजी उत्तमाकुटीर जाने वाले थे, किन्तु माँ ने "अब उत्तमाकुटीर में प्रवेश नहीं करूँगी" कहा। उसी समय वे सिद्धेश्वरी चली गईं। बाद को मैंने भी सिद्धेश्वरी जाकर देखा तो वे वहाँ बैठी थीं। माँ अब उत्तमाकुटीर में नहीं आयँगी, समझ कर बिछौना, सामान आदि सिद्धेश्वरी में ले जाना हुआ। उत्तमाकुटीर का डेरा उठा देने को कहा। नानाजी और नानीजी घर चले गये। उत्तमाकुटीर में माँ केवल छः या सात मास रहीं। माखन हमारे टिकाटूली के मकान में गया। मटरी बुआ, मरणी, अमूल्य, कमलाकान्त और दूसरी एक विधवा स्त्री थी, उन सबने सिद्धेश्वरी में ही अश्विनीकुमार बाबू के मकान में आश्रय लिया। अश्विनी बाबू की स्त्री तथा बाल-बच्चे सदा ही माँ के समीप रहते थे।

उत्तमाकुटीर त्याग

इस तरह माँ ने सहसा उत्तमाकुटीर का डेरा छोड़ दिया। कालीमूर्ति एक काठ की अलमारी-सी बनाकर उसमें सिद्धेश्वरी के आश्रम में ही रखी गई। सं० १९८५ में काली सिद्धेश्वरी गईं। यह चौथी बार कालीमूर्ति का हटना

हुआ। यज्ञाग्नि भी सिद्धेश्वरी के कालीमन्दिर के सामने के पीपल के वृक्ष के नीचे कुण्ड बना कर रखी गई। प्रतिदिन कुलदा दादा आकर वहाँ हवन करते। शिवपूजा, दुर्गासप्तशतीपाठ सब कुछ वे ही करते। कभी-कभी रात के दो-तीन बजे इन सब कामों को पूरा कर घर लौटते थे। कुलदा दादा का भी माँ के प्रति गाढ़ विश्वास था। माँ के उत्तमाकुटीर में रहते समय कुलदा दादा के मझले लड़के को कॉलरा हो गया, उन्होंने किसी भी औषधि का उपयोग नहीं कराया। केवल माँ का चरणामृत पिलाया। उन्होंने कहा, "यदि बचने वाला होगा तो इसी से बच जायगा।" किन्तु लड़के की मृत्यु हो गई। वे औषधि का व्यवहार नहीं किया यह सोचकर बिलकुल भी अनुतप्त नहीं हुए। उनका अटल विश्वास था कि यदि बचने वाला होता तो उसी से बच जाता। उनके केवल तीन लड़के थे। बिचला मर गया। लड़के की मृत्यु के बाद वे और उनकी स्त्री दोनों माँ के समीप आये, वे आकर बाहर ही खड़े रहे, माँ कमरे में बैठी थीं। उनकी स्त्री के माँ के समीप कमरे में जाते ही माँ ने इस प्रकार रोना आरंभ किया कि पुत्रशोकार्ता जननी फिर पुत्र के लिए शोक प्रकट न कर सकीं, उलटे वे ही माँ को सांत्वना देने लगीं। इस प्रकार माँ ने स्वयं रोकर उनके हृदय की व्यथा हल्की कर दी। इस प्रकार के कितने ही खेल माँ करती हैं।

भोलानाथजी से माँ ने सिद्धेश्वरी के कालीमन्दिर की छोटी कोठरी में बैठकर अपना साधन कृत्य करने को कहा। फिर, नियम चला कि माँ के निकट दस मिनट से

अधिक कोई भी नहीं रह सकेगा। इस कारण माँ भी प्रायः अकेली ही सिद्धेश्वरी आश्रम के कमरे में बैठी रहतीं। कमलाकान्त रसोई बना देता। शाहबाग में और उत्तमाकुटीर में रात को भी बहुत देर तक माँ के समीप मैं ही रहती थी। सिद्धेश्वरी में माँ कभी-कभी सहसा आकर दो-एक दिन रहतीं। एक बार वहाँ आकर सात दिन रहीं, उस समय भी मैं अक्सर रहती, रसोई बना देती। उक्त आदेश होने के कारण फिर मेरा अधिक समय तक माँ के निकट रहने का उपाय न था। भोलानाथजी बहुत देर तक उस मन्दिर में बैठकर अपना काम करते, तदुपरान्त आश्रम में आते।

एक दिन सन्ध्या के समय जाकर मैंने सुना कि माँ ने कहा, "भोलानाथजी कल ही ढाका छोड़ कर एक जगह जा रहे हैं, तुम सब लोग स्टेशन जाकर भोलानाथजी को गाड़ी में बैठा आओ।" वे कहाँ जा रहे हैं यह प्रकट नहीं किया।

भोलानाथजी का एकाकी ढाका-त्याग

भोलानाथजी उस समय कई दिनों से मौनी थे, किसी से वे बोलते न थे। कलकत्ते की मेल से वे रवाना हुए। यज्ञ की अग्नि लेकर योगेश दादा फिर जाने वाले थे। माँ सिद्धेश्वरी ही रहने वाली थीं। कभी भी इस प्रकार बाहर जाना हुआ नहीं। सदा ही दोनों एकसाथ जहाँ भी हो, गये हैं। माँ के आदेशानुसार दूसरे दिन सब लोग सिद्धेश्वरी जाकर भोलानाथजी को साथ लेकर स्टेशन गये, माँ भी साथ गईं। सब से बिदा लेकर सब के साथ बातें कर वे योगेश दादा को साथ लेकर रवाना हो गये। साथ में यज्ञ की अग्नि भी दे दी गई। माँ को साथ लेकर हम लोग

सिद्धेश्वरी लौट आये, ज्योतिष दादा भी साथ ही थे । निश्चय हुआ कि और भी सात दिनों तक भोलानाथजी के रहते जो दस मिनटका नियम चला है, दिन में वही चलेगा । कमलाकान्त और एक विधवा स्त्री थीं वे माँ के निकट रहेंगी । रात्रि में चाहे कोई भी एक व्यक्ति आकर आश्रम में सोएगा । पिताजी ही रात्रि में जाकर सोवेंगे, यह निश्चय हुआ । वही चलने लगा । सात दिन इस तरह बीते । आठवें दिन प्रात:काल उठते ही माँ ने सिद्धेश्वरी के कालीमन्दिर के पास वाली उस छोटी सी कोठरी में स्थान ग्रहण किया । कह गईं, "इस कमरे में कोई न आवे, जब होगा मैं ही बाहर आऊँगी, उस समय दर्शन हो जायँगे ।" दस दिन का नियम छूटा तो फिर यह दूसरा नियम चला । चाहे जभी बाहर निकल कर साधारण कुछ खाकर माँ कमरे में चली जातीं । जिस दिन कमरे में गईं उसी दिन अपराह्न के बाद बाहर आकर पोखरे के किनारे बैठी थीं, हम लोग वहीं थे । माँ ने मुझसे एकान्त में कहा, "तुम कुछ दिनों तक दिन में एक बार आकर मेरे साथ भेंट करते ही चली जाना । यहाँ रहना नहीं ।" इससे मुझे बड़ी चोट लगी । दिन-रात मैं जितना अधिक हो सकता था माँ के निकट ही बैठती थी, सात दिन तो उस नियम में गये, फिर यह आदेश हुआ । किन्तु माँ ने कहा था, इसलिए उसी पर मैं राजी हो गई । उस दिन चली गई । पिताजी आदि सभी रहे ।

□□